http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

आप्त परीक्षा प्रवचन

भाग-2

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

आप्तपरीक्षा-प्रवचन

(१-२ भाग)

प्रवक्ता

अध्यात्म योगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५
क्षु० मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

सहजानन्द स्वाध्याय मण्डल
ग्रन्थ क्रमांक.........................

प्रकाशक

सुमेर चन्द जैन, प्रधान मन्त्री
भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मन्दिर
१५, प्रेमपुरी, मुजफ्फ़रनगर (उ० प्र०)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रति १००० सन् १९७३ मूल्य ७ रुपये

http://www.jainkosh.org

आप्तपरीक्षा प्रवचन

[द्वितीय भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज

ज्ञानात्मक, सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी तीर्थंकरके वंद्यत्वकी मंगलाचरणमें घोषणा—यह आप्तपरीक्षा ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्रके कर्ता आचार्य महाराजके मंगलाचरणका विशदीकरण है। उनका मंगलाचरण है कि मोक्षमार्गके नेता, कर्मभूभृतके भेत्ता और समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता आप्तको उन गुणोंकी प्राप्तिके लिए नमस्कार करता हूं। इसपर विशेषवादियोंने यह आपत्ति दी थी कि ऐसा आप्त तो महेश्वर ही हो सकता है, क्योंकि वह कर्मसे अनादिसे अछूता है, कर्मसे वह निराला ही है और वह कर्म पर्वतका भेदनहार नहीं है। इस पर बहुत विस्तारके साथ यह सिद्ध किया गया कि कोई भी आत्मा ऐसा नहीं हो सकता जो अनादिसे कर्मसे अछूता हो। अनादिसे सभी जीव कर्मसे सहित हैं और उपाय करके वे कर्मसे रहित होते हैं। उसके साथ यह भी सिद्ध किया कि जो कर्मसे अछूता हो ऐसा कल्पनामें जो माना गया हो वह ज्ञानी भी नहीं हो सकता, फिर मोक्षमार्गका प्रणेता कैसे होगा ? इन सब बातोंका विस्तार पूर्वक यहाँ वर्णन हो चुका है, जिससे यह सिद्ध हुआ कि आप्त वही हो सकेगा जो मोक्षमार्गका नायक हो, कर्म पहाड़का भेदनहार हो, समस्त तत्त्वोंका ज्ञाता हो। साथ ही यह भी समझना चाहिए कि वह शरीर सहित हो तथा धर्म विशेषसे युक्त हो। कोई भी आत्मा जब परमात्मा होता है तो चूंकि वह शरीर सहित सिद्ध तो था ही और असिद्ध दशासे आत्म साधनाके बलसे परमात्मत्व सिद्धत्व प्रकट किया है तो परमात्मत्व प्रकट होनेपर भी शरीर कुछ समय तक रहता है, जब तक आयुका उदय चल रहा है। हाँ वह शरीर पवित्र परमौदारिक स्फटिक मणिके समान स्वच्छ, छाया रहित हो जाता है। साथ ही यह भी जानना चाहिए कि जिसके तीर्थंकर प्रकृतिका याने धर्म विशेषका अभ्युदय हो वह मोक्षमार्गका नायक होता है। इस तरह यह सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुआ कि तीर्थंकर प्रकृतिका उदय जिसके चल रहा है ऐसा शरीर सहित परमात्मा जिनेश्वर मोक्षमार्गका प्रणेता है और वह आप्त है। पूर्व प्रकरणमें यह बताया गया था कि कर्मभूभृतसे असस्पृष्ट अर्थात् कर्मोंसे अनादिमुक्त कल्पित ऐसा कोई महेश्वर मोक्षमार्गका उपदेष्टा नहीं होता। मोक्षमार्गका उपदेष्टा धर्मविशेषसे संयुक्त सशरीर वीतराग सर्वज्ञ कर्मपहाडका भेदनहार ही मोक्षमार्गका प्रणेता हो सकता है। ऐसा कोई विशेषवादियों द्वारा परिकल्पित अनादिमुक्त सदाशिव महेश्वर मोक्षमार्गका उपदेष्टा नहीं बन सकता। इसके निराकरणके साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि ज्ञानात्मकतासे रहित रूपमें कल्पित कपिल भी मोक्षमार्गका उपदेष्टा नहीं हो सकता।

एतेनैव प्रतिव्यूढ़: कपिलोऽप्युपदेशकः।
ज्ञानादर्थान्तरत्वस्याऽविशेषात्सर्वथा स्वतः॥ ७८॥

ज्ञानसंसर्गतो सत्वमज्ञस्यापि न तत्त्वतः।
व्योमवच्चेतनस्यापि नोपपद्येत मुक्तवत्॥ ७९॥

ज्ञानसे भिन्नताकी अविशेषता होनेसे संख्याप्रधानवादियोंके पुरुषमें मोक्षमार्गप्रणेतृत्वकी असिद्धि इन कारिकाओंमें यह बताया जा रहा कि पहिले जैसे बहुत विस्तारके साथ महेश्वरके मोक्षमार्गका उपदेष्टापन प्रतिष्ठित प्राप्त नहीं होता, उस ही तरह यहाँ यह कह रहे हैं कि कपिल भी मोक्षमार्गका उपदेशक नहीं हो सकता। इसका निराकरण यहाँ होता है, क्योंकि यहाँ कपिल नामसे पुकारे गये पुरुषके लिए यह विकल्प उत्पन्न होता है कि जब वह भी अपने ज्ञानसे सर्वथा भिन्न है तो वह सर्वज्ञ कैसे हो सकता है ? और जब सर्वज्ञ नहीं हो सकता है तो मोक्षमार्ग का प्रणेता कैसे बन सकता है ? निरीश्वर सांख्य सिद्धान्तमें यह बताया गया है कि पुरुषका मात्र चैतन्य स्वरूप है, उसमें ज्ञान नहीं है किन्तु प्रधानका परिणाम है। ज्ञान और उसका संसर्ग होनेसे पुरुष ज्ञानी बनता है। तो स्वरूपत: यही तो माना गया कि पुरुष अथवा आत्मा स्वयं ज्ञानरहित है। तो जो ज्ञानरहित है, ज्ञानके संसर्ग से ही जो ज्ञानी बताया जाता है, ज्ञानसे सर्वथा भिन्न है तो वह सर्वज्ञ कैसे बन सकता है और मोक्षमार्गका नायक भी कैसे हो सकता है ? यदि यह कहा जाय कि ज्ञानके संसर्गसे उस पुरुषको अथवा कपिलको सर्वज्ञ कह दिया जायगा, तो देखो ! भिन्न ज्ञान के संसर्गसे पुरुषको सर्वज्ञ कहा है तो वास्तवमें तो सर्वज्ञ न रहा। जैसे कि आकाश सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वह वास्तवमें ज्ञानी तो नहीं है। यहाँ शङ्काकार कहता है कि चेतन कपिलके ही तो ज्ञानका संसर्ग हो सकता है, अचेतन आकाशमें ज्ञानका संसर्ग नहीं होता। इसी कारण कपिलके ही सर्वज्ञता बनेगी, आकाशमें न बनेगी। तो इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का उत्तर इतनेमें ही पर्याप्त हो जाता है कि ज्ञानका संसर्ग चेतनके नातेसे पुरुषमें मान रहे हो तो मुक्त आत्मा भी तो चेतन है, उसके भी ज्ञानका संसर्ग क्यों नहीं मानते ? याने मुक्त आत्माको सर्वज्ञ क्यों नहीं कहते ? इस सिद्धान्तमें मुक्त आत्माको सर्वज्ञ नहीं माना, किन्तु एक ही पुरुषको सर्वज्ञ माना। तो कितनी अनमेल बात सुननेमें आ रही है कि चेतन तो मुक्त आत्मा है, वहाँ ज्ञानका संसर्ग माननेमें क्या आपत्ति है ? तो जैसे मुक्त आत्मा चेतन है फिर भी सर्वज्ञ नहीं माना जाता उसी प्रकार कपिल भी चेतन है फिर भी वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

साँख्य सिद्धान्तियों द्वारा कपिलके ही मोक्षमार्गप्रणेतृत्वके कारणोंपर प्रकाश—विशेषवादी अपना सिद्धान्त रख रहे हैं कि देखिये ! मोक्षमार्गका उपदेशक कपिल ही हो सकता है और वह कपिल क्लेश कर्मविपाक और आशय इसका भेदनहार है। जैसे कि इस ग्रन्थके लक्ष्यभूत मङ्गलाचरणमें कहा है कि आप्त वह होता है जो कर्मपहाड़का भेदनहार है। सो यह विशेषण हम सांख्योंके पुरुषमें घटित हो रहा है। देखिये ! कपिल क्लेश कर्मविपाक और आशय ये ही कहलाये कर्मपहाड़ इनका भेदनहार है। क्यों वह भेदनहार है ? यों कि उसके रज और तमका अभाव हो गया है। प्रधानके मुख्य गुण हैं सत्त्व रज और तम और प्रधानताके संसर्गसे पुरुष भोक्ता बन रहा है। तो वास्तवमें संसारी प्रधान है, पर उसके संसर्गसे इस आत्मापर लाँछन आ रहा है। तो ऐसा वह प्रधान रज और तमकी प्रधानतामें है जहाँ वहाँ तो संसारी है, कष्ट है। और जहाँ सत्त्वकी प्रधानता है रज और तमका सर्वथा अभाव है वहाँ ये सब कर्म छिन्न भिन्न हो जाते हैं। तो ऐसा कपिल मोक्षमार्गका उपदेशक है और कर्मपहाड़का भेदनहार है तथा वह समस्त तत्त्वज्ञान और वैराग्यसे युक्त है। मोक्षमार्गके प्रणेता बननेके लिए तत्त्वज्ञानकी परम आवश्यकता है, वह भी कपिलमें है और वीतराग होनेकी भी आवश्यकता है सो वैराग्यसे युक्त भी वह कपिल है। इसके साथ ही साथ धर्मविशेषके ऐश्वर्यसे सहित भी है, क्योंकि उसके अब उत्कृष्ट सत्त्वका आविर्भाव हो गया है याने प्रधानका जो संसर्ग है तो अब वहां सत्त्वकी प्रकर्षताके रूपमें संसर्ग है, जिस कारणसे रज और तमका सर्वथा अभाव है। जहाँ सत्त्वका उत्कृष्ट प्रकर्ष हो वहाँ परम ज्योति उत्कृष्ट ज्ञान प्रकट हो जाता है। तो कपिलमें इतनी बातें सिद्ध हो गयीं कि वह मोक्षमार्गका उपदेशक है, क्लेशादिक कर्मका भेदनहार है। रज और तमके उसके सर्वथा अभाव है, समस्त तत्त्वज्ञान और वैराग्यसे सहित है। धर्मविशेषरूप ऐश्वर्यसे युक्त द्रव्य सत्त्वका उत्कृष्ट वहाँ अभ्युदय है। इसके साथ ही साथ ही साथ वह विशिष्ट शरीर वाला है।

कपिलके ही मोक्षमार्गनेतृत्वकी सिद्धि व महेश्वरके मोक्षमार्गनेतृत्वकी असिद्धिका सांख्य सिद्धान्तियों द्वारा प्रतिपादन—उक्त सब उपर्युक्त बाते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घटित हो जानेसे कपिल ही मोक्षमार्गका उपदेष्टा, किन्तु महेश्वर नहीं हो सकता। महेश्वर तो शरीर रहित है। जो जैसे आकार शरीर रहित है तो उसकी ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और प्रयत्नशक्ति ये तीनों ही शक्तियाँ सम्भव नहीं हैं। तो इन शक्तियोंके बिना कुछ कर्तृत्व बन ही नहीं सकता। उपदेश कैसे दिया जायगा? न ज्ञान है, न इच्छा है, न प्रयत्न है। लोकमें देखा जाता है कि कुम्भकार ज्ञान इच्छा और प्रयत्न के बलसे किसी कार्यका आरम्भ कर पाता है। तो जो शरीर रहित है उस महेश्वरके कैसे सम्भव है कि वह इन शक्तियोंके बिना मोक्षमार्गका प्रणयन कर सके। जैसे आकाशमें यह आकाश नहीं है तो वह मोक्षमार्गका उपदेष्टा नहीं बनता। और, भी उदाहरण देखिये! जैसे मुक्त आत्माओंके ज्ञानशक्ति इच्छाशक्ति और प्रयत्नशक्ति नहीं है तो मुक्त आत्माओंको मोक्षमार्गका उपदेष्टा तो नहीं कहा गया है। तो ऐसे ही शरीररहित मुक्त आत्मा जैसे मोक्षमार्गके प्रणेता नहीं बन सकते इसी प्रकार शरीर-रहित महेश्वर भी मोक्षमार्गका प्रणेता नहीं हो सकता। यदि महेश्वरको सदेह भी मान लिया जाय तो भी वह वह क्लेशादिक कर्मोंसे रहित नहीं हो सकता, क्योंकि कोई कोई संदेह भी हो और सदा ही क्लेशादिकसे रहित हो यह नहीं बन सकता तो महे-श्वरमें जब सब बातें सम्भव नहीं हैं तो कैसे मोक्षमार्गका प्रणेता होगा। और, भी चिन्तन करें। यदि महेश्वरके धर्म विशेषका सद्भाव माना जाय। जो धर्म विशेष मोक्षमार्गके प्रणयन करनेके लिए अत्यन्त आवश्यक है तो ऐसे धर्म विशेष यदि महेश्वर के मान रहे हो तो धर्म विशेषका साधनभूत समाधि विशेष भी मानना पडेगा, अन्यथा अर्थात् समाधि विशेष न मानें तो धर्म विशेष कैसे प्रकट हो सकता है? तो महेश्वरके धर्मविशेषकी कल्पना करनेपर समाधि विशेषकी भी कल्पना करनी होगी और जब विशेष मान लेंगे तो उसके कारणभूत ध्यान भावना प्रत्याहार प्राणायामके साधन यम और नियम तो ८ योगांगोंको भी मानने पड़ेंगे। ये ८ योगके अंग हैं याने इन आठोंके बलसे समाधि विशेष निष्पन्न होती है। तो ८ अङ्ग मानने पड़े जिससे कि समाधि विशेष बनाया और समाधि विशेषसे धर्म विशेष बनाया। यो यों जिसको कर्मसे अछूता माना जा रहा है उसको कितनी आपत्तियाँ माननी पड़ी। यदि योगके ८ अङ्ग न माने जायेंगे महेश्वरके तो उसके समाधि विशेष सिद्ध न होगा। और, जब समाधि विशेष सिद्ध न होगा तो धर्म विशेष भी उत्पन्न न होगा। उसकी स्थितिमें ज्ञानादिक अतिशयरूप ऐश्वर्यसे जब वह युक्त न हो सका तो वह महेश्वर ही नहीं बन सकता। अनीश्वर हो गया। जो ज्ञानसे शून्य है वह अज्ञ संसारीकी भाँति हो गया। तो कपिल में तो मोक्षमार्गकी प्रयत्न सिद्ध हो जानेपर महेश्वरमें प्रणयन सिद्ध नहीं होता। यह सब निरीश्वरवादी सांख्य कह रहे हैं। सांख्योंमें दो भेद हैं १ ईश्वर मानने वाले और २ ईश्वर न मानने वाले। तो निरीश्वरवादी सांख्य उक्त प्रसङ्गोंके अतिरिक्त यह भी प्रसङ्ग दे रहे हैं कि उस महेश्वरको जब सत्त्व प्रकर्ष वाला नहीं माना जा रहा तो वह ईश्वर नहीं रह सकता। जिसमें ज्ञानादिक परिणाम उत्कृष्ट न हों वह ईश्वर ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या ? और, यदि उस महेश्वरको सत्व प्रकर्ष वाला मान लिया जाता है तो वह सदा मुक्त और अनुपाय सिद्ध नहीं ठहरता। जहाँ सत्त्वका प्रकर्ष है, तत्त्वज्ञान उत्कृष्ट बन गया है तो इससे यह ही तो सिद्ध हुआ कि पहिले यह प्रकर्षता न थी। क्यों न थी कि रज और तम गुण व्याप्त थे सो कर्मका छुवा होना अपने आप सिद्ध हो गया। और जब कर्म वाला सिद्ध हो गया तो बिना उपाय किए, बिना समाधि विशेष धार किए कोई सिद्ध नहीं हो सकता। इससे महेश्वर तो मोक्षमार्गका उपदेष्टा नहीं है किन्तु कपिल ही मोक्षमार्गका उपदेष्टा है।

ज्ञानसमवायसे सर्वज्ञताकी सिद्धिका अभाव बताते हुए उक्त शंकाका समाधान अब उक्त शङ्काके समाधानमें स्याद्वादी कहते हैं कि धर्म विशेषसे संयुक्त अर्थात् तीर्थंकर रूपसे माना गया कपिल भी महेश्वरकी तरह मोक्षमार्गका उपदेष्टा सिद्ध नहीं होता। उसका कारण यह है कि जैसे महेश्वरको विशेष वादियोंने ज्ञानसे भिन्न माना है और ज्ञानके समवायसे उस महेश्वरको सर्वज्ञ साबित करना चाहा है उसी प्रकार यह कपिल भी तो ज्ञानसे सर्वथा भिन्न है और इस कारण वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जब मूलमें ज्ञान ही नहीं है तो ज्ञानकी प्रकर्षता कहाँसे आयगी ? तो एक ही बातमें सारी शङ्काओंका समाधान हो जाता है कि चूंकि वह पुरुष अथवा कपिल ज्ञानसे भिन्न है ज्ञान स्वरूप नहीं है, जैसे कि सिद्धान्त गढ़ा है तो ऐसे ज्ञानसे भिन्न कपिलको सर्वज्ञ कैसे कहा जा सकता है ? और जब वह सर्वज्ञ नहीं है तो मोक्षमार्ग का प्रणेता कैसे कहा जा सकता ? अब यहाँ सांख्य कहते हैं कि कपिल ज्ञानसे भिन्न है, फिर भी सर्वार्थ ज्ञानका संसर्ग है कपिलमें, इस कारण उसकी सर्वज्ञता बन जाती है। भाव यह है कि यद्यपि ज्ञान परिणाम प्रधानका परिणाम है और वह सर्व पदार्थ विषयक ज्ञान रख रहा है तो ऐसे ही सर्वार्थक ज्ञान वाला प्रधानका संसर्ग है कपिलमें इस कारणसे कपिलमें सर्वज्ञता बन जाती है। इसके समाधानमें स्याद्वादी कहते हैं कि यदि प्रधानके संसर्गसे कपिलमें सर्वज्ञता बना दी जाती है तो प्रधानका संसर्ग तो आकाश आदिकके साथ भी है। फिर आकाश आदिकको भी सर्वज्ञ मानना पड़ेगा देखिये ! समस्त पदार्थ विषयक ज्ञान पुरुष तो है प्रधानका क्योंकि प्रधानके आश्रयसे ही यह ज्ञान प्रकट हुआ है तो ऐसा ज्ञान परिणामके आश्रयभूत प्रधानको एक और सर्वव्यापक माना है। जैसे प्रधानका संसर्ग कपिलमें है ऐसे ही आकाश आदिकमें भी है। लेकिन आकाशमें सर्वज्ञता नहीं बताया। कपिलमें सर्वज्ञता बता रहे हैं तब समस्त ज्ञानका संसर्ग भी सर्वज्ञताका नियामक न बन सका। अब शङ्काकार कहता है कि यद्यपि यह बात ठीक है कि प्रधानका संसर्ग सबके साथ है। जो प्रधान समस्त पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान परिणाम रख रहा है ऐसा ज्ञान परिणामका आश्रयभूत है। उस प्रधान का संसर्ग आकाश आदिकके साथ है तिसपर भी सर्वज्ञ कपिल ही हो सकता है। आकाश आदिक नहीं हो सकते। क्योंकि कपिल चेतन है, आकाश आदिक चेतन नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। तो ज्ञान संसर्ग सर्वत्र होकर भी चेतनमें तो सर्वज्ञता आयगी पर अचेतनमें सर्वज्ञता न आयगी। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह मान्यता भी सङ्गत नहीं है। क्यों कि मान्यता प्रधानका संसर्ग होनेपर चेतनमें तो सर्वज्ञता आती है पर अचेतनमें सर्वज्ञता नहीं आती। यह कथन यों ठीक नहीं है कि देखिये ! सांख्य सिद्धान्तमें मुक्त आत्माओंको चेतन होनेपर भी ज्ञान संसर्गसे सर्वज्ञ स्वीकार नहीं किया है अभी यह प्रतिज्ञाकी जा रही थी कि चेतन तो ज्ञान संसर्गसे सर्वज्ञ हो जाता तो तो मुक्त आत्मा भी तो चेतन है, किन्तु उसे सर्वज्ञ स्वीकार नहीं किया गया अन्यथा अर्थात् चेतन मुक्त आत्मामें ज्ञान संसर्गसे सर्वज्ञ स्वीकार कर लिया जायगा अन्यथा सबीज सम्प्रज्ञात समाधिके समवायमें भी याने सम्प्रज्ञात योगमें भी सर्वज्ञता नहीं बन सकती, सांख्योंका सिद्धान्त है कि कोई संसारी पुरुष जब समाधि विशेष कह रहा है और जब वह उत्कृष्ट समाधिमें रहता है उस समय उसकी सर्वज्ञता होती है किन्तु वही जब असम्प्रज्ञात योगमें पहुँच गया, निर्बीज समाधिमें पहुंच गया जहाँ कि कोई तरङ्ग नहीं रहा करती है उस समयमें ज्ञान संसर्ग नहीं मानते, अथवा सर्वज्ञ नहीं मानते हैं तो उससे यह ही तो बताया गया है कि मुक्त आत्माओंमें ज्ञान संसर्ग होनेपर भी सर्वज्ञता नहीं आती।

शंकाकार द्वारा मुक्तात्मामें असर्वज्ञत्वकी व पुरुष विशेषमें सर्वज्ञत्वकी सिद्धिका प्रयास— अब यहाँ सांख्य कहते हैं कि हमारा मतव्य पूरी तरह समझा नहीं गया ऐसा मालूम होता है। हमारा सिद्धान्त यह है कि मुक्त जीवके ज्ञान संसर्ग ही सम्भव नहीं है, क्योंकि मुक्त जीवके जब असम्प्रज्ञात योग होता है याने निष्तरङ्ग अवस्था होती है निर्बीज समाधि बनती है उस समय ज्ञान संसर्ग नष्ट हो जाता है। और, तब यह दृष्टा पुरुष अपने चैतन्य स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है तो इस सिद्धांत के अनुसार मुक्त हो जानेपर इसके संस्कार विशेष भी नष्ट हो जाते हैं। हाँ असम्प्रज्ञात योगके समय तो संस्कार शेष रहता है याने सशरीर स्थितिमें तब निष्तरङ्ग अवस्था है, आत्मा आत्मामें अवस्थित हो रहा है उस समय तकमें भी संस्कार सम्भव हो सकता है। पर जब देहसे मुक्त हो जाता है तब मुक्त आत्माके वह संस्कार भी शेष नहीं रहता। सारांश यह है कि ज्ञान संसर्ग निर्बीज समाधिके समयमें नष्ट हो जाता है तो देखिये ! कि जब कुछ विचारमय समाधि थी वहाँ तक ज्ञानका संसर्ग था। जब निर्विचार निर्बीज स्थिति बन जाती है। तो ज्ञान संसर्ग नष्ट हो जाता है। हाँ थोड़ा इस समय तक संस्कार शेष रहता है लेकिन जब देहसे भी मुक्त हो जाता है तो उस मुक्त जीवके न ज्ञान संसर्ग रहता है और न असम्प्रज्ञात योगके समय रहने वाला संस्कार ही रहता है। अब तो वह पुरुष मुक्त हो गया है। उस मुक्त आत्माका प्रधान के साथ संसर्ग तो है सामान्यतया क्योंकि प्रधान एक सर्वव्यापक है, लेकिन वह ज्ञान आदिक परिणाम रहित हो गया प्रधान ऐसी प्रधानताके साथ मुक्तात्माका सामान्यतया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्बन्ध होनेपर भी याने विशेष संसर्ग न रहा अतएव मुक्तात्माके प्रति ज्ञानसंसर्ग नष्ट हो जाता है। हाँ, संसारी आत्मामें संस्कार है, यों चेतनस्वरूप कपिलके ज्ञानसंसर्गसे सर्वज्ञता है पर मुक्त आत्मामें ज्ञानसंसर्ग ही नहीं अतएव सर्वज्ञत नहीं। तो मुक्त आत्माका उदाहरण देकर चेतन कपिलमें सर्वज्ञता अभाव सिद्ध करना उचित नहीं है, मुक्त आत्मामें ज्ञानसंसर्ग ही सम्भव है इसलिए वह सर्वज्ञ नहीं है, किन्तु सदेह धर्म-विशेषवान कपिलके ज्ञानका संसर्ग है और उस संसर्गसे वह सर्वज्ञ सिद्ध होजाता है।

प्रधानको व्यापक निरंश माननेपर उसके संसर्गमें किसीको सर्वज्ञ व किसीको असर्वज्ञ माननेके कारणका अभाव बताते हुए उक्त शङ्काका समाधान

उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका उक्त अभिप्राय सारहीन है, क्योंकि प्रधानको जब व्यापक एक निरंश मानते हैं तो व्यापकका संसर्ग विशेष कपिलके साथ तो हो और मुक्त आत्माके साथ न हो, ऐसा नियम कैसे बनाया जा सकता है ? जब प्रधान एक है, व्यापक निरंश है तो कपिलके साथ उसका संसर्ग माननेपर सबके साथ संसर्गका प्रसङ्ग आयगा और इस तरह फिर किसीके भी मुक्ति न बन सकेगी। इस तरह आत्माके साथ प्रधानका संसर्ग न माननेपर कपिलके साथ भी पदार्थका संसर्ग न हो सकेगा और यदि एक होनेपर भी यह माना जाय कि प्रधानका संसर्ग कपिलके साथ है, मुक्त आत्माओंके साथ नहीं है, तो इससे प्रधानमें भेद नजर आयगा, क्योंकि अब प्रधानमें दो विरुद्ध धर्म आयेंगे—एक तो संसर्ग करने वाला और एक संसर्ग न करने वाला। तो ऐसे दो विरुद्ध धर्मोंका प्रधानमें अध्यास हो, इससे प्रधान भिन्न-भिन्न हो जायेंगे। अब उसे सांश मानना पडेगा। इसके दो अंश हैं - एक संसर्गवाला दूसरा संसर्गके अभाव वाला। यहाँ सांख्य कहते हैं कि हम प्रधानको एक निरंश और व्यापक ही मानते हैं। उस प्रधानमें हम विरुद्ध धर्मका अध्यास नहीं मानते कि किसी स्वरूपसे प्रधान संसर्ग वाला हो और अन्य स्वरूप प्रधान असंसर्ग वाला हो। ऐसे विरुद्ध धर्मोंका अध्यास हम प्रधानमें नहीं मानते और इसी कारण प्रधानमें भेदका प्रसङ्ग नहीं आता, किन्तु हमारा तो प्रधानके सम्बन्धमें यह कहना है कि प्रधान सर्वथा एकरूपसे संसर्गयुक्त ही है। उसमें दो भेद नहीं पड़ते कि कुछ अंश संसर्ग वाले हों और कुछ अंश असंसर्ग वाले हों। ऐसे दो भेद नहीं हैं, किन्तु वहाँ यह विशेषता है कि प्रधान मुक्त आत्माओंके प्रति नष्ट होता हुआ भी अन्य संसारी आत्माओंके प्रति अनष्ट है उसका कारण यह है कि वह प्रधान मुक्त आत्माओंके प्रति तो निवृत्ताधिकार है और संसारी आत्माओंके प्रति प्रवृत्ताधिकार है, याने मुक्त आत्माके प्रति तो प्रधान निवृत्त हो जायगा और संसारी आत्माओंके प्रति प्रधान प्रवृत्त है तब ही तो संसारी आत्माके भोगादिकके सम्पादनमें प्रधान प्रवृत्त रहता है। यों निवृत्ति प्रवृत्तिका तो आरोप है, पर उसमें ऐसे दो अंश नहीं हैं कि किसीके साथ संसर्ग वाला हो और किसीके साथ असंसर्ग वाला हो। इस शङ्काके उत्तरमें स्याद्वादी कहते हैं कि प्रधानसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निवृत्ताधिकार और प्रवृत्ताधिकार मानकर भी प्रधानकी एकताके प्रसङ्गसे दूर नहीं हो सकता। विरुद्ध धर्मका अध्यास प्रधानमें जैसे पहिले बन गया था और इसी कारण प्रधानमें भेद होने लगा था उसी प्रकार निवृत्ताधिकार और प्रवृत्ताधिकार माननेपर भी प्रधानमें भेद आता है। ये दोनों भी विरुद्ध धर्म है। प्रवृत्त होना और निवृत्त होना ऐसे अधिकारकी बात विरुद्ध है, सो उन दोनोंका एक साथ अधिकरण नहीं बन सकता है प्रधानमें प्रवृत्ताधिकार भी रहे और निवृत्ताधिकार भी रहे, जैसे कि प्रधानमें संसर्गवान और असंसर्गवान ये दो विरुद्ध धर्मोका आधार प्रधान नहीं हो सकता और नष्टपना एवं अनष्टपना ऐसे दो धर्मोंका भी आधार प्रधान नहीं बन सकता। उस ही प्रकार निवृत्ताधिकार होना और प्रवृत्ताधिकार होना इन दो विरुद्ध धर्मोका भी अधिकरण एक नहीं हो सकता।

प्रधानमें विरुद्ध दो धर्मोंको आरोपित स्वीकार करके दोष प्रसंगसे बचनेका शङ्काकारका प्रयास—अब शङ्काकार कहता है कि यदि निवृत्ताधिकार और प्रवृत्ताधिकार ये दो विषय अलग हैं और विषय भेद होनेसे यहाँ बताया जा रहा है कि ये दोनों एक आधारमें नहीं रह सकते। बात यह कहना सही नहीं है भेद होने पर भी इन दोनोंका परस्पर विरोध है। या प्रधानके साथ विरोध नहीं है। जैसे एक पुरुषमें पितृत्व धर्म और पुत्रत्व धम दोनों एक साथ पाये जाते हैं। वही पुरुष किसीका पिता है और किसीका पुत्र है। तो यों पितापन, पुत्रपन या दोनों धर्म एक पुरुषमें रह गए और इसमें विषय भेद है, पिताका अर्थ अन्य है, पुत्रका अर्थ अन्य है, और ऐसा भी लगता होगा कि कुछ विरोधी धर्म भी हैं, पर उनमें विरोध नहीं है। हाँ एक विषयक प्रतिपक्ष मानें तो विरोध है। याने विषय ही अलग अलग हैं। अर्थ ही उनके न्यारे न्यारे हैं तो विषय भेद सो उन दोनों धर्मोका आधार एक बन गया, इसी प्रकार निवृत्ताधिकारपना और प्रवृत्ताधिकारपना ये दोनों विषय हैं और आत्माके नाते इन दोनोंमें भेद है। निवृत्ताधिकारपना तो मुक्त पुरुषोंको विषय करता है याने मुक्त आत्माओंके प्रति प्रधान निवृत्ताधिकार है। प्रवृत्ताधिकारपना अवयवी पुरुषोंको विषय करता है याने प्रधान संसारी पुरुषोंके प्रति प्रवृत्त है। तो यों भिन्न पुरुषकी अपेक्षासे इनमें भिन्न विषयपना पाया जा रहा है। निवृत्ताधिकारपनेका विषय कुछ अन्य है और प्रवृत्ताधिकारपनेका विषय कुछ अन्य है। तो यों भिन्न भिन्न पुरुषोंकी अपेक्षा भिन्न विषयता विद्यमान है और इन दोनोंका अधिकरण एक प्रधान बन सकता है। हां यदि नष्टपना और अनष्टपना ये दोनों धर्म किसी एकमें ही बताये जायें—जैसे मुक्त आत्मा में ही नष्टत्व और अनष्टत्व धर्म है तो विरोध कह लीजिए या इन दोनों धर्मोंका नाम हम संसारी आत्माओंमें घटायें तो विरोध कह लीजिए परन्तु एक आत्मामें दोनों धर्म नहीं घटाये जा रहे। मुक्त आत्माकी अपेक्षासे प्रधानके नष्टत्व धर्म है और अमुक्त याने संसारी आत्माओंकी अपेक्षासे अनष्टत्व धर्म है। तो यों नष्टत्व और अनष्टत्व धर्मकी विवक्षासे भी एक प्रधानमें इन दोनोंका विरोध नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवभेदसे विषयभेद बताकर भी प्रधानकी विरुद्धधर्मद्वयताको असिद्ध करनेके प्रयासको खण्डित करते हुए उक्त शङ्काका समाधान—शङ्काकारके उक्त अभिप्रायका निराकरण करनेके लिए स्याद्वादी कहते हैं कि विषयभेद बताकर उनके अविरुद्ध होनेकी चेष्टा करना असङ्गत है क्योंकि जीवके भेदसे विषयभेद बता कर भी शङ्काकार विरोधी धर्मके अध्याससे मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् बरी नहीं हो सकता। प्रधान तो एकरूप ही माना गया है। तो जिस रूपसे प्रधान मुक्त आत्माओंके प्रति भी निवृत्ताधिकार वाला बताया जाता और अनष्ट बताया जाता तो बतलाओ विरुद्ध कैसे असिद्ध होगा ? प्रधानमें तो दो धर्म स्वीकार कर लिए गए ना ! तो यों विभिन्न रूपसे अब यह प्रधान नष्ट अनष्ट दोनों रूप बन गया। तो फिर प्रधान एक न रहा, उसमें भेद सिद्ध हो गया, क्योंकि प्रधानमें दो रूप सिद्ध हो गए। मुक्त आत्माओंके प्रति तो नष्ट है और संसारी आत्माओंके प्रति अनष्ट है। तो इस स्थिति में प्रधान एकरूप है और अनेकरूप है, यह बात बन गई। एक रूप तो मूलमें है, जैसे कि शङ्काकारने माना है कि प्रधान प्रधान ही रहता है किन्तु अब उसमें रूप दो आ गए, धर्म दो हो गए—एक तो नष्टरूप, दूसरा अनष्टरूप अथवा एक निवृत्ताधिकार रूप दूसरा प्रवृत्ताधिकार रूप।

सांख्य सिद्धान्तियों द्वारा प्रधानमें विरुद्ध धर्मोंका आरोपित कथन व प्रधानके बंधमोक्षकी व्यवस्था व पुरुषमें बन्धमोक्षका आरोपित कथनका विवरण—अब यहाँ सांख्य कहते हैं कि वास्तवमें प्रधान दो विरुद्ध धर्मोंका अधिकरण नहीं है याने प्रधानमें दो धर्म हैं नहीं, पर बात क्या होती है कि शब्दज्ञानको उत्पन्न करने वाले अवास्तविक विकल्पके द्वारा वे दो धर्म आरोपित होते हैं। चूंकि वे दो शब्द हैं और उन शब्दोंका जो ज्ञान बनता है वह मात्र विकल्प है। उस विकल्प के द्वारा प्रधानमें वे दो धर्म आरोपित किये जाते हैं, पर वास्तवमें उन दोनोंका प्रधान अधिकरण नहीं है। उन दो विरुद्ध धर्मोंका आधार प्रधान नहीं है। इससे सिद्ध इस तरह भी होता है कि देखो ! प्रधानको यदि वास्तविक आधार एक मान लिया जाय तो उसमें जो दो धर्मोंकी कल्पना की है उन धर्मोंमें भी अन्य धर्मकी कल्पना करें तो यों अनवस्था दोष आता है है, फिर उन अन्य धर्मोंमें भी अन्य धर्मकी कल्पना करें। तो ऐसे अनवस्था दोषसे दूर होनेके लिए यदि बहुत देर तक धर्म अधर्मकी कल्पना करके थकनेके बाद किसी धर्मको आरोपित मानना पडेगा तो देखिये ! बहुत दूर जाकर किसी धर्मको आरोपित स्वीकार करनेपर प्रधानमें ही क्यों न नष्टत्व धर्म और अनष्टत्व धर्मका आरोप मानलो ! आरोपित बात परमार्थिक नहीं कहलाती। तो यों प्रधानमें दोनों धर्म परमार्थिक न रहे जिससे कि भेद सिद्ध किए जायें। सारांश यह है कि प्रधानमें नष्टत्व धर्म, अनष्टत्व धर्म अथवा निवृत्ताधिकार, प्रवृत्ताधिकार ये दोनों धर्म आरोपित ही स्वीकार करना होगा। तब प्रधान एक अनेकात्मक न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बना जिससे कि वह समस्त वस्तुओंमें भी एकानेकात्मक सिद्ध कर सके । प्रधान एक है निरंश है, व्यापक है और उसके संसर्गसे संसारी आत्मा अथवा कपिल विशेषज्ञ सर्वज्ञ हो सकता है । उस प्रधानका संसर्गमुक्त आत्माओंके प्रति नहीं है तो मुक्त आत्मा सर्वज्ञ नहीं हुआ करता । उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका उक्त अभिप्राय उचित नहीं है । सांख्योंने बताया है कि प्रधानमें नष्टत्व और अनष्टत्व धर्म आरोपित है अथवा वह मुक्त आत्माओंके प्रति अपना अधिकार खो चुका है, लेकिन संसारी आत्माओंके प्रति अपना अधिकार बनाये हुए है । ऐसे दो धर्म भी प्रधानमें आरोपित हैं, पारमार्थिक नहीं हैं । तो ऐसा कहने वाले सांख्योंको ऐसा कहनेपर भी बाध्य होना पड़ेगा कि पुरुषके भी मुक्तपना और अमुक्तपना ये दो धर्म आरोपित हैं, वास्तविक नहीं हैं और ऐसा माननेसे वास्तवमें कोई आत्मा न कहलायगा यह भी एक कल्पनाकी ही चीज मानी जायगी । सारांश यह है कि जैसे शङ्काकार बता रहे हैं कि प्रधान वास्तवमें दो विरुद्ध धर्मोंका आधार नहीं है, किन्तु कल्पनासे ही प्रधानमें दो विरुद्ध धर्मोंका आरोप किया जाता है । केवल कल्पनासे धर्मोंका अध्यारोप माननेपर पुरुषके प्रति भी मुक्तपना और अमुक्तपनामें दो काल्पनिक धर्म ठहरेंगे वास्तविक न ठहरेंगे । तो जब वास्तविक न रहे तो यह मानना पड़ेगा, कि पुरुष कोई मुक्त नहीं होता । अब यहाँ सांख्य कहते हैं कि भाई आपका कहना निःसन्देह ठीक है याने पुरुषका धर्म मुक्त॰पना और अमुक्तपना नहीं है । पुरुष तो एकरूप है । मुक्तपने और अमुक्तपनेका भेद तो प्रधानमें ही बनेगा, क्योंकि पुरुष तो एक मात्र चैतन्य स्वरूप है । उसमें मुक्ति और बन्धनका भेद नहीं है । हाँ जब ज्ञान अहंकार आदिकका संसर्ग ज्ञान और अहंकार प्रधानकी बात है । जब प्रधान ही अमुक्त रहा । संसारी रहा और यही प्रधान जब मुक्तिके कारणभूत तत्त्वज्ञान और वैराग्य परिणाम वाला बनता है तो इसीके ही मुक्तपना बनता है और यही प्रधान मुक्तिसे पहिले मोक्षका उपदेशक बनता है । तो पुरुष तो एक निर्विकल्प अपरिणामी चैतन्य तत्त्व है, उसमें मुक्त और बन्धका विकल्प तो प्रधानमें है, वह संसारी आत्माके प्रति तो प्रवृत्ताधिकार है अतएव वहाँ प्रधानमें अमुक्तपना सिद्ध है और वही तत्त्वज्ञान और वैराग्य परिणाममें सम्पन्न होनेपर मुक्त बन जाता है, और, तब मुक्त आत्माके प्रति निवृत्ताधिकार हो जाता है । ऐसे ही वही है प्रधान तत्त्वज्ञानके बाद और मुक्तिसे पहिले मोक्षमार्गका प्रणेता होता है । अब इसका समाधान करनेके लिए पहिली कारिकामें शङ्काकारका भाव खोलकर तीन कारिकाओंमें शङ्का समाधान पूर्वक उनका निराकरण किया जायगा ।

प्रधानं ज्ञत्वतो मोक्षमार्गस्याऽस्तूपदेशकम् ।
तस्यैव विश्ववेदित्वाद् भेत्तृत्वात्कर्मभूभृताम् ॥ ८० ॥

इत्यसम्भाव्यमेवास्याऽचेतनत्वात्पटादिवत् ।
तदसम्भवतो नूनमन्यथा निष्फलाः गुणाः ॥ ८१ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भोक्ताऽऽत्मा चेत्स एवाऽस्तु कर्ता तदविरोधतः ।
विरोधे तु तयोर्भोक्तुः स्याद्भुजौ कर्तृता कथम् ॥ ८२ ॥

प्रधानं मोक्षमार्गस्य प्रणेतृ स्तूयते पुमान् ।
मुमुक्षुभिरिति ब्रूयात्कोऽन्योऽकिञ्चित्करात्मनः ॥ ८३ ॥

प्रधानको सर्वज्ञ, व मोक्षमार्गप्रणेता व कर्मभूभृद्भेत्ता माननेपर पुरुष कल्पनाकी निरर्थकता—शङ्काकारका यह पक्ष था कि प्रधान ही तो तत्त्वज्ञ बनता है, प्रधान ही विरक्त बनता है, प्रधान ही मोक्षमार्गका प्रणेता बनता है। यों प्रधान ही मोक्षमार्गका उपदेशक है। क्योंकि ज्ञानी भी तो प्रधान ही है। प्रत्येक पुरुष ज्ञानसे रहित है वह तो मात्र चित्स्वरूप है। ज्ञान तो प्रधानका धर्म है। तब प्रधान ही सर्वज्ञ है और प्रधान सर्वज्ञ यों है कि वही कर्म पर्वतका भेदने वाला है याने क्लेश, कर्मविपाक आशय इनसे यह दूर हो जाता है, जब सत्त्व गुणका प्रकर्ष प्राप्त होता है। इस तरह प्रधान ही मोक्षमार्गका प्रणेता रहा, किन्तु अरहत या महेश्वर या पुरुष सर्वज्ञ व मोक्षमार्गका प्रणेता नहीं होता, ऐसी शङ्का शङ्काकारकी थी। उसके समाधानमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि चूंकि प्रधान अचेतन है, ऐसा अचेतन प्रधान कर्म पहाड़का भेदने वाला और समस्त तत्त्वोंका जानने वाला हो सके यह बात सिद्ध नहीं हो सकती और जब न विश्ववेत्तापन सिद्ध हुआ न कर्मपर्वतका भेत्तापन सिद्ध हुआ तो मोक्षमार्गका प्रसङ्ग भी नहीं बन सकता। यदि अचेतन होनेपर भी और उस हीको कर्मभूभृतका भेत्ता और समस्त तत्त्वोंका ज्ञाता सिद्ध कर दिया जाय और साथ ही उस प्रधानको ही मोक्षमार्गका प्रणेता मान लिया जाय तब पुरुषकी कल्पना करना ही व्यर्थ है। अब पुरुष किस काम आया सो बताओ। सारे काम प्रधानने कर डाले, वही संसारी बन गया। वही मुक्त बन गया, फिर पुरुष तत्त्वके माननेकी क्या आवश्यकता है? इसके समाधानमें यदि शङ्काकार यह कहें कि पुरुष भोक्ता है सो भोग्य पदार्थका भोक्ता होनेके कारण पुरुषकी कल्पना सार्थक है, पुरुषकी कल्पना निरर्थक नहीं हुई। तो इसके समाधानमें इतना ही कथन पर्याप्त है कि यदि पुरुष भोक्ता है तो वही कर्ता बन जायगा, क्योंकि कर्तृत्व और भोक्तृत्व एक आधारमें विरुद्ध नहीं हैं। जो करता है सो भोगता है। जो भोगता है सो करता है। भोक्ता और कर्ता दोनों एक आधारमें रह सकते हैं। यदि कर्तृत्व और भोक्तृत्वका एक आत्मामें रहनेका विरोध बताया जाय तो यहीं देख लीजिए भोक्तापन भी पुरुषमें सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि भोक्ता का अर्थ क्या है? भुजि क्रियाका कर्ता। भुजि नामकी क्रियाका अर्थ है भोगना। उस भुजि क्रियाका कर्ता कहलाया भोक्ता। तो पुरुषमें तो कर्तापनका विरोध बताया जा रहा तो वह भोगनेका कर्ता कैसे बन गया? भोगनेका कर्ता होनेका ही अर्थ है भोगने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाला यदि एक पुरुषमें भोक्ता और कर्ता इन दोनोंका विरोध हो तब फिर भोक्ता ही सिद्ध नहीं हो सकता। और, फिर सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो देखो कि मोक्ष-मार्गका प्रणेता तो बताया जा रहा है प्रधानको और आदेश दिया जा रहा है मुमुक्षु पुरुषोंको कि वे पुरुषकी स्तुति करें। जब भगवान प्रधान कहलाया, मोक्षमार्गका प्रणेता कहलाया तो स्तुति भी उस प्रधानकी करें। तो मोक्षमार्गका नायक बताया प्रधानको और स्तुति कर रहे हैं पुरुषकी तो ऐसा विरुद्ध आचरण करने वाला अकिञ्चित्करको छोड़कर और कौन हो सकता है ?

प्रधानके ही सर्वज्ञत्व, कर्मभूभृद्भेतृत्व सिद्ध करके मोक्षमार्ग प्रणेतृत्व सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास— सांख्य कहते हैं कि हम तो प्रधानको ही मोक्ष मार्गका उपदेशक मानते हैं। क्योंकि प्रधान ही ज्ञाता है प्रधानसे ही महान बुद्धि अथवा ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। इस कारणसे प्रधान ही ज्ञाता है और वही मोक्षमार्ग का उपदेशक है। यहाँ यह अनुमान प्रयोग किया जायगा कि जो मोक्षमार्गका उपदेशक नहीं है वह ज्ञाता भी नहीं हो सकता। जैसे घट पट आदिक अचेतन पदार्थ जो व्यवहारमें सामने विदित होते हैं वे मोक्षमार्गके उपदेशक नहीं हैं तो ज्ञाता भी नहीं देखे जाते अथवा मुक्त आत्मा मोक्षमार्गका उपदेशक नहीं है। सो वह भी ज्ञाता नहीं देखा गया, किन्तु प्रधान यहाँ ज्ञाता है अतएव वही मोक्षमार्गका उपदेशक है। प्रधान ज्ञाता है सर्वज्ञ है यह बात असिद्ध नहीं है क्योंकि कपिल आदिक पुरुषोंके साथ जिसका संसर्ग है वह प्रधान अर्थात् सर्वज्ञ है। उसका ज्ञातापन असिद्ध नहीं है क्योंकि वह सर्वज्ञ बन रहा है। जो ज्ञाता नहीं है वह विश्ववेदी नहीं हो सकता। जैसे घट आदिक ये ज्ञाता भी नहीं हैं और सर्वज्ञ भी नहीं हैं। यहाँ कोई ऐसी शङ्का न करे कि प्रधान तो अचेतन है वह ज्ञ और सर्वज्ञ कैसे हो सकता है ? शङ्का यों न करना चाहिए कि हम पृथक रहते हुए प्रधानको सर्वज्ञ नहीं कह रहे, किन्तु कपिल आदिक पुरुषोंके संसर्ग के कारण प्रधानको ज्ञाता और सर्वज्ञ कहते हैं। यहाँ तक यह बात सिद्ध हुई कि प्रधान मोक्षमार्गका उपदेशक है, क्योंकि वह ज्ञाता है और प्रधान ज्ञाता है क्योंकि वह सर्वज्ञ है। अब सिद्ध करते हैं कि प्रधान सर्वज्ञ है, क्योंकि वह कर्म पर्वतका भेदनहार है। वह किस तरह सर्वज्ञ है और किस तरह कर्मपर्वतका भेदनहार है सो यों समझिये कि कपिलके आत्मासे जिसने संसर्ग किया है ऐसा प्रधान सर्वज्ञ है, क्योंकि वह कर्मसमूहका नाश करने वाला है। जो विश्ववेदी नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ नहीं है वह कर्मसमूहका नाशक भी नहीं बन पाता। जैसे आकाश आदिक पदार्थ सर्वज्ञ नहीं हैं सो वे कर्मसमूहके नाश करने वाले भी नहीं हैं। कर्मसमूहका नाश करने वाला तो यह प्रधान है, अतएव यह प्रधान विश्ववेदी है। कोई यहाँ यह जानना चाहे कि प्रधान कैसे कर्मसमूहका नाश करने वाला है तो सुनो ! चूंकि रज और तम इन दोनों परिणामरूप अशुद्ध कर्मसमूहका उसके ही सम्यग्ज्ञानके योगसे नाश हो जाता है। इससे प्रधान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्मभूभृत्का भेत्ता है यह बात सिद्ध होती है। प्रधानमें तीन गुण हैं—सत्त्व रज और तम। जब रज और तम ये अशुद्ध परिणाम उसके प्रबल होते हैं तो यही तो कर्म कहलाता है। जब उसमें सत्त्व गुणका प्रकर्ष होता है तो रज और तम ये दुर्गुण दूर हो जाते हैं। तो सत्त्वका प्रकर्ष होनेसे सम्प्रज्ञात योग उत्पन्न होता है। सम्प्रज्ञात योगका अर्थ है ऐसी समाधि, ऐसी समता कि जहाँ हलन चलन भी समाप्त है, और भीतर विचारकी तरंगें भी दूर हो जाती हैं। ऐसी सम्प्रज्ञात योग उत्पन्न होता है तब प्रधान में सत्त्वका प्रकर्ष बनता है। तो सत्त्वके प्रकर्ष होनेसे सम्प्रज्ञात योग उत्पन्न होता है और सम्प्रज्ञात योगके बलसे सत्त्व और रज इन अशुद्ध कर्म परिणामका विनाश हो जाता है। यों प्रधान कर्म पहाड़का भेदनहार है और इसी कारण वह सर्वज्ञ है और सर्वज्ञके कारण वही वास्तविक ज्ञाता है। और ज्ञाता होनेसे प्रधान ही मोक्षमार्गका उपदेशक है। यह सिद्ध होता है। सम्प्रज्ञात योग सर्वज्ञके होता है, इस बातको जितने सर्वज्ञवादी हैं सभी मानते हैं, चाहे उसका नाम कोई शुक्लध्यान रख ले कोई कुछ रख ले। सम्प्रज्ञात योग माने बिना सर्वज्ञताकी मान्यता किसीने नहीं की है। तो इस तरह यह सिद्ध हो गया कि प्रधान ही वास्तविक मोक्षमार्गका उपदेशक है।

प्रधानमें अचेतनत्व होनेके कारण सर्वज्ञत्व आदिका अभाव बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका उक्त मंतव्य सम्भव सिद्ध नहीं होता। जब प्रधानको स्वयं अचेतन स्वीकार किया है, तो वह कर्मसमूहका नाशक कैसे सिद्ध होगा? यहाँ यह अनुमान प्रयोग किया जायगा कि प्रधान कर्मसमूहका नाशक नहीं है क्योंकि वह स्वयं अचेतन है। जो स्वयं अचेतन है वह कर्मसमूहका नाशक नहीं बन पाता, जैसे वस्त्रादिक। और, स्वयं अचेतन है प्रधान इस कारण वह कर्मसमूहका नाशक नहीं हो सकता। और, जब कर्मसमूहका नाशक न बना तो सर्वज्ञ न बना। सर्वज्ञ न बना तो ज्ञाता न बना। ज्ञाता न बना तो मोक्षमार्गका उपदेशक नहीं बन सकता। इस प्रसङ्गमें शंकाकार कहते हैं कि हम प्रधानको सर्वथा अचेतन नहीं मानते। चेतन आत्माके संसर्गसे प्रधानको हमने चेतन स्वीकार किया है, इस कारण आपका हेतु असिद्ध है। हेतु यह दिया गया था कि प्रधान स्वयं अचेतन है इस कारण वह कर्मभूभृतका भेदनहार नहीं हो सकता। सो हम प्रधानको सर्वथा अचेतन नहीं मानते हैं। चेतनके संसर्गसे चेतन हो जाता है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह कथन उचित नहीं है कि प्रधानको चेतनके संसर्गसे चेतन माना है, इससे हेतु असिद्ध हो जायगा। हेतु यह दिया गया है कि प्रधान स्वयं अचेतन है। स्वयं जो विशेषण दिया गया है उससे यह सिद्ध होता है कि प्रधान स्वरूपतः अचेतन है इस कारण कर्मभूभृतका भेत्ता नहीं हो सकता। चेतनके संसर्गसे प्रधानको चेतन मान लिया जाय तो वह तो औपचारिक बात है। परमार्थतः स्वयं तो अचेतन है। तो स्वयं जो अचेतन है वह नहीं हो सकता कर्मपर्वतका भेदन-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हार। चेतनके संसर्गसे चेतन कहनेकी बात उपचारसे हो सकती है। स्वरूपतः तो पुरुषको ही चेतन स्वीकार किया गया है और इसी तरह स्वरूपत: प्रधानको अचेतन स्वीकार किया है। स्पष्ट ही उनका कथन है कि चेतन पुरुषका स्वरूप है तो प्रधान स्वयं अचेतन रहा। इससे यह हेतु सिद्ध हो गया कि जो स्वयं अचेतन होता है वह कर्म पहाडका भेदनहार नहीं होता और जब प्रधान कर्मपहाड़का भेदनहार नहीं है तो वह विश्ववेदी भी नहीं बन सकता। जो कर्मसमूहका नाशक न होगा वह विश्ववेदी नहीं होता। और जब प्रधान विश्ववेदी नहीं है तो वह ज्ञ भी नहीं है अर्थात् ज्ञाता नहीं है। जो स्वयं अचेतन होता है वह ज्ञाता कभी नहीं बन सकता। ऐसा अज्ञ कोई भी हो मोक्षमार्गका उपदेशक नहीं बन सकता। तो प्रधानमें ये सारीकी सारी बातें असम्भव हैं—वह न कर्मभूभृतका भेत्ता है न विश्ववेदी है, न ज्ञाता है और न मोक्षमार्ग का उपदेशक है। कितने आश्चर्यकी बात है कि स्वयं अचेतन प्रधानमें कैसी असम्भव बात मान ली गई है। तो जब ये चारों बातें नहीं हैं तो यह भी समझ लेना चाहिए कि स्वयं अचेतन प्रधानके सम्प्रज्ञात समाधि भी नहीं बन सकती। और सम्प्रज्ञात समाधि बनानेका कारण यह बताया था कि बुद्धिसत्त्वका प्रकर्ष हो जाता है याने उत्कृष्ट ज्ञान हो जाता है यह बात भी अचेतन प्रधानके असम्भव है। उत्कृष्ट ज्ञान, केवल ज्ञान वही तो बुद्धिसत्त्व है, उसका तो नाम निशान भी अचेतनमें नहीं हो सकता। और, जब सत्त्व प्रकर्ष प्रकर्ष याने ज्ञानकी उत्कृष्टता प्रधानमें नहीं बन सकती है, तो यह कहना कि रज और तमरूप मल आवरणका नाश हो जाता है, यह कथन भी हास्यास्पद है।

विपर्यय ज्ञानसे प्रधानके संसारित्वकी व तत्त्व ज्ञानसे प्रधानके सर्वज्ञत्वकी व्यवस्थाका शंकाकार द्वारा प्रयास—सांख्य कहते हैं कि देखिये! प्रधान यद्यपि अचेतन है, लेकिन यह भी तो देखा जाता है कि उसका विपर्यय हो जाय तो बंध होने लगता हैं, संसारीपना बन जाता है, याने विपरीत ज्ञान हो जानेसे बन्ध होता है और संसारी बन जाता है यह प्रधान। इसमें तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है तो कर्मरूप मल आवरणका नाश होता है और वहाँ ऐसे कर्मका नाश होनेसे समाधि विशेष जागृत होता है और उस समाधिविशेषसे प्रकृति पुरुष विषयक भेद विज्ञान बनता है और प्रकृति पुरुष विषयक भेद विज्ञान होनेसे सर्वज्ञता प्रकट होती है, फिर मोक्षमार्गका उपदेष्टा बनता है। तो यों जीवनमुक्त दशामें तो मोक्षमार्गका प्रणेता हुआ और जब यह विवेक ख्याति भी नष्ट हुई तो निर्विज समाधि बनी। फिर मुक्त हो गया। ये सब बातें प्रधानमें उत्पन्न होती हैं। इनसे क्या विरोध आता? याने प्रधानमें दो खासियत हैं—एक तो विपरीत ज्ञान हो तो वह संसारी बनता है और तत्त्वज्ञान हो तो उस तत्त्वज्ञानके उपायसे प्रकाश बढ़ता जाता है और यह जीवनमुक्त होता है जहाँ कि मोक्षमार्गका उपदेशक है। पश्चात् आत्मा याने पुरुष मुक्त हो जाता है वह किस क्रमसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि पहिले तो उसमें तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ। तत्त्वज्ञान होनेसे कर्म नष्ट हुए, कर्म नष्ट होनेसे समाधि विशेष उत्पन्न हुई, विवेक ख्याति हुई अर्थात् प्रकृति और पुरुषमें भेद विज्ञान हुआ इस भेद विज्ञानसे सर्वज्ञता हुई और सर्वज्ञता होनेसे मोक्षमार्गका प्रणेता बन गया और वही बात जीवनमुक्त दशामें बन गई। अब समय गुजरनेपर जो भेद विज्ञानकी तरंग है वह दूर हो जाती है तब इसके निर्बीज समाधि निष्तरङ्ग नीरङ्ग निर्विकल्प प्रकाश रहता है और उस प्रकाशबलसे यह मुक्त हो जाता है। यह हमारा मंतव्य है।

प्रधानके ही संसार मोक्ष आदि सब मान लेनेपर पुरुषकी कल्पनाकी अनर्थकता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकारने तो ऐसी कल्पनाकी है कि सब कुछ प्रधानके ही बन गया लेकिन संसारी भी प्रधार बना, बंध भी प्रधानके ही हुआ। विपरीतज्ञान प्रधानके हुआ तो संसार अवस्थाकी सारी बात प्रधानमें हुई। तत्त्वज्ञानसे लेकर मुक्त होने तक ये सारी बातें भी प्रधानकी बनी तो अब पुरुषकी कल्पना किसलिए की जाती है। जब प्रधानसे ही संसार बना, मोक्ष बना, संसार और मोक्षके कारणभूत उपाय बने, सब कुछ हो गया प्रधानसे ही, तो प्रधानको मानना ही पर्याप्त है। फिर पुरुष तत्त्वको माननेकी क्या आवश्यकता रही? उक्त आपत्तिके निवारणार्थ सांख्य कहते हैं कि जब संसार आदिक परिणामोंका कर्ता प्रधान सिद्ध हो जाता है और भोग्य सिद्ध हो जाता है तब किसी भोक्ता पुरुषकी कल्पना करनी चाहिए ना! प्रधान तो भोग्य है, कुछ भी भोग्य भोगने के बिना बन नहीं सकता। तो तब कर्ता और भोग्य प्रधान सिद्ध हो गया था जब भोक्ताकी कल्पना करना सही है और इस तरह पुरुषकी कल्पना करना व्यर्थ नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि कर्ता माना प्रधानको और भोक्ता माना पुरुषको, ऐसी कल्पना करना व्यर्थ है क्योंकि भोक्ता कहा जा रहा है जिसको उसी पुरुषके कर्तापन भी सिद्ध होता है। और यों प्रधानको कर्ता मानना अनुचित बात है। जब भोक्ता पुरुष है तो वही कर्ता है, अन्यका कर्तृत्व मानना निरर्थक है। इसमें कोई विरोध नहीं आता कि जो कर्ता हो सो ही भोक्ता हो। भोक्तृत्व और कर्तृत्वमें विरोध नहीं है। अगर विरोध मान लिया जाय तो "भोक्ता" यही बात सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि भोक्ता शब्द बना कैसे? भुजि धातुमें कर्तृत्व सम्बन्धी प्रत्यय लेकर भोक्ता बना है। भोक्ताका अर्थ है भोगनेकी क्रियाका करने वाला। अब पुरुषको "करने वाला" इस शब्दसे ही चिढ़ हो गई। तो वह भुजि क्रियाका कर्ता कैसे बन जायगा? यों वह भोक्ता भी नहीं बन सकता। तो पुरुषको भोक्ता यह संज्ञा भी नहीं दी जा सकती है। सांख्य कहते हैं कि देखिये! "भोक्ता" इस शब्दमें कर्ता अर्थमें जो प्रत्यय लगा है और कर्ता अर्थमें शब्द प्रयोग होता है तो इस शब्द प्रयोगके कारण पुरुषमें वास्तविक कर्तृत्व नहीं कहा जा सकता। शब्दमें ही कर्तृत्व जाहिर हो रहा है तो वह शब्द

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रयोगकी बात है। कहीं कर्ता अर्थमें शब्द प्रयोग हो जानेसे पुरुषमें वास्तविक कर्तृत्व नहीं कहा जा सकता। क्योंकि शाब्दिक ज्ञानको उत्पन्न करने वाला कर्तृत्व विषयक जो विकल्प है वह अवस्तु है, वास्तविक नहीं है। तो शब्दमें ही तो समझा गया कि यह भोक्ता है। भुजि क्रियाका कर्ता है तो यह शाब्दिक ज्ञानका विकल्प है। शाब्दिक ज्ञानका विकल्प वस्तुरहित होता। वह तो एक विकल्पकी समझ बनायी गई है। तो यों शब्द प्रयोगमें कर्तृत्व जाहिर होनेसे कहीं वस्तु कर्ता न बन जायगा। इस तरह पुरुष तो भोक्ता ही है, कर्ता नहीं है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यदि शब्द प्रयोग मात्रसे वास्तविकता नहीं मानी जाती अर्थात् कर्ता अर्थमें शब्द प्रयोग हो गया कि यह भोक्ता है और इस तरह यहाँ वास्तविक कर्तृत्व नहीं मानते तो पुरुषके कर्तापनका भी धर्म अवस्तु हो जायगा। और जब पुरुष अभोक्ता हो गया तो वह चेतन भी सिद्ध न हो सकेगा। देखिये ! चेतन शब्द कहा तो उससे जो शाब्दिक ज्ञान होता है तो उस शब्द ज्ञानका जनक यह चेतना विषयक विकल्प है। चेतना शब्द सुनकर किसी तरहका विकल्प ही तो हुआ। तो शब्द ज्ञानसे जो विकल्प बना वह भी अवस्तु बन गया। तो लो तब चेतन भी अवस्तु बन गया, क्योंकि चेतन शब्द सुनकर जो कुछ विकल्प बना तो विकल्प अवस्तु है। तो यों पुरुष चेतन न रह सका, क्योंकि चेतन अवस्तु बन गयी। जैसे कि कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक शब्द शाब्दिक ज्ञानके उत्पन्न करने वाले हैं वे विकल्प हैं तो शब्द और शाब्दिक विकल्प अवस्तु माना गया है और उस तरहसे कर्तृत्व और भोक्तृत्व ये वस्तु धर्म न रहे। इसी तरह चेतनपना भी वस्तु धर्म न रहेगा।

पुरुषको अवक्तव्य कहनेपर व्यवस्थाका पूर्ण अभाव—सांख्य कहते हैं कि देखिये ! चेतनमें चिति शक्तिकी बात है। चिति शक्ति न तो किसी शब्दका विषय है और न किसी विकल्पका विषय है। तो शब्द और विकल्पका विषय न होनेसे पुरुष अवक्तव्य है याने पुरुष चेतन किसी भी शब्द और विकल्पके द्वारा कहने योग्य नहीं है। शब्द और विकल्पका विषय होनेसे ही तो अवस्तु बनता था। तो पुरुष शब्द और विकल्पका विषय ही नहीं है इसलिए उसे अवस्तु करार देनेका कोई अवकाश नहीं है। इसके समाधानमें स्याद्वादी कहते हैं कि पुरुषको यदि सर्वथा अवक्तव्य कह दिया जाय तो वह अवक्तव्य शब्दके द्वारा भी कैसे कहा जा सकता है ? यदि पुरुष सर्वथा अवक्तव्य होता तो उसके लिए अवक्तव्य शब्द भी कहा जा सकता था। किसी तरह इसको वक्तव्य बना ही तो दिया। अवक्तव्य कहकर भी कुछ अर्थ ही तो ध्यानमें आता है, और दूसरी बात यह है कि यदि पुरुषको अवक्तव्य कहा जाय तो दूसरे पुरुषोंको, शिष्योंको उसका ज्ञान कैसे होगा, यह भी बताना चाहिए। बताओगे यही ना कि दूसरोंको ज्ञान शब्द प्रयोग द्वारा ही कराया जाता है। तब फिर वह उपाय बताओ, वह शब्द प्रयोग कहो जिससे कि चेतनका बोध हो सके। यदि सांख्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह कहें कि शरीरज्ञानसे दूसरोंको उस पुरुषका ज्ञान हो जाता है तो यह कथन यों सङ्गत न रहेगा कि शरीरज्ञान भी तो तब ही प्रवृत्त हो सकता था जब वह शब्दका विषयभूत होता, लेकिन पुरुषको तो शब्दका विषयभूत ही नहीं माना, उसे अवक्तव्य कहा जा रहा है। तो ऐसे शब्दके अविषयभूत पुरुषमें शरीरज्ञानकी भी प्रवृत्ति नहीं बन सकती। सारांश यह है कि जब पुरुष किसी भी शब्दका विषयभूत नहीं है तो उसमें शरीरज्ञानरूप कार्यानुमानको प्रवृत्ति करना असम्भव है। यही तो शङ्काकार कह रहा था कि पुरुष है, क्योंकि शरीरज्ञान हो रहा है। यदि पुरुष न होता तो शरीरज्ञान न बन सकता था। तो भला जब पुरुषको सर्वथा अवक्तव्य शब्दने अविषय बता दिया तो शब्दके अविषयभूत पुरुषकी जानकारीके लिए कुछ भी तो नहीं कहा जा सकता, फिर शरीरज्ञानरूप कार्यानुमान कैसे बना डाला जायगा ? तो देखो ! शब्दव्यवहारके बिना दूसरोंको पुरुषका ज्ञान कराना भी अशक्य होगया। और, स्वयं के लिए भी उस प्रकारके पुरुषका ज्ञान कैसे हो सकता ? क्योंकि वह तो समस्त विषयोंका अविषय है और फिर अकिंचित्कर भी है। अकिञ्चित्कर यों है कि सारा संसार मोक्ष, उपाय, तत्त्वज्ञान सबके सब प्रधानके ही तो मान डाले हैं, पुरुषमें कुछ काम ही नहीं माना गया है। तो ऐसे पुरुषको स्वयंका ज्ञान कैसे हो सकता है ? स्वसम्वेदनसे उसका ज्ञान मानना असङ्गत है, क्योंकि पुरुष तो ज्ञानरहित है। ज्ञानी तो प्रधानको माना है। तो ज्ञानरहित पुरुषमें स्वसम्वेदनकी बात कैसे बन सकती है ? यदि यह कहा जाय कि पुरुषके स्वरूपकी संचेतना स्वयं होती है। तो यह सब बात उन्मत्त जनों जैसी है। सिद्धान्तमें तो यह बताया कि बुद्धिसे परिज्ञात पदार्थोंको पुरुष अनुभव करता है और अब यहाँ यह कहने लगे कि पुरुष अपने स्वरूपका स्वयं अनुभव करता है। तो ये परस्पर विरुद्ध बातें हैं। स्वयं जब बुद्धिसे अज्ञात है तो उस स्वरूप को पुरुष जान कैसे सकता है ? जैसे कि बुद्धिसे अज्ञात अपने स्वरूपको जान लेता है ऐसे ही बाह्य पदार्थोंको भी पुरुष जान लेगा। फिर बुद्धि और प्रधानकी कल्पना करना व्यर्थ है।

स्वतः स्वरूप संवेदनकी तरह अर्थ संवेदनकी उपपत्ति भी स्वतः मान लेनेका प्रकरण—सांख्य कहते हैं कि बाह्य पदार्थोंका ज्ञान तो कभी कभी होता है, कादाचित्क है। कभी होता कभी नहीं, इस कारण बाह्य पदार्थोंके ज्ञान करनेमें पुरुष को बुद्धिकृत अध्यवसायकी अपेक्षा होती है। सिद्धान्त यह है कि बुद्धिसे निर्णीत किए गए पदार्थका पुरुष संचेतन करता है तो बुद्धिका अध्यवसाय भी अनित्य है, क्योंकि विधि बुद्धि अनित्य है। तब बाह्य पदार्थका ज्ञान भी अनित्य हो गया। सारांश यह है कि प्रधानका धर्म है बुद्धि जिसके द्वारा बाह्य पदार्थका परिज्ञान किया जाता है। सो बुद्धि है अनित्य तब उसके कार्यरूप बाह्य पदार्थ विषयक ज्ञान भी अनित्य हुआ। तो पुरुष जो अर्थ संचेतन करता है, पदार्थ विषयक अनुभव कहता है तो उसमें बुद्धिके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मान लेना चाहिए कि जो स्वरूपमात्रका सम्वेदी है, इस तरह स्वसम्वेदन प्रत्यक्षके ही प्रमाणका लक्षण सम्भव होता है। जैसे कि यहाँ स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष अपने आपसे उत्पन्न न होकर भी और अपने आपके आकारको धारण न करके भी और अपने आपमें व्यवसाय याने विकल्पको उत्पन्न न करके भी प्रत्यक्ष माना गया है ना! क्यों प्रत्यक्ष माना गया है कि प्रत्यक्षका वास्तविक लक्षण यह है कि जो कल्पनासे रहित हो और भ्रान्ति रहित हो वह प्रत्यक्ष कहलाता है। तो देख लीजिए! हम सब लोगोंका जो स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष है वह स्वसे उत्पन्न नहीं होता, स्वके आकारको भी धारण नहीं किए हुए है और स्वमें विकल्प भी नहीं बना रहता है फिर भी प्रत्यक्ष तो है ना, इसी तरह समझ लीजिए कि योगियोंका भी प्रत्यक्ष किसी पदार्थसे उत्पन्न नहीं होरहा याने परमार्थतः भूत और भविष्य किसी भी तत्त्वसे स्वयं उत्पन्न नहीं हो रहा और न उन पदार्थोंके आकारको धारण कर रहा और न उनके विकल्पको उत्पन्न करता है फिर भी वह प्रत्यक्ष है क्योंकि प्रत्यक्षका यह लक्षण कहा गया है कि जो कल्पनासे रहित हो और अभ्रान्त हो वह प्रत्यक्ष है यह लक्षण सुगतज्ञानके व योगीके प्रत्यक्षमें भी घटित हो जाता है। यदि सुगतका ज्ञान समस्त तत्त्वोंसे उत्पन्न हो अर्थात् पदार्थों से उत्पन्न हो और पदार्थोंके आकारको ग्रहण करे तथा पदार्थोंका विकल्प बनाये तो सुगत प्रत्यक्ष समस्त पदार्थोंको विषय करने वाला और कल्पनासे रहित कैसे सिद्ध होगा? तब यह ही स्वीकार करना चाहिए कि सुगतके प्रत्यक्षमें सर्व पदार्थ कारण नहीं हैं अर्थात् सब पदार्थोंमें ज्ञान उत्पन्न हुआ सुगतका। इस तरह हम नहीं मानते और यदि हम सब पदार्थोंसे सुगत ज्ञानका उत्पन्न होना मानते तब तो यह आपत्ति दी जा सकती थी कि जो वर्तमान पदार्थसे भी ज्ञान उत्पन्न हो नहीं सकता और भविष्य कालीन पदार्थसे भी ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता तो सर्वज्ञ कहाँ रहा? सुगतका ज्ञान पदार्थोंसे उत्पन्न नहीं हो सकता तो सर्वज्ञ कहाँ रहा? सुगतका ज्ञान पदार्थोंसे उत्पन्न नहीं हो रहा तब सर्वज्ञताका निषेध नहीं किया जा सकता। जो सिद्धान्तमें तदुत्पत्ति, ताद्रूप्य है तदध्यवसायका प्रतिपादन किया है वह तो मात्र व्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञानकी अपेक्षा है सुगत भगवानके प्रत्यक्षकी बात नहीं कही गई है। इसलिए देख लो! हम लोग किसी चीजको जानते हैं तो हमारे ज्ञानमें पदार्थका आकार आ गया ना! और उस पदार्थके निर्णयकी बात भी आ गई और लगता भी ऐसा है कि इस पदार्थसे मेरेको ज्ञान पैदा हुआ। तो ये तीनों बातें हम लोगोंके प्रत्यक्षज्ञानमें पाई जाती हैं। सुगतके ज्ञानकी बात नहीं है ऐसी!

सुगतज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थोंसे न होकर भावनाप्रकर्षसे होनेके कारण सर्वज्ञतामें अविरोधका शङ्काकार द्वारा प्रतिपादन—अब कोई यदि यह जानना चाहे कि सुगतका प्रत्यक्ष किस तरहसे पैदा हुआ तो वह ज्ञान कैसे बना? सो सुनो! भावनाकी परम उत्कर्षतासे सुगतका प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। समस्त पदार्थोंसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुगतका ज्ञान नहीं होता, किन्तु भावनाकी उत्कृष्टतामे उत्पन्न होने वाले ज्ञानको योगिप्रत्यक्ष कहते हैं, ऐसा सिद्धान्तमें कहा गया है। न्यायबिन्दु नामक शास्त्रके रचने वाले आचार्य धर्मकीर्ति बौद्धका उपदेश है कि—"भावनाप्रकर्षपर्यन्तजम् योगिज्ञानं" इस सूत्रसे यह सिद्ध हुआ कि भावनाकी जहाँ उत्कृष्टता हो जाती है वहाँ योगियोंका प्रत्यक्ष ज्ञान पैदा होता है। वह भावना क्या है जिसकी उत्कृष्टता होनेसे योगियोंका प्रत्यक्ष ज्ञान बनता है ? सो सुनो ! भावना दो प्रकारकी होती हैं—एक श्रुतमयी भावना, दूसरी चिन्तामयी भावना। श्रुतमयी भावनाका अर्थ है कि जो वाक्य सुने गए, उन सुने जाने वाले वाक्योंसे, परार्थानुमान वाक्योंसे जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है जिसे कि श्रुत शब्दसे कहा गया है, ऐसे श्रुतज्ञानसे जो भावना उत्पन्न होती है उसे श्रुतमयी भावना कहते हैं याने उपदेशको सुनकर जो भावना बनती है वह श्रुतमयी भावना है और चिन्तामयी भावना क्या है ? सो सुनो ! यही श्रुतमयी भावना जब प्रकर्षको प्राप्त होती है याने उत्कृष्ट बन जाती है तब वहाँ स्वार्थानुमान वाली चिंता उत्पन्न होती है। उस चिन्तन द्वारा उत्पन्न हुई भावनाको चिन्तामयी भावना कहते हैं सो ऐसी चिन्तामयी भावना वहाँ प्रारम्भ हो तब वह श्रुतमयी भावना उत्कृष्ट बने ! तो उस समयकी प्रारम्भ हुई चिन्तामयी भावना जब बढ़ बढ़कर अन्तिम उत्कर्षताको प्राप्त होती है तो उस भावनासे योगिप्रत्यक्षज्ञान उत्पन्न होता है। यों सुगत भगवानमें जो सर्वज्ञता प्राप्त हुई है वह चिंतामयी भावनाकी प्रकर्षतासे हुई है, समस्त तत्त्वोंसे उत्पन्न नहीं हुई है। इस तरह सुगतकी वास्तविक सर्वज्ञता सिद्ध है, उसकी वास्तविक सर्वज्ञताका अभाव नही कहा जा सकता। इस तरह सुगत मोक्षमार्गका प्रतिपादक सिद्ध होता है।

भावनाओंके विकल्पात्मक होनेके कारण अवस्तुभूत भावनासे ज्ञान प्रकर्षकी असिद्धि बताते हुए उक्त शङ्काका समाधान—अब उक्त अभिमतके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह समस्त प्रतिपादन विचारको नहीं सह सकता याने जब उसका विचार करेंगे तो उसका तथ्य प्रकट हो जायगा। देखिये ! श्रुतमयी भावना और चिंतामयी भावना दोनों ही भावना विकल्पात्मक हैं और क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तमें यह माना गया है कि जो-जो कुछ विकल्पात्मक हो वह-वह वस्तुका विषय करने वाला नहीं होता किन्तु उसका विषय अवस्तु है याने कुछ भी चीज नहीं है तो अवस्तुका विषय करने वाली भावनासे वस्तुविषयक योगिज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है ? योगियोंका ज्ञान तो वस्तुको विषय करता है। पदार्थ जैसा स्वलक्षणात्मक है, क्षणक्षयी है क्षणवर्ती है उसे जानने वाला होता है और ऐसे योगिज्ञानको कहा जा रहा है यह कि वह विकल्पात्मक भावनासे उत्पन्न हो रहा है तो भला बताओ विकल्पात्मक भावनासे निर्विकल्प ज्ञान कैसे हो सकता है ? दूसरी बात यह देखिये कि अवस्तुको विषय करने वाले विकल्पज्ञानसे वस्तुको विषय करने वाला ज्ञान होता ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं दिखता । इसी कारण यह बात भी बनती है कि जिस समय कोई पुरुष कामसे, शोकसे भयसे, उन्मादसे या स्वप्नादिकसे युक्त होता है याने जिसका ज्ञान काम-विह्वल हो या स्वप्न ले रहे हों तो ऐसे ज्ञानमें बहुतसे पदार्थ सामने खड़े हुएसे दीखते हैं । लेकिन वहाँ क्या पदार्थ वास्तवमें हैं ? जैसे कोई पुरुष कामवासनासे विह्वल हो तो तो उसके सामने स्त्री खड़ी हुई सी नजर आती है । पर वहाँ स्त्री है थोड़े ही । कोई पुरुष शोकविह्वल हो तो जिसके उपयोगमें शोक हो रहा है उसकी शक्ल सामने नजर आती है या जिससे डर उत्पन्न हुआ हो उसकी भी शकल उसे दीखती है कि लो यह आया अब यह मुझे मारेगा ! इसी तरह जब उन्मत्तता हो पागलपन छाया हो तो वहाँ भी सामने पदार्थ नजर आते हैं । और, स्वप्न लेने वाला तो अच्छी तरह समझ ही रहा है कि जिस तरहकी स्वप्नमें कोई चीज देखी जाती है तो वहाँ वही चीज सामने खड़ी नजर आती है । तो देखो ! कामादिकसे विह्वल पुरुषको जो पदार्थ विषयमें हुआ है वह सब अवास्तविक है ना ! वह वस्तुविषयक नहीं है । तो जिनका ज्ञान ज्ञानादियुक्त है उनके कामिनी आदिक पदार्थ सामने खड़े हुएकी तरह दीखते हैं । तो यह कहा जा सकता कि उनका ज्ञान अतत्त्वको विषय कर रहा है, तत्त्वको विषय नहीं करता । तो इससे भी यह सिद्ध होता है कि विकल्पको उत्पन्न करने वाला ज्ञान वस्तुको विषय नहीं कर सकता है । तो जब यहाँ श्रुतमयी भावना और चिन्तामयी भावनासे योगियोंके ज्ञानका उत्पन्न होना बताया है तो यही आपत्ति आती है कि यह भावना तो विकल्पात्मक हैं । उन विकल्पात्मक भावनाओंसे निर्विकल्प योगिज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है ? ये दोनों भावनायें विकल्पात्मक हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, क्योंकि परार्थानुमानका वाक्य जब सुना तो उससे तो उत्पन्न हुई श्रुतमयी भावना । सुननेमें जो कुछ आता है वह सब परार्थानुमान है । अब किसी वाक्यको सुनकर उसका अर्थ जो विचारा जाता है तो जो अर्थ चिन्तनमें आया उस चिन्तनसे जो ज्ञानभावना उत्पन्न हुई वह चिन्तामणी भावना कहलाती है तो वहाँ भी विकल्प ही तो रहा, किसी पदार्थका आकार निर्णय ही तो प्रतिभासमें आ रहा । तो यों दोनों ही प्रकारकी भावनायें विकल्पात्मक हैं, और इन विकल्पात्मक भावनाओंसे सुगतज्ञानका उत्पन्न होना कहा जा रहा है तो वह सुगतज्ञान अवस्तुको विषय करने वाला होगा वास्तविक पदार्थको जान सकने वाला नहीं हो सकता । यों भी सुगतका ज्ञान अज्ञ बन गया । अवस्तुका ज्ञाता कहलाया । वास्तवमें ज्ञाता ही न रहा तब उसको सर्वज्ञ बननेकी बात कहना तो बहुत ही दूरकी बात है । इस तरह सुगत ज्ञान सर्वज्ञतासे रहित है अतएव वह मोक्षमार्गका प्रणेता नहीं हो सकता ।

क्षणिकवादमें ज्ञानकी अभूतार्थविषयताकी पुष्टि—सुगतज्ञान अभूत अर्थको विषय करता है । इस सम्बन्धमें स्वयं क्षणिकवादियोंने एक उदाहरण पेश किया है—"काम-शोक-भयोन्माद-चोर-स्वाप्नाद्युपप्लुताः । अभूतानपि पश्यन्ति पुरतो-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऽवस्थितानिव ॥" इसका अर्थ है कि काम शोक, भय, उन्माद, चोर और स्वप्न आदिकसे उपद्रवित पुरुष अभूत अर्थको इस तरह देखते हैं जैसे कि मानो वे सामने ही अवस्थित हो। तो जैसे कामादिकसे उपद्रवित पुरुष असत्य अर्थको यों देखता है जैसे कि वे सामने खड़े हों उसी प्रकार सुगतज्ञान भी अवस्तुको ही विषय करने वाला रहा, क्योंकि उसका ज्ञान श्रुतमयी और चिन्तामयी भावनासे उत्पन्न हुआ है तो निकल्पक ज्ञानसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है वह अवस्तुको ही विषय करेगा।

परमज्ञानकी भूतार्थविषयताको सिद्ध करने वाले पदार्थका शंकाकार द्वारा प्रस्ताव—अब यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि देखिये ! उक्त श्लोकका अर्थ हमारे पक्षमें घटित होता है, इस उदाहरणसे हमें यह प्रेरणा मिलती है कि देखो ! जब कामादिककी भावनासे, ज्ञानसे असत्य भी स्त्री आदिक सामने स्थितकी तरह स्पष्ट और साक्षात् जब ज्ञानमें आ रहे हैं तब फिर क्या कारण है कि श्रुतमयी और चिन्तामयी भावना ज्ञानसे चार आर्य सत्योंका साक्षात् प्रत्यक्षज्ञान नहीं हो। चार आर्य सत्य ये हैं—दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग। दुःखका अर्थ दुःख ही है। जैसे कि संसारके प्राणियोंके दुःख पाया जाता है। समुदयका अर्थ है दुःखके कारण। क्या क्या उपाय, क्या क्या वृत्तियाँ दुःखके कारण हैं उन दुःखोंका नाम है समुदय। निरोध का अर्थ है दुःखनिवृत्ति। दुःख जिनसे दूर हो जाय उनको कहते हैं दुःख निवृत्ति अथवा निरोगता। और, मार्ग कहलाते हैं दुःख निवृत्तिके उपाय। जिन उपायोंमें चल-कर दुःखोंकी निवृत्ति हो जाय वे मार्ग कहलाते हैं। ये चार आर्य सत्य कहे जाते हैं। तो जो योगी हैं, जिनको प्रत्यक्षज्ञान हो गया है उनको इन चार आर्यसत्योंका स्पष्ट परिचय है। तो उसके लिए यह उदाहरण दिया है कि देखो जब एक कामकी भावना से सामने खड़ी हुई स्त्री नजर आती है, शोकसे उपद्रवित हुए पुरुषको जिसका वियोग हुआ वह सामने खड़ा नजर आता। जो डर गया हो पुरुष जिससे डरा हो उसकी शकल सामने नजर आती है। स्वप्नमें दिखी हुई बात सामने नजर आती है, सो जब खोटी भावनासे भी कोई वस्तु सामने उपस्थित हुई सी दिखती है, तब फिर श्रुतमयी और चिन्तामयी भावनासे उत्पन्न हुए योगियोंके प्रत्यक्षमें ये चार आर्य सत्य क्यों न स्पष्ट आ जायेंगे। तो योगियोंके प्रत्यक्षमें ये चार आर्यसत्य स्पष्ट नजर आते हैं, इसके लिए उदाहरण बनाइये उस श्लोकको। तो इस पद्यका अर्थ हम इस तरह करेंगे क्योंकि भावनाकी उत्कृष्टतासे प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। उसमें स्पष्ट ज्ञानका जनक कौन है ? इसके लिए उदाहरण दिया है कि देखो ! स्पष्ट ज्ञानकी जनक भावना है। जैसे कि सामने स्त्री या इष्ट आदिक नहीं खड़ा लेकिन काम और शोककी भावनासे ही यह खड़ा नजर आता है। इस तरह हम इन सब श्लोक कथित कामादिकको दृष्टान्तरूपसे रखते हैं। दूसरी बात यह है कि श्रुतमयी और चिन्तामयी भावना वाला ज्ञान अवस्तुको विषय नहीं करता, क्योंकि उसमें तत्त्व ग्राह्य है। किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ने कोई वाक्य सुना और सुनकर उसके अर्थका ज्ञान हुआ और उससे फिर किसी पदार्थका चिन्तन किया तो उस चिन्तनमें कोई चीज प्राप्त तो हुई। तो जहाँ कोई वस्तु प्राप्त हो सकती है उसे अवस्तु कैसे कह सकते हैं ?

निर्णायक ज्ञानमें वस्तुविषयत्वकी क्षणिकवादियों द्वारा सिद्धि— देखिये ! श्रुत तो होता है परार्थानुमानरूप और चिन्ता होती है स्वार्थानुमानरूप। क्षणिकसिद्धान्तमें जितना जो कुछ भी ज्ञान है और उस ज्ञानमें यदि कोई निर्णय पड़ा है तो वह सारा अनुमान ज्ञान कहलाता है। प्रत्यक्ष ज्ञानमें निर्णय नहीं बसा करता किन्तु एक सम्वेदन मात्र है। तो जितने भी निर्णायक ज्ञान हैं वे सब अनुमान ज्ञान हैं वे दो प्रकारके होते हैं स्वार्थानुमान और परार्थानुमान तो परार्थानुमान साधक त्रिरूप लिंगके प्रकाशक वचन भी श्रुत कहलाते हैं। तब अनुमानमें जो साधन बताया करते हैं उसमें तीनरूप रहा करते हैं। १पक्षवृत्ति, २समक्षवृत्ति और ३विपक्षव्यावृत्त। तो ऐसे तीनरूप जिसमें रह सकते हैं ऐसे साधनके प्रकाश करने वाले वचनका नाम है श्रुत और स्वार्थानुमानरूप त्रिरूप लिङ्गके ज्ञानको चिन्ता कहते हैं। जैसे किसीने कहा कि इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे तो यह बात कोई किसीको समझानेके लिए कहता है तो जब वचनोंसे कहा तो वह परार्थानुमान है, और एक पुरुष पर्वतमें धूम देखकर अग्निका ज्ञान करता है बोलता कुछ नहीं है उसे भी भीतर एक साध्यका ज्ञान हुआ तो वह कहलाता है स्वार्थानुमान। तो अपने लिए जानकारी बनाना स्वार्थानुमान है और दूसरेके लिए अनुमानकी बात कहना परार्थानुमान है। परार्थानुमानरूप त्रिरूप लिङ्गके ज्ञानको श्रुत कहते हैं और स्वार्थानुमानरूप त्रिरूपलिङ्ग ज्ञानको चिन्ता कहते हैं। सो इन दोनों भावना ज्ञानोंका विषय दो प्रकारका है एक प्राप्य और दूसरा आलम्बनीय। प्राप्यका अर्थ है कि जिसे जाना वह चीज भी मिल जाय। और, आलम्बनका अर्थ है कि जिसे जाना वह आलम्बन मात्र है, विषयमात्र है, प्राप्त नहीं हो रही। तो देखो ! किसी ज्ञानमें तो प्राप्य विषय होना और किसी ज्ञानमें आलम्बनीय विषय होना और आलम्बनीय भी होना ये दोनों बातें होती हैं। जैसे जो कामसे पीड़ित पुरुष है उसको सामने स्त्री दिखी तो वह आलम्बनीय रहा। कहीं स्त्री प्राप्त तो नहीं हुई। यों कहीं भावनाज्ञानका विषय आलम्बन मात्र रहता है कहीं भावना-ज्ञानका विषय प्राप्य है। जैसे पानी पीना है तो पानीको जाना भी, उठाया भी पिया भी। यों किसी भावनाज्ञानमें दोनों प्रकारका विषय बनता रहता है। तो उनमें जो आलम्बनीय साध्य समाया है, जो कुछ विषयभूत हुआ है वह अवस्तु है तो आलम्ब-नीय विषयकी अपेक्षासे तो उसे कह लीजिए कि वह अवस्तु विषयक ज्ञान है। फिर भी प्राप्यलक्षणकी अपेक्षासे उसे व्यवस्थित किया जाय कि वह वस्तु विषयक है अर्थात् वहाँ वस्तु पायी गई है। देखिये ! स्वयं क्षणिकवादियोंने अपने सिद्धान्तमें कहा है कि प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोंमें ही जो प्रमाणता है वह वस्तु विषयक है। जैसे प्रत्यक्षकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाणता वस्तुविषयक है, उसी प्रकार अनुमानमें भी प्रमाणता वस्तुविषयक है। अर्थात् वहाँ भी विषय प्राप्त है। और, भी स्पष्ट समझ लीजिए कि जिस तरह प्रत्यक्ष से पदार्थको जानकर उसकी प्राप्तिके लिए प्रवृत्त हुए पुरुषको अर्थक्रियामें कोई विसम्वाद नहीं होता इसीलिए ना, वह प्रत्यक्षज्ञान अर्थ क्रियाकारी है और स्वलक्षणरूप वस्तुका विषय करने वाला है, तभी वह प्राप्त कहलाता है याने प्रत्यक्षमें पदार्थको जानकर प्रवृत्ति करने वाले पुरुष अर्थक्रियामें कोई विवाद नहीं उठाते जिसे प्यास लगी है उसे सामने तालाब दीखा तो देखकर एकदम तालाबकी ओर बढ़ जाता है और पानी भरता है, पी लेता है। तो प्रत्यक्षसे जानी हुई बातमें अर्थक्रिया करनेमें कोई संकोच नहीं करता इसी तरह परार्थानुमान और स्वार्थानुमानमें भी पदार्थको जानकर उनमें जो प्रवृत्ति करने वाले पुरुष हैं उनको भी अर्थक्रियामें कोई विवाद नहीं होता, इसी कारण वह अनुमान ज्ञान भी अर्थक्रियाकारी माना गया है और अपनी योग्यतामें चार आर्य सत्योंको विषय करने वाला भी माना गया है।

प्रत्यक्षकी तरह अनुमानमें भी प्राप्तार्थविषयत्व होनेसे प्रमाणत्वका क्षणिकवादियों द्वारा समर्थन—अब यहाँ देख लीजिए कि प्रत्यक्ष और अनुमान दोनोंमें ही प्राप्य वस्तुकी अपेक्षा प्रमाणता सिद्ध है। जैसे प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थका सद्भाव है और प्राप्य होता है उसी प्रकार अनुमानके विषयभूत अर्थका भी सद्भाव है, वह प्राप्य है, इसकी पुष्टिमें सिद्धान्तमें भी कहा गया है—

अर्थस्यासम्भवेऽभावात्प्रत्यक्षेऽपि प्रमाणता।
प्रतिबद्धस्वभावस्य तद्धेतुत्वे समं द्वयम्॥

इस श्लोकका अर्थ है कि पदार्थके अभावमें प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता इस कारण प्रत्यक्षज्ञानमें प्रमाणता है कि जो ज्ञानमें जाने सो ही पदार्थ प्राप्य हो गया। इसी तरह साध्यके अभावमें इसका त्रिरूप लिङ्ग नहीं होता। तो यों यह साधन प्रतिबद्ध स्वभाव वाला है याने नियंत्रित है, साध्यके साथ अविनाभावी है, ऐसा वह साधन अनुमानमें कारण है सो उसके होनेपर ही अनुमान उत्पन्न होता है और ऐसे साधनके न होनेपर अनुमान उत्पन्न नहीं होता। तो देखिये कि अनुमानज्ञानमें भी प्रमाणता आई! क्योंकि जैसे पदार्थके अभावमें प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता ऐसे ही प्रतिबद्ध स्वभाव वाले साधनके अभावमें प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता। यों प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों ही एक समान हैं। प्रमाण है तो इस प्रमाणवाक्यसे भी यह सिद्ध होता है कि श्रुतमयी और चिन्तामयी भावनासे उत्पन्न होने वाला ज्ञान भी पदार्थको विषय करता है। यों उत्कृष्टताको प्राप्त श्रुतमयी और चिंतामयी भावनाज्ञानसे चार आर्य सत्योंका ज्ञान हो जाता है और वह स्पष्ट निर्दोष होता है। ऐसा माननेमें किसी भी प्रकारका विरोध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है, इस कारण सुगतको सर्वज्ञ मानना ही चाहिए। जैसे कि सुगत परम वीतराग है, वहाँ तृष्णाका सर्वथा अभाव है ऐसे ही यहाँ सर्वज्ञता भी पूर्ण है।

सुगत शब्दके अर्थसे भी सुगतज्ञानकी सर्वज्ञता व वीतरागताकी पुष्टिका प्रयास—सुगतका अर्थ भी देखिये ! क्या है ? कुछ निरुक्तिसे भी सुगतकी विशेषता समझमें आयगी। सुगतका अर्थ है जो सु कहो भली प्रकारसे पूर्णताको गत मायने प्राप्त हो उसे सुगत कहते हैं। जैसे कहते हैं सु पूर्ण कलश तो सुपूर्णका क्या अर्थ है ? सम्पूर्ण रूपसे भरा हुआ कलश। ऐसे ही सुगतका अर्थ है—सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त हुआ पुरुष। तो सु शब्द यहाँ सम्पूर्ण शब्दका वाचक है। तो सुगतका अर्थ स्पष्ट हो गया कि जो सम्पूर्ण चार आर्य सत्वोंका साक्षात् ज्ञान कर लेता है उसे सुगत कहते हैं। सुगतका दूसरा भी अर्थ सुनो ! सु का अर्थ है शोभाको, गतका अर्थ है प्राप्त—जो शोभाको प्राप्त हो उसे सुगत कहते हैं। जैसे स्वरूप। तो वहाँ स्वरूपका अर्थ क्या है ? सु मायने तो शोभारूप जिसका है उसे स्वरूप कहते हैं। तो जिसका शोभन रूप हो उसका नाम सुगत है। तो सुगत भगवानका शोभनरूप है ही। यथार्थतया जहाँ अविद्या और तृष्णा न रही, ऐसे ज्ञान संतानको शोभन कहा जाता है, तो सुगत अशोभनीय अविद्या और तृष्णासे रहित है। इस कारण वह शोभनको अर्थात् शुद्ध ज्ञान संतानसे प्राप्त है इसलिए वह सुगत है। इस सुगत शब्दकी निरुक्तिमें यह कहा है कि सुगत निराश्रव चित्तसंतान है। जितने जीव हैं वे सब एक क्षणके विचारमात्र हैं। दूसरे क्षणमें जो विचार होता है वह दूसरा जीव है ऐसा क्षणिकसिद्धान्तमें माना गया है। तो ऐसा विचार लगातार होता रहता है जिसमें इसे संतान कहते हैं। तो जैसे चित्त संतानमें अविद्या न रही, जो चित्त संतान निराश्रव हो गया, ऐसे चित्त संतानको जो प्राप्त हैं उसका नाम सुगत है। अब सुगतका तीसरा अर्थ सुनो ! सु मायने अच्छी तरह गत मायने चला गया—जो अच्छी तरह चला गया याने फिर लौटकर न आये उसे सुगत कहते हैं। जैसे कहते हैं सुनष्ट ज्वर, यह ज्वर सुनष्ट हो गया भली प्रकार नष्ट हो गया, अब आगे लौटकर न आयगा। तो इसी तरह जो सुगतपनेको प्राप्त है अर्थात् जो पुनः लौटकर नहीं आता, अविद्या और तृष्णासे व्याप्त चित्त जिसका न हो, सदा जो चित्तसंतान निराश्रव बना है उसे कहते हैं सुगत !

निरालम्बना कृपाके परिणाममें विवक्षाके अभावमें भी सुगतके उपदेशकत्वकी पुष्टिका प्रयास—प्रमाणवार्तिकमें लिखा भी है कि तिष्ठन्त्येव पराधीना एषां तु महती कृपा। सुगतोंकी महान कृपायें दूसरोंके लिए हैं अथवा कहो पराधीन हैं। ऐसे सुगतोंकी महान कृपायें सदा ठहरती हैं। अब यहाँ देखिये ! कि कृपायें तीन तरहकी होती हैं ? सत्त्वावलम्ना, धर्मावलम्बना और निरालम्बना। याने जो किन्हीं पुरुषोंका आलम्बन लेकर होने वाली कृपा है उसे सत्त्वावलम्बन कहते हैं। जो पुत्र

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्त्री वगैरहमें कृपा की जाती है वह सत्त्वावलम्बना कृपा है। दूसरी कृपा है धर्मावलम्बना याने धर्मकी अपेक्षासे होने वाली जो कृपा है उसे धर्मावलम्बना कहते हैं। जैसे साधु सन्यासियोंमें जो कृपा की जाती है वह धर्मावलम्बना कृपा है। तीसरी है निरालम्बना कृपा। याने सत्त्व और धर्मादिक किसीकी भी अपेक्षासे जो नहीं होती अर्थात् अत्यन्त रागनिरपेक्ष है। ऐसी कृपाका नाम निरालम्बना कृपा है। जैसे कोई मेंढक पत्थरके टुकड़ोंसे दबा है तो उस मेंढकका उद्धार करनेमें जो कृपा बनती है वह निरालम्बना कृपा है। इन तीन तरहकी कृपाओंमें ऐसा अन्तर जानना चाहिए कि जहाँ मोह राग मिलकर कृपा बनती है, अपने इष्ट बन्धु जनोंपर कृपा आती है वह तो सत्त्वावलम्बना है और साधु सन्यासी आदिकको निरखकर उनके दुःख निवृत्त करने की जो कृपा होती है वह है धर्मालम्बना, लेकिन जिससे राग आदिक कुछ नहीं हैं सामान्यरूपसे जिस किसी भी जीवकी दया होना यह निरालम्बना कृपा है। तो सुगतों की कृपा निरालम्बना होती है। निरालम्बना कृपा सबसे महान कृपा कहलाती है। इसमें सत्त्व और धर्म दोनोंकी अपेक्षा नहीं रहती। तो निरालम्बना कृपा स्थिर कृपा होती है और किसी मोह रागवश होने वाली कृपा अस्थिर है या किन्हीं इष्ट धर्मात्माओंपर की जाने वाली कृपा अस्थिर है, किन्तु एक साधारणतया जिस किसी जीव पर कृपा की जाय तो ऐसी कृपा स्थिर हुआ करती है। तो सुगतकी कृपाका कभी नाश नहीं होता सदा जीवोद्धारमयी कृपा बनी रहती है, क्योंकि सुगत जितने भी हुआ करते हैं वे सभी धर्मोपदेश द्वारा संसारका उपकार करनेमें सदा तत्पर रहते हैं और जगत अथवा लोक या जीव सब अनन्त हैं, तब यहाँ इन समस्त अनन्त जीवोंका हित करनेके लिए बुद्ध बनूं, इस तरहकी भावनासे सुगतोंको एक धर्मविशेषकी प्राप्ति हुई, जिससे कि तीर्थकी प्रवृत्ति बनेगी। तो जिन सुगतोंको जगतके उपकारकी भावनासे धर्मविशेष प्राप्त हुआ है उन सुगतोंका विवक्षाके अभावमें भी धर्मोपदेश होता है याने इच्छा नहीं है उनके फिर भी धर्मोपदेश चलता है। यही कारण है कि बुद्धकी वाणी की प्रवृत्ति धर्मोपदेशसे हुई। बुद्ध जो है निर्विकल्प, समस्त कल्पना जालोंसे रहित और उनके मोक्षमार्गका उपदेश करने वाली वाणी कैसे बनी ? तो उत्तर है कि उन्होंने यह भावना भायी थी कि मैं विश्वका हित करनेके लिए बुद्ध होऊं ! इसमें जो धर्मविशेषका लाभ हुआ उस धर्मविशेषसे उपदेश करनेमें प्रवृत्ति बनती है। इस तरह सुगत ही मोक्षमार्गका प्रतिपादक है, यह भली प्रकार व्यवस्थित होता है, वह मोक्ष का प्रतिपादक है, क्योंकि विश्वतत्त्वज्ञ है। यहाँ साधन है सर्वज्ञता और साध्य है मोक्ष मार्गका प्रतिपादक होना। यह सर्वज्ञ है, क्योंकि सम्पूर्णतया तृष्णारहित हो गया है। इस प्रकार क्षणिकवादियोंमें जो एक सौत्रांतिक मत वाले बुद्ध हैं उनका यह कथन है। सौत्रांतिकका मत यह है कि वे बाह्य पदार्थ परमाणु आदिकको मानते हैं और उनका ज्ञान करनेसे सुगतको सर्वज्ञ कहा है और सर्वज्ञ होनेसे वह मोक्षमार्गका प्रणेता है। इसीलिए सौत्रांतिक अपना यहाँ पक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शङ्काकार द्वारा प्रस्तुत वस्तुस्वरूपकी सिद्धिके अभावमें तद्विषयक ज्ञानमें सर्वज्ञताकी असिद्धि बताते हुए उक्त शङ्काओंका समाधान– सौत्रांतिकों के उक्त कथनका समाधान करते हैं कि जब उनके द्वारा मानी हुई तत्त्वव्यवस्था ही सम्भव नहीं बनती फिर उस तत्त्वका जाननहार सुगत है और वह विश्वतत्त्वज्ञ है, यथार्थ ज्ञाता है यह बात सिद्ध कैसे हो सकती है ? और, जब वह विश्वतत्त्वज्ञ सिद्ध नहीं होता तो मोक्षमार्गका प्रतिपादक भी उसे कैसे कहा जा सकता है ? यह बात तो सब प्रमाण विरुद्ध हैं। जब मूल तत्त्व ही नहीं सिद्ध हो रहा तब फिर उसके ऊपर शाखा प्रशाखायें बनाना कैसे सङ्गत है ? उन तत्त्वोंका ज्ञाता और मोक्षमार्गका प्रतिपादक सुगत है यह कोई व्यवस्था ही नहीं बनती। देखिये ! सौत्रांतिकोंका अभिमत है कि तत्त्व है बाह्य अर्थ परमाणु। परमाणु जो कि प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है। तो ऐसा प्रतिक्षण विनाशीक बाह्य अर्थ परमाणु न तो प्रत्यक्षसे किसीको अनुभवमें आया है और न अन्य किसी प्रकार ज्ञानमें अनुभव आता है, केवल स्थिर स्थूल और, साधारण आकार वाले ये घट पट आदिक पदार्थ ही प्रत्यक्ष ज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं। इन शङ्काकारोंका अभिमत है कि जो दिख रहा है उस ही मय घड़ा चौकी आदिक ये सब झूठे हैं। केवल परमाणु परमाणु ही वास्तविक चीज है। जो कि प्रतिक्षण नष्ट होता है। सो कहा तो यों जाता है और अनुभवमें आता है और ही भांति स्थिर स्थूल साधारण आकार वाले पदार्थ तो प्रत्यक्षसे प्रतीत होते हैं, किन्तु प्रतिक्षण विनाशीक परमाणु ये कुछ भी प्रतीत नहीं होते। अब यहाँ सौत्रांतिक कहते हैं कि देखिये ! प्रत्यक्षज्ञानमें भी जो कुछ प्रतिभास हो रहा है सो वे सब अत्यन्त निकटवर्ती और परस्परके संसर्गसे रहित परमाणु ही प्रत्यक्ष ज्ञानमें विदित हो रहे हैं। वस्तुतः तो यह ही है और ऐसा प्रत्यक्षज्ञानमें जाननेके बाद जो कल्पना उत्पन्न होती है उस कल्पनामें स्थिर स्थूल सामान्याकार दिखाई देता है, यह कल्पना वास्तविक नहीं है, याने जिस प्रकारसे पदार्थ है उस प्रकार बताने वाली कल्पना नहीं है। पदार्थ तो है भिन्न–भिन्न परमाणुमात्र और प्रतिक्षण विनाशीक और कल्पनामें दिखाई दे रहा है स्थिर, स्थूल और ऐसे मोटे आकार वाला, तो यह कल्पना वास्तविक नहीं है। और, इस कल्पनामें जो आकार विदित हो रहा है वह भी वास्तविक नहीं है वस्तुमें विद्यमान नहीं है, किन्तु उस कल्पनामें सामान्याकार आरोपित होता है, यह केवल कल्पनासे ही समझा जा रहा है, वास्तविक चीज नहीं है और इसी कारण नाम, रूप, वेदना, संस्कार, विज्ञान, ये सभीके सभी काल्पनिक कहे जाते हैं। तो इस तरह यही सिद्ध हो गया कि बाह्य अर्थ यह परमाणु ही वास्तविक तत्त्व है और प्रतिक्षण विनाशीक है और वह परमाणु अत्यन्त निकटवर्ती है। सम्बन्ध तो उनमें परस्पर नहीं है पर अत्यन्त निकट रहनेके कारण प्रतिभास हो रहा है ऐसा कि ये सब पदार्थ इतने लम्बे चौड़े हैं। उक्त शङ्काकारके आशयके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारको यही तो बताना चाहिये कि निरन्तर क्षणिक परमाणु जिनको अत्यन्त निकटवर्ती बताया जा रहा है तो उनकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निकटवर्तिता है क्या ? याने अनेक परमाणु निकटवर्ती हो रहे हैं सो उस निकटवर्ती का अर्थ क्या है ?

असम्बद्ध परमाणुओंमें अत्यन्त निकटताकी अनुपपत्ति—शङ्काकार कहता है कि निकटवर्तीका अर्थ यह है कि उन परमाणुओंके बीचमें व्यवधान न होना, एक परमाणुके पास दूसरा परमाणु है, उन दोनोंके बीच अन्तर न रहे उसका नाम है निकटवर्ती होना। इसके उत्तरमें कहते हैं कि अभी जो यह बताया गया कि दो परमाणुओंके बीचमें व्यवधान नहीं रहता तो व्यवधान नहीं रहता इसका अर्थ यह है कि न तो कोई दूसरा सजातीय पदार्थ रहता और न विजातीय। उन दोनों परमाणुओंमें व्यवधान होना तब कहलायगा जब कि कोई तीसरी चीज आ जाय तो उसका व्यवधान कहलायगा। सो व्यवधान नहीं, सो इसका अर्थ है कि उन परमाणुओंके बीच न कोई सजातीय व्यवधायक है और न कोई विजातीय व्यवधायक है। व्यवधायकका अर्थ है व्यवधान करने वाला याने खुद मौजूद होकर उन दो परमाणुओंको अन्तरमें रखा देने वाला, यदि ऐसा व्यवधान न हो तो अर्थ यह रहा कि व्यवधान करने वाले का अभाव है और उसीका ही नाम संसर्ग है, ऐसा मालूम पड़ता है। तो यहाँ यह बताओ कि वह संसर्ग परमाणुओंमें सम्पूर्णपनेसे सम्भव है या एकदेशरूपसे सम्भव है? दो परमाणुओंका जो यह संसर्ग हुआ है याने बीचमें कुछ भी व्यवधानमें न रहे, मिल गए, तो यह मिलना सर्वरूपसे है या एक देशरूपसे है ? यदि कहा जाय कि यह संसर्ग सर्व देशरूपसे है तब तो एक परमाणु ही रहेगा उसका मोटा रूप नहीं बन सकता, स्कंध नहीं बन सकता, क्योंकि एक परमाणुमें दूसरे परमाणुका संसर्ग सर्वरूपसे होगया याने जितनेमें वह परमाणु है उतनेमें ही पूरे रूपसे सम्बन्ध हुआ है तो अर्थ यह हुआ कि दूसरा परमाणु भी उस परमाणुके पेटमें समा गया। तो सर्वरूपसे संसर्ग माननेपर एक परमाणु ही प्रचय कहलायगा। अनेक परमाणु भी मिल जायें तो भी वे सब सर्व रूपसे मिले तो एक ही परमाणु मात्र रहा। तो यों परमाणुओंका परस्पर संसर्ग सर्व रूपसे तो माना न जायगा और एक देशसे भी अगर उन परमाणुओं संसर्ग मानते हो तो इसका अर्थ यह होगा कि परमाणुओंके आनेकी दिशायें ६ हैं। एक परमाणु कहीं पड़ा है तो उसके पास कोई परमाणु पूर्वसे आया, कोई पश्चिमसे आया, कोई उत्तरसे आया, कोई दक्षिणसे आया तथा कोई नीचे से आया कोई ऊपरसे आया। तो एक परमाणुसे सम्बन्ध बनाने वाले ६ दिशाओंसे आये हुए ६ परमाणु हुए। तो यों छहों दिशाओंसे ६ परमाणुओं द्वारा एक परमाणुके साथ सम्बन्ध बना, ऐसी बात सिद्ध होनेपर परमाणुमें ६ अंश साबित हुए, क्योंकि ६ ओरसे ६ परमाणुओंका सम्बन्ध बना। तो यों परमाणु अंशसहित हो गया। तो वह अब निरंश न बनेगा। तो स्वयं सिद्धान्तका विरोध आ गया। परमाणुओंको शङ्काकारने प्रतिक्षण विनीशीक और निरंश माना है, लेकिन अब यहाँ अंश सिद्ध हो गया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमाणुके विषयमें अत्यन्त निकटवर्तिता व असम्बद्धताकी मान्यतामें परस्पर विरोध—इस प्रसङ्गमें सौत्रांतिक कहते हैं कि इसी कारण तो हम परमाणुओंको असम्बद्ध प्रत्यक्षसे जाना जाता है, ऐसा मानते हैं याने प्रत्यक्षसे परमाणु सम्बन्धरहित ही उपलब्ध होता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि जब प्रत्यक्षसे परमाणु सम्बन्धरहित उपलब्ध होता है फिर उन्हें अत्यन्त निकटवर्ती कैसे कहा जा रहा है? क्योंकि इन दोनों बातोंका परस्परमें विरोध है। जो सम्बन्धरहित है वह निकटवर्ती कैसे हो सकता है? जैसे हिमालय और विन्ध्याचल ये असम्बद्ध हैं तो ये निकटवर्ती भी कैसे? जो असम्बद्ध है वह तो निकटवर्ती नहीं कहा जा सकता। जैसे एक अंगुलीमें ही अनन्त परमाणु हैं तो उन्हें असम्बद्ध कैसे कहा जायगा? सौत्रांत्रिक कहते हैं कि यहाँ बात यों समझना चाहिए कि उन परमाणुओंमें दूरदेशका व्यवधान नहीं है अर्थात् वे दूरदेशमें नहीं रहे हैं, इस कारण उन्हें अत्यन्त निकटवर्ती कहा जाता है। इस आशंकाका समाधान करते हुए बताया जा रहा है कि जब निकटवर्तीका अर्थ यह लगाया कि दूरदेशका व्यवधान नहीं होता तो इसका दूसरा अर्थ यह ही तो रहा कि समीप देशका व्यवधान है तो समीप देशका व्यवधान माननेकी हालतमें यह तो बतलाना ही पड़ेगा कि समीप देशरूप व्यवधान करने वाला वस्तु व्यवधान जिनका हो रहा है उन परमाणुओंसे मिला हुआ है या व्यवहित है? अन्तर सहित है? याने वह परमाणुओंसे सम्बद्ध है या व्यवहित है? सम्बन्ध तो कहा नहीं जा सकता क्योंकि सम्बन्ध माननेपर फिर ये दोनों विकल्प उपस्थित होते हैं कि वह सम्बन्ध सर्वदेशसे है या एक देशसे है? सर्वदेशसे माननेपर एकरूप हो जायगा। एकदेशसे माननेपर सांश परमाणु बन जायगा। तो सम्बद्ध तो बता नहीं सकते और उस समीप देशको व्यवहित भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसे व्यवहित कहनेपर फिर अन्य व्यवधानकी कल्पना करनी पड़ेगी। यदि अन्य व्यवधानमें भी सम्बद्ध और असम्बद्धके विकल्प उठेंगे तो ऐसी स्थितिमें यह तत्त्व सिद्ध नहीं हो सकता कि अत्यन्त निकटवर्ती असम्बद्धरूप बाह्य परमाणु तत्त्व हैं याने जो मूल तत्त्व माना है कि है क्या पदार्थ जगतमें? तो उसका उत्तर दिया करते हैं शङ्काकार कि बस परमाणु—परमाणु ही बाह्य पदार्थ है, तत्त्व है और वह परस्पर असम्बद्ध है, लेकिन अत्यन्त निकटवर्ती बन जाता है। तो जब परमाणु ही सिद्ध नहीं होता तो प्रत्यक्षका क्या विषय बनाया जाय?

क्षणिकवादमें बाह्यार्थ परमाणु प्रत्यक्ष और अनुमानका विषय न हो सकनेसे ज्ञानकी अभूतार्थ विषयताकी सिद्धि शङ्काकार द्वारा यह पक्ष बनाया गया था कि सुगतके प्रत्यक्षके विषयभूत सब पदार्थ हैं तो वे पदार्थ ही सम्भव नहीं हैं तो प्रत्यक्षका विषय क्या बनाया जाय? और, जब वे प्रत्यक्षके विषय नहीं हैं तो परमाणुरूप कार्यलिङ्ग हेतु अथवा स्वभावलिङ्ग हेतु नहीं बन सकता है। जैसे कि परमाणु साध्य न बन सके तो परमाणु हेतु भी न बन सकेगा, कार्य भी न बन सकेगा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वभाव भी न बन सकेगा। तो यों न साध्य रहा न साधन। तो जो कार्यरूप परमाणु हैं उन्हें तो साधन बताया जाता है और जो कारणरूप परमाणु हैं उन्हें साध्य बताया जाता है। तो जब साध्य साधन दोनों असिद्ध हो गये तो कार्य कारणमें कार्य कारण भाव सिद्ध नहीं किया जा सकता और व्याप्य व्यापकमें व्याप्य व्यापक भाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि अन्वय और व्यतिरेक जब इनमें घटित नहीं है तो कार्य कारण भाव और व्याप्य व्यापक भाव कैसे बताया जा सकता है? तो अब देखिये! कि जब कार्य कारण भाव न बना, व्याप्य व्यापक भाव न बना तो स्वार्थानुमान भी नहीं बन सकता, याने कार्यको देखकर कारणका ज्ञान करना ऐसा अनुमान नहीं बन सकता। तो स्वार्थानुमान न बना, क्योंकि स्वार्थानुमान तब ही बनता था कि साधन तो देखा जाय और साध्य साधनके सम्बन्धका स्मरण बने तो जब सम्बन्ध ही कुछ न रहा तो अनुमान न बन सका और जब स्वार्थानुमान न बना तो परार्थानुमान भी नहीं बन सकता। याने न चिन्ता सिद्ध होती न श्रुत, तो श्रुतमयी और चिन्तामयी भावना जब बनी नहीं तब किसका उत्कर्ष प्रकर्ष बताया जाय जिससे योगि प्रत्यक्ष सिद्ध किया जाय? सारांश यह है कि जो शङ्काकारका यह मूल कथन था कि योगि प्रत्यक्ष पदार्थों से उत्पन्न नहीं होता, किन्तु श्रुतमयी और चिन्तामयी भावनाकी उत्कृष्टतासे उत्पन्न होती है तो लो बाह्य पदार्थ भी सिद्ध नहीं हुए और श्रुतमयी भावना और चिन्तामयी भावना भी सिद्ध न हुई तब योगि प्रत्यक्ष कैसे बना? तो इससे यह सिद्ध हुआ कि सुगतके वास्तविकमें सर्वज्ञता नहीं है। जब सर्वज्ञता नहीं है तब फिर शब्दकी निरुक्ति बना बनाकर शृङ्गार बनाना तो असंगत ही है सुगतके जो तीन अर्थ किए थे—पहिला अर्थ सम्पूर्णताको प्राप्त हुआ, दूसरा अर्थ है सु अर्थात् शोभाको प्राप्त हुआ, शोभन हुई वीतरागता, उसका प्राप्त होना सुगत है। तीसरा अर्थ क्या किया कि सु का अर्थ भली प्रकार गत मायने चला गया, याने जिसका जन्म मरण न हो उसे सुगत कहते हैं। संस्कार जिनका नष्ट हो गया इस प्रकार निरुक्ति करके अर्थका श्रृङ्गार करना ये सब असङ्गत बातें हैं। तथा इन निरुक्तियोंको बताकर समस्त अविद्या और तृष्णाके नाशसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान बताना वीतरागता सिद्ध करके उसे विश्वका हितैषी बताना प्रमाणभूत बताना, सर्वथा स्थित बताना, कल्पना ज्ञानसे रहित कहना धर्म-विशेषके कारण शिष्यजनोंके लिए उनकी वाणी बताना ये सभी कल्पनाकी बातें हो गईं। तो देखिये! जब माना गया बाह्य अर्थ परमाणु ही सिद्ध नहीं हो रहा तब फिर उनका ज्ञाता कैसे सिद्ध हो? तो सौत्रांतिकके मतमें विचारे गए वास्तविक अर्थकी व्यवस्था ही नहीं बनती, इसलिए यह ठीक ही कहा गया है कि सुगत भी मोक्षमार्ग का प्रतिपादक नहीं है, क्योंकि उसके परमार्थतः सर्वज्ञताका अभाव है। जैसे कि कपिल आदिक।

ज्ञानमात्र अर्थकी व्यवस्थाके अभावमें सर्वज्ञताकी असिद्धि—अब यहाँ

http://sahjanandvarnishastra.org/

योगाचारके अभिप्राय वाले कहते हैं कि ठीक है, न रहा बाह्य अर्थ परमाणु वास्तविक तत्त्व, किन्तु वास्तविक तत्त्व तो हम ज्ञान परमाणुको मानते हैं और वह प्रतिक्षण नाशशील है, अर्थात् बाह्य परमाणु तत्त्व नहीं किन्तु ज्ञान परमाणु तत्त्व है। सौत्रान्तिकोंके सिद्धान्तसे तो बाहरी परमाणु अचेतन जो कि सामने नजर आता है स्कंधरूप में उनमें रहने वाला एक एक परमाणु जो निरन्तर असम्बद्ध है वह तत्त्व माना गया और योगाचारके सिद्धान्तसे जो कुछ ज्ञान बना, इकहरा ज्ञान, निरंशज्ञान, वह ज्ञान परमाणु ही तत्त्व है। तो योगाचार सिद्ध कर रहे हैं कि ज्ञान परमाणु ही वास्तविक पदार्थ है। बाह्य परमाणु नहीं क्योंकि बाह्य परमाणुओंको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। जैसे अवयवी पिण्डोंको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है इसी तरह बाह्य परमाणुको भी सिद्ध करने वाला कोई परमाणु नहीं है। तो यों ज्ञान परमाणु ही तत्त्व है और ज्ञान परमाणुका ही ज्ञाता सुगत हैं और ऐसा वह सुगत मोक्षमार्गका प्रतिपादक सिद्ध होता है। उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि योगाचारों द्वारा माना गया ज्ञान परमाणु भी स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं है क्योंकि जो भी ज्ञान बनता है उस ज्ञानमें ज्ञान परमाणुका प्रतिभास नहीं होता, किन्तु प्रतिभासमें आता क्या है? सुख दुःखादिक अनेक पर्यायोंमें रहने वाला अन्य आत्मा ही प्रतिभास में आता है। सभी लोगोंको अपने आपका यों प्रतिभास हो रहा है जैसा कि वे सुख दुःखादिक पा रहे हैं। तो सुख दुःखादिक पर्यायोंमें रहने वाला आत्मा ही सबके प्रतिभासमें आता है, ज्ञान परमाणु किसीको भी प्रतिभासमें नहीं आ रहा है। इससे ज्ञान परमाणु वास्तविक तत्त्व नहीं सिद्ध होता। यहाँ शङ्काकार कहता है कि लोगोंको जो सुख दुःखादिकरूपसे अपना प्रतिभास हो रहा है वह अनादिकालकी अविद्याकी वासना के कारण हो रहा है। चूंकि ऐसी ही भ्रान्त धारणा रखता आ रहा है जीव कि अविद्याकी वासनासे ऐसा मालूम होता है कि मैं सुखी हूं, दुःखी हूं, यही मैं हूं। जो सुख दुःख पा रहा हूं। तो ऐसा वह ज्ञान भ्रान्त ज्ञान है। वह सच्चा ज्ञान नहीं है। सच्चा तो ज्ञान परमाणु ही है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह कहना कि सुख दुःखादिकरूपसे जो आत्माका प्रतिभास हो रहा है वह भ्रान्तज्ञान है, ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि सुख दुःखादिकके अनुभवमें कोई बाधक प्रमाण नहीं है। भ्रान्त पुरुष तो वह कहलायगा जिसकी प्रमाणसे बाधा आये, किन्तु सभी जीवोंको सुख दुःखादिक पर्यायोंमें रहने वाले निज आत्माका सम्वेदन हो रहा है। उसमें किसी प्रकारकी बाधा ही नहीं है। तो जो अबाधित है उसे भ्रान्त कहा जाय और जिसका प्रतिभास ही नहीं हो रहा उसको तत्त्व बताया जाय तो यह विवेकशून्य बात है।

सुखदुःखादिकी असिद्धि करनेकी अशक्यता— अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये! सुखदुःखोंसे व्याप्त आत्माका सम्वेदन सिद्ध करनेमें बाधक प्रमाण है। भला बतलाये कोई कि जो यह कहा जा रहा है कि एक आत्मा क्रमवर्ती अनेक सुख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दु:खादिक पर्यायोंमें रह रहा है अथवा वह अपने सहभावी गुणोंमें रह रहा है क्रमवर्ती अनेक सुखदु:खादिक पर्यायोंको और सहभावी गुणोंका एक वह आत्मा क्या एक स्वभावसे व्याप्त करता है अथवा अनेक स्वभावसे व्याप्त करता है ? याने एक आत्माने सुखदु:खादिक अनेक पर्यायोंको धारण किया उन सुखदु:खादिकमें एक आत्मा व्याप गया तो वह इन अनेक पर्यायोंमें एक स्वभावसे व्यापा या अनेक स्वभावसे व्यापा ? यदि यह स्वीकार किया जाय कि एक स्वभावसे वह भूला तो ऐसा कहनेपर सुखदु:ख आदिक अनेक पर्यायोंमें एकपनेका प्रसङ्ग आयगा, वह सब एक बन जायगा, क्योंकि एक स्वभावसे व्याप्त हुआ ना ! यदि कहो कि एक आत्मा सुखदु:खादिक विभिन्न पर्यायोंमें अनेक स्वभावसे व्यापा है तो यह भी नहीं कह सकते क्योंकि जब अनेक स्वभावसे व्यापा है तो वह अनेक कहलायगा, एक नहीं कहला सकता। तो यह बाधक प्रमाण मौजूद है इस कारण उसे आप अबाधित नहीं कह सकते। योगाचारकी इस कारिकाका उत्तर देते हैं कि उक्त प्रकारसे विकल्प उठाकर सुखदु:खादिकके अनुभव और प्रतिभासमें बाधा आनेकी बात कहना असङ्गत है क्योंकि योगाचारोंने भी तो यह माना है कि एक ज्ञान वेद्याकार और वेदनाकार रूप है याने ज्ञानमें जो प्रतिभास आया वह तो कहलाया ज्ञेयाकार याने वेद्याकार और जो ज्ञान ज्ञानरूपसे बना हुआ है वह कहलाया वेदनाकार। तो एक ज्ञान वेदकाकार और वेद्याकार दोनों ही आकारको एक ज्ञान स्वभावसे व्याप्त करता है फिर भी एकता नहीं माना, वे अनेक ही रहते हैं, तो जैसे वेद्याकार और वेदकाकार एक ज्ञानमें रहते हैं, एक ज्ञानस्वभावसे रहते हैं, तो यहाँ यदि योगाचार यह कहता है कि वेद्याकार और वेदनाकारोंकी एकरूपता ही है क्योंकि दोनोंमें ज्ञानरूप पाया जाता है तो यही उत्तर तो यहाँ है कि सुख ज्ञानादिक में आत्मा एक ज्ञानस्वभावरूपसे ही व्याप रहा है इसलिए वे अनेक होकर भी एक आत्माके रूप हैं इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं आता। यहाँ योगाचारी पूछते हैं कि यदि ज्ञान सुखदु:ख आदिकको एक आत्मा एक स्वभावसे व्याप रहा है तो फिर सुखदु:खादिक भिन्न आकारोंका प्रतिभास कैसे हो जाता है ? याने सुख और चीज है, आत्मा और चीज है, ये बातें फिर भिन्न-भिन्न ज्ञानमें आयेंगी। जबकि ज्ञानको एक आत्मस्वभाव ही मान लिया। इसका उत्तर यह ही है कि फिर वे योगाचार भी यह बतायें कि जब वेद्याकार और वेदनाकारका एक सम्वेदन एक ज्ञानरूपता ही है तो वहाँ भी भिन्न आकारका प्रतिभास कैसे हो गया ? याने वह वेद्याकार है, यह वेदकाकार है, इस प्रकारके भिन्न-भिन्न आकार भी कैसे सिद्ध किए जा सकते हैं ? यदि योगाचार कहें कि वेद्याकार और वेदकाकारकी वासना भिन्न है तो वासनाओंके भेदसे एक ज्ञानमें वेद्याकार और वेदकाकार भिन्न-भिन्न आकार जच जाते हैं। तो यही उत्तर यहाँ ले लो कि सुखदु:खादिक परिणमन भिन्न-भिन्न हैं, तो परिणमनोंके भेदसे एक ही आत्मामें सुखदु:खादिक भिन्न आकारोंका प्रतिभास हो जाता है।

वेद्याकार वेदकाकारकी अशक्यविवेचनताके कारण एक संवेदनरूपता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

माननेकी भाँति सुखदु:खज्ञानादिक पर्यायोंमें अशक्यविवेचनताके 'कारण एक आत्मरूपताकी सिद्धि—योगाचार कहते हैं कि सम्वेदन और उसमें रहने वाले वेद्याकारोंके विषयमें हमारा यह अभिमत है कि वेद्य और वेदक आकारके प्रतिभास भिन्न होनेपर भी सम्वेदन तो एक ही है। वहाँ उन आकारोंका उस ज्ञानसे विश्लेषण याने पृथक्करण नहीं किया जा सकता। चूंकि उन वेदकाकार व वेद्याकारोंकी अशक्य विवेचनता है इस कारण भले ही प्रतिभास भिन्न-भिन्न हो फिर भी एक सम्वेदन ही है। इसके उत्तरमें स्याद्वादी कहते हैं कि फिर तो जैसे वेद्याकारका प्रतिभास भिन्न होनेपर भी सम्वेदनकी दृष्टिसे एक है इसी तरह यह भी मान लीजिए कि सुख दु:ख आदिक अनेक आकारोंका प्रतिभास होनेपर भी आत्मा एक है, क्योंकि सुख ज्ञानादिक जो आकार बने आत्मामें उन आकारोंका आत्मासे विवेचन करना, अलग होना अशक्य है। इस तरह सुख दु:खादिक अनुभवरूप आत्मा है, ऐसा मान लीजिए, किन्तु ज्ञान परमाणु तत्त्व है यह न माना जा सकेगा। देखिये ! जिस प्रकार एक सम्वेदनमें वेद्य आदिक आकार कहीं दूसरे सम्वेदनको प्राप्त नहीं कराया जा सकता, वह सब वेद्याकार सम्वेदना है और इसी कारण आप उन्हें अशक्य विवेचन कहते हैं और इसी बलपर सम्वेदनकी एकता सिद्ध करते हैं। ठीक यही बात यहाँ घटित कर लीजिए कि आत्माके सुखादिकके आकार दूसरे आत्माको प्राप्त नहीं कराया जा सकता याने एक आत्मामें सुख दु:ख ज्ञान आदिक अनेक भाव होते हैं तो कहीं अनेक भाव होनेसे वे भाव अन्य-अन्य आत्मायें न बन जायेंगी। इसी कारण वह अशक्य विवेचन है। इस प्रकार इन अनेक पर्यायोंमें आत्मा एक ही कैसे सिद्ध न हो सकेगा ? जैसा जो कुछ प्रतिभासमें आता है उसका वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए। जैसे वेद्यादिक आकार स्वरूप एक सम्वेदन रूपसे प्रतिभासित होता है तो उस सम्वेदनमें एकपनेका व्यवहार किया जाता है तो सुख ज्ञान आदिक अनेक आकारोंमें एक आत्मा रूपसे ही तो प्रतिभासित हो रहा है आत्मा। इस कारण उन सब पर्यायोंमें एक आत्माका व्यवहार करना चाहिए। तो यों अंतस्तत्त्व तो सुख आदिक अनेकरूप प्रतिभासित होने वाला आत्मा है। ज्ञान परमाणु नहीं है। ज्ञानपरमाणुरूप अंतस्तत्त्व मानने वाले ये शङ्काकार यह बतायें कि वह सम्वेदन प्रचयरूप है या एक परमाणुरूप याने एक संवेदनमें जो अनेक वेद्याकार और वेदकाकार प्रतिभासित हुआ है, वह सम्वेदन क्या अनेक परमाणुओंका समुदायरूप है या एक परमाणुरूप है ? समुदायरूप तो कह नहीं सकते। जैसे कि बाह्य अर्थ परमाणुओंका समुदाय है मगर निरंशवादी मानते कहाँ हैं ? तो वहाँ तो समुदाय है फिर भी समुदाय सिद्ध नहीं किया जा सकता। लेकिन यहाँ तो ज्ञान परमाणुओंका समुदाय नहीं बनता। ज्ञानपरमाणुओंके प्रचयका जब विचार किया जाय तो वह सम्भव नहीं होता। अथवा जैसे अर्थपरमाणुओंका विचार किया गया था उनका संसर्ग क्या सर्वरूपसे होता या एकदेश रूपसे होता ? दोनों में। इस तरह विकल्प करके ज्ञानपरमाणुओंका प्रचय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी असिद्ध होगा। यदि कहो कि वह सम्वेदन एक परमाणु रूप है तो ऐसा किसीको प्रतिभासमें भी नहीं आता। जैसे बाह्य अर्थका एक परमाणु किसीके प्रतिभासमें नहीं आता इसी प्रकार ज्ञान परमाणु भी किसीके प्रतिभासमें नहीं आता, तो ज्ञान परमाणु रूप सुगत समस्त संतानोंके ज्ञान परमाणुरूप जो दुःख आदिक चार सत्व हैं उनको वास्तवमें नहीं जानता। योगाचारोंके यहाँ जानने वाले हुए ज्ञान परमाणु और जानने में जो आये हैं वे हैं समस्त संतानोंके ज्ञान परमाणु क्योंकि ज्ञान परमाणुसे अतिरिक्त और कुछ भी तत्त्व माना नहीं जा रहा सो जो चार आर्य सत्य बताये हैं, दुःख सुखके कारण दुःखका निरोध और दुःखनिरोधका उपाय। ये चार आर्य सत्य उनके ज्ञानरूप हैं, उनको भी तत्त्वतः ज्ञान परमाणुरूप सुगत नहीं जानते, क्योंकि अगर जानें तो वेद्यवेदकभावका द्वैत आ जायगा। जाननेवाला सुगत है और जाननेमें आये हुए अनेक ज्ञान परमाणु हैं, इस कारणसे वे परमार्थतः सर्वज्ञ नहीं हो सकते। जिनको कि मोक्ष मार्गका प्रतिपादक कहा जा रहा है, मोक्षमार्गके प्रतिपादकपनेको सिद्ध करने वाला जो साधन है सर्वज्ञत्व, वह जहाँ नहीं है, वहाँ मोक्षमार्गका प्रणेतापन भी नहीं है। अब यहाँ वेदकभावका द्वैत कल्पनासे मानते हैं। वास्तवमें वेद्यवेदकभावका द्वैत नहीं है, किन्तु वह संवृतिसे याने कल्पनासे है और कल्पनासे ही सुगत समस्त तत्त्वोंका ज्ञाता है तथा कल्पनासे ही सुगत मोक्षमार्गका प्रतिपादक है। परमार्थतः देखा जाय तो वह तो ज्ञान परमाणुरूप है और अपने ही स्वरूपका सम्वेदन करता है, वहाँ वेद्यवेदकभावका द्वैत नहीं है और परमार्थतः वह सब तत्त्वोंका ज्ञाता बने और वह सर्वज्ञ कहाये सो बात नहीं और इसी प्रकार परमार्थतः मोक्षमार्गका प्रतिपादक नहीं, ये सब बातें सम्वृत्तिसे मानी जाती हैं, यह कथन भी कैसे सङ्गत होता, इसे कारिकामें कहते हैं।

संवृत्त्या विश्वतत्त्वज्ञः श्रेयोमार्गोपदेश्यपि।
बुद्धो वन्द्यो न तु स्वप्नस्ताद् नित्यज्ञचेष्टितम् ॥८५॥

कल्पनासे कल्पित विश्वतत्त्वज्ञ व श्रेयोमार्ग प्रणेतामें वन्द्यताका अनियम— सुगत कल्पनासे ही तो सर्वज्ञ है और कल्पनासे ही मोक्षमार्गका उपदेष्टा है। तो जब कल्पनासे ही उसकी ये विशेषतायें हैं अतएव सुगत वंदनीय है, स्वप्न वंदनीय नहीं, ऐसा कैसे विवेकी सिद्ध कर सकते हैं। जब कल्पना मात्रकी ही चीज है सुगतमें सर्वज्ञता हो और मोक्षमार्गका उपदेष्टा हो तो स्वप्नमें भी जब जो कुछ देखा जाता है वह भी कल्पनामात्रसे दिख रहा है। यदि कल्पनापनेकी अविशेषता सुगत और स्वप्न दोनोंमें है तो उनमेंसे स्वप्न तो वंदनीय नहीं होता और सुगत वंदनीय होता, यह भेद कैसे डाला गया? यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये! यद्यपि सुगत और स्वप्नमें कल्पनाकी अविशेषता है, सुगत भी काल्पनिक है और स्वप्न भी काल्पनिक है फिर भी वंदनीय सुगत ही है, क्योंकि वह भूत स्वभाव है भूत कहते हैं सत्यको।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह वास्तविक है और किन्हीं विपरीत प्रमाणों द्वारा बाधित नहीं होता तथा वह अर्थ क्रियाका कारण भी पड़ता है। वंदना सुगतको किया जा रहा है आदिक अर्थक्रियायें भी देखी जाती हैं, इस कारणसे सुगत तो वंदनीय है, किन्तु स्वप्न सम्वेदन वंदनीय नहीं है। स्वप्नमें कुछ भी जाना जा रहा हो वह वंदनीय नहीं है क्योंकि वह सम्वृति से भी बाध्यमान है, इस कारण अभूतार्थ है और अर्थक्रियामें कारण नहीं है। सम्बृत्ति यद्यपि सुगत स्वप्न दोनोंमें है फिर भी स्वप्न अन्य सम्वृतिसे बाध्यमान है अतः सुगत और स्वप्नकी अविशेषता बताकर सुगतकी वंदनाका निराकरण करना ठीक नहीं है। इसके उत्तरमें कह रहे हैं कि जब काल्पनिक मान लिया सुगतको तो उसे भूत याने सत्य कैसे माना जा सकता है ? सत्य और असत्यमें तो विरोध है। काल्पनिक असत्य होता है और भूतार्थ सत्य होता है। ये दोनों एक जगह एक साथ कैसे रह सकते हैं ? सुगतको जब काल्पनिक स्वीकार कर लिया तो वह यथार्थ स्वभाव कैसे रहा ? और यदि सत्य स्वभाव है तो उसे काल्पनिक कैसे कहा जा रहा ? भूत सत्यको कहते हैं और साम्बृत मिथ्याको कहते हैं। सत्य और मिथ्या ये दोनों एक जगह एक साथ एक रूपमें कैसे रह सकते हैं ? शङ्काकार कहता है कि सम्प्रति सत्यको भूत कहते हैं याने कल्पनामें जो सत्य हो उसका नाम भूत है। तो सुगतके सम्बन्धमें यद्यपि उपचारसे वे विशेषतायें हैं फिर भी याने सम्वृति होनेपर भी सत्य ही है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि सुगत विपरीतसे अबाध्यमान नहीं है याने वहाँ बाधायें आती हैं। इसलिए स्वप्न सम्वेदनसे सुगतमें कुछ भी विशेषता नहीं। सुगत भी काल्पनिक है और स्वप्न सम्वेदन भी काल्पनिक है, तब सम्बृति सत्यको भूत कहना, सत्य कहना यह एक नवीन और काल्पनिक परिभाषा है। इस परिभाषामें युक्तिसे बाधा आती है।

अनादि कल्पनासे किसी ज्ञानको वंदनीय कहनेपर परमार्थतः अवंदनीयताकी ध्वनि—इस प्रसङ्गमें योगाचार कहते हैं कि बात यह है कि सम्बृति दो प्रकारकी होती है— एक सादि सम्वृति, दूसरी अनादि सम्बृति। याने दोनों कल्पना हैं तो अवश्य, किन्तु कोई कल्पना सादि होती है और कोई कल्पना अनादि होती है। तो स्वप्न सम्वेदनमें, स्वप्नमें जो कुछ दीखा वह सादि है, वह कभी शुरू होता है तो सादि सम्वृति तो बाधित हो जाती है, जगनेपर यथार्थ बोध हुआ उससे भी मिथ्या सिद्ध होता है किन्तु सुगत सम्वेदन तो अनादि सम्वृति है अर्थात् यह अनादिसे ही उपचार कल्पना चली आ रही है तो अनादि सम्बृति बाधित नहीं होती। यद्यपि सुगत और स्वप्न सम्वेदन ये दोनों काल्पनिक हैं फिर भी स्वप्न सम्वेदन सादि है और सुगत सम्वेदन अनादि है। यह भेद उन दोनोंमें पाया जा रहा है। इसके समाधानमें कहते हैं कि यहाँ यह कानून बनाया कि जो अनादि सम्वृति हो वह अबाधित होता है और जो सादि सम्बृत्ति हो वह बाधित होता है। तो इस कानूनके अनुसार संसार अबाधित हो जायगा अर्थात् अनादि संसारका अभाव नहीं किया जा सकता, मुक्ति प्राप्त नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की जा सकती, क्योंकि यहाँ भी यह बात स्पष्ट है कि संसार अनादि है, क्योंकि संसार अनादि अविद्याकी वासनाका कारण है तो उसे फिर अबाधित रहना चाहिए था, लेकिन देखा यह जा रहा है कि सम्यग्दर्शन आदिक निर्मल परिणामोंके बलसे यह संसार नष्ट हो जाया करता है तो यदि ऐसा नियम बनाया जाय कि जो अनादि हो वह अबाधित होता है तब संसार अबाधित बन बैठेगा। दूसरी बात यह है कि सुगत को यदि सम्वृतिसे याने कल्पनासे वंदनीय मान लिया जाय तब यह बतलाओ कि परमार्थसे वदनीय कौन है ? सुगत तो एक कल्पनासे ही वंदनीय हुआ। तो जहाँ कल्पना की बात आती है वहाँ उसका प्रतिपक्ष परमार्थ भी कुछ होता है। तब यहाँ बतायें कि परमार्थसे वंदनीय कौन है ? शङ्काकार कहता है कि सम्वेदना द्वैत याने सम्वेदन मात्र परमार्थसे वन्दनीय है। सुगत तो एक सम्वेदनाका स्वामी है, किन्तु सम्वेदन एक अंतस्तत्त्व है। यह सम्वेदनाद्वैत वदनीय है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि सम्वेदना द्वैत के न तो स्वयं जानकारी बनती है और न किसी अन्य प्रमाण आदिकसे जानकारी बनती है तो सम्वेदन द्वैत तत्त्व ही असिद्ध है फिर भी वंदनीय कहा जाय ? इसी बातको कारिकामें कहते हैं।

यत्तु संवेदनाद्वैतं पुरुषाद्वैतवन्न तत् ।
सिद्ध्येत्स्वतोऽन्यतो वाऽपि प्रमाणात्स्वेष्टहानितः ॥ ८६ ॥

पुरुषाद्वैतकी असिद्धिकी तरह संवेदनाद्वैतकी असिद्धि—जो सम्वेदना द्वैत अर्थात् विज्ञानमात्र तत्त्व है वह स्वतः सिद्ध नहीं है। जैसे कि पुरुषाद्वैत, ब्रह्माद्वैतको स्वतः सिद्ध नहीं बताते हैं सम्वेदनाद्वैतवादी, उसी प्रकार सम्वेदनाद्वैत भी स्वतः सिद्ध नहीं बनता तथा अन्य प्रमाणसे वे कोई सम्वेदनाद्वैतको सिद्ध करें तो उसमें अद्वैतकी हानि होती है, क्योंकि अब प्रमाण एक और तत्त्व बन गया फिर एक ही तत्त्व कैसे रहा ? जैसे ब्रह्माद्वैत स्वतः सिद्ध नहीं है क्योंकि स्वरूपका स्वयं ज्ञान नहीं होता। जो स्वरूप है ऐसा वह स्वयं अपने आपका ज्ञान करले तब कभी भी किसी भी बातका विवाद न होना चाहिए। अतः सम्वेदनाद्वैत स्वयं सिद्ध नहीं है। यदि स्वयं सिद्ध मान लिया जाय सम्वेदनाद्वैत विज्ञानमात्र तत्त्वको तो ऐसे ही अन्य लोग भी जिनका जो अभिमत है ब्रह्माद्वैतवादी अपने ब्रह्माद्वैतको स्वतः सिद्ध मान लेंगे तब आपका सम्वेदनाद्वैत न रहा, फिर तो सभीका सभी कुछ सत्य रह गया। शङ्काकार कहता है कि देखिये ! प्रतिभासाद्वैत तो स्वतः नहीं माना जाता, क्योंकि ब्रह्माद्वैतवादी ब्रह्मपुरुषको एक ही विश्वमात्र मानते हैं। उनका कथन है कि सारा विश्व एक ब्रह्ममात्र है दूसरा कोई तत्त्व है नहीं, इस तरह जब वह ब्रह्म सारेके सारे समयोंमें व्याप्त है और सारे क्षेत्रोंमें व्याप्त है तो इस तरहका ब्रह्म किसीके भी अनुभवमें नहीं आ रहा। जब स्वतः जाना जा रहा होता तो क्यों नहीं स्वतः जाना जा रहा ? क्यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं संवाद हो रहा ? इसलिए पुरुषाद्वैत सिद्ध नहीं हो सकता। इसके समाधानमें कहते हैं कि जैसे विज्ञानमात्र सारे विश्वको मानने वाले क्षणिकवादी नित्य ब्रह्माद्वैतको असिद्ध कर रहे हैं इसी तरह विज्ञानमात्र तत्त्व भी तो असिद्ध है एक क्षण रहता हो और एक ज्ञान अणुरूप हो, निरंश हो सो ज्ञान परमाणु भी तो किसीके अनुभवमें नहीं आ रहा। ये दोनों सिद्धान्त परस्पर प्रतिपक्षी हैं। ज्ञानाद्वैतवादी तो एक ज्ञानपरमाणु मानते हैं और प्रतिक्षण नष्ट होने वाला मानते हैं, जब कि ब्रह्माद्वैतवादी ब्रह्मको नित्य सर्वव्यापक मानते हैं। तो यद्यपि ये दोनों ही अद्वैत सिद्ध नहीं हैं, फिर पुरुषाद्वैत का खण्डन करने वाले विज्ञानमात्र तत्त्ववादी भी अपना इष्ट कैसे सिद्ध कर सकते हैं? अर्थात् पुरुषाद्वैतकी तरह सम्वेदनाद्वैत भी अनुभवमें नहीं आता। यदि शङ्काकार यह कहे कि सम्वेदनाद्वैतको हम स्वतः सिद्ध नहीं कहते जिससे अन्य प्रमाण तत्त्वको सिद्ध करने लगें। विज्ञानका क्या स्वरूप है और एक विज्ञान परमाणु ही लोकमें है, इस बातको हम प्रमाणसे सिद्ध करेंगे। स्वतः सिद्ध करनेमें तो यह आपत्ति दी कि सबको अपना-अपना मत स्वतः सिद्ध हो बैठेगा। उत्तरमें कहते हैं कि यदि अन्य प्रमाणसे ज्ञानाद्वैतकी सिद्धि करोगे तो ज्ञानाद्वैत तो बन गया साध्य और जिस प्रमाणसे सिद्ध करोगे वह प्रमाण बन गया साधन। तो यों द्वैत आ गया। साध्य और साधनको स्वीकार करना पड़ा। तो अब अद्वैत तो न रहा। सारांश यह है कि सम्वेदनाद्वैतमें ज्ञानमात्र तत्त्वकी सिद्धि आप प्रमाणसे करेंगे तो वह साधन हो गया और ज्ञानाद्वैत साध्य हो गया। तो दो चीजें हो गयीं—साध्य है और साधन है। तब यहाँ एक ज्ञान अद्वैत तत्त्व न रहा। अब द्वैतका प्रसङ्ग आ गया। और जब दो चीजें हो गई तो इसीके विस्तारमें अर्थ परमाणु भी सिद्ध हो जायगा और जगतमें जो जो कुछ भी पदार्थ हैं वे सब सिद्ध हो सकते हैं। ज्ञानाद्वैतकी कल्पना करना व्यर्थ है।

ब्रह्माद्वैतवादियों द्वारा अपने अभिमतका स्वसंवेदनाद्वैतवादियोंकी भाँति प्रतिपादन— यहाँ ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि जिस तरह सम्वेदनाद्वैतवादी अपने सम्वेदनाद्वैतको सिद्ध करते हैं उसी प्रकार ब्रह्माद्वैत भी सिद्ध होता है। सम्वेदनाद्वैतवादियोंका यह अनुमान है कि जो जो सम्विदित होता है वह वह सम्वेदन है याने जो ज्ञानमें आता है वह सारा स्वरूप सम्वेदन ही है। जैसे कि सम्वेदनका स्वरूप ज्ञानमें आता है तो वह ज्ञान ही तो है और ये नील आदिक माने गये बाह्य पदार्थ और सुख आदिक माने गए अंतरङ्ग पदार्थ ये सब ज्ञान होते हैं। इस कारण सब ज्ञान स्वरूप है। ज्ञानाद्वैतवादियोंका यह अभिमत है कि सारा विश्व ज्ञानमात्र है, क्योंकि ज्ञानमें प्रतिभास हो रहा है, ज्ञेय हो रहा है। जो जो कुछ भी ज्ञात होता है वह सब ज्ञानस्वरूप है। तो जैसे सम्वेदनाद्वैतवादी अपना अद्वैत पक्ष उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ब्रह्माद्वैत भी तो सिद्ध होता है। इसको भी देखो ! यहाँ यह अनुमान प्रयोग है कि यह सब प्रतिभास ही है, क्योंकि प्रतिभासमान होता है। जो जो प्रति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भासमान होता है वह सब प्रतिभासमात्र ही है। जैसे प्रतिभासस्वरूप और प्रतिभासमान यह सारा विश्व है, इस कारण वह प्रतिभासस्वरूप ही है। प्रतिभासस्वरूप यह सब जगत प्रतिभासमान है, यह असिद्ध नहीं है। सभी लोगोंके अनुभवमें भी आता और कभी कुछ भी मालूम पड़े कि ये कुछ बाह्य पदार्थ हैं लेकिन प्रतिभासमें आये बिना तो नहीं कुछ समझ सके। तो वस्तुतः वह प्रतिभासस्वरूप ही है। यदि साक्षात् अथवा परम्परासे यह जगत प्रतिभासमान न हो तो तब वह न किसी शब्दका विषय बनेगा न विकल्पका विषय बनेगा। जब किसी वचनका विषय नहीं बनेगा तब उसका कथन ही नहीं किया जा सकता। कोई यह संकेत भी नहीं कर सकता कि यह है जो कि प्रतिभासमें नहीं आ रहा, प्रतिभासमें न आये वह तो है ही नहीं। तो सारा जगत प्रतिभासस्वरूप है और जो प्रतिभास है वह आत्मारूप ही है, चेतनस्वरूप ही है, क्योंकि चेतनस्वरूपके ही प्रतिभासमानपना बनता है। जो अचेतन है अचिद्रूप है उसके प्रतिभासपना नहीं बनता। तो जो वह चिद्रूप है, चित्सामान्य है उसीको पुरुषाद्वैत कहते हैं और ज्ञानाद्वैत कहते हैं। इस प्रसङ्गमें तटस्थ पुरुषोंको यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि ज्ञानाद्वैत और ब्रह्माद्वैतके सिद्धान्तमें क्या अन्तर है? वैसे ब्रह्माद्वैत भी ज्ञानस्वरूप की बात कह रहा है और ज्ञानाद्वैत भी ज्ञानस्वरूपकी बात कह रहा है किन्तु ज्ञानाद्वैतवादियोंका वह ज्ञान परमाणुमात्र है, जिसे ज्ञानाणु कहते हैं। साथ ही वह क्षणवर्ती है, प्रतिक्षण विनाशीक है, किन्तु ब्रह्माद्वैतका ज्ञानस्वरूप व्यापक है, कालसे भी व्यापक है, देशसे भी व्यापक है, शाश्वत है और प्रतिपक्षतामें इतना अन्तर है कि एक नित्यवादी है, दूसरा क्षणिकवादी है। खैर, यह अन्तर रहे, किन्तु जिस ढङ्गसे ज्ञानाद्वैतवादी अपना पक्ष रख सकते हैं उसी ढङ्गसे ब्रह्माद्वैतवादी भी रख सकते हैं।

एक नित्य व्यापक ब्रह्मस्वरूपका पुरुषाद्वैतवादमें वर्णन—देखिये! ब्रह्माद्वैतवादियोंका यह परम ब्रह्म स्वरूप देश, काल और आकारसे कभी नष्ट नहीं हो सकता याने समस्त देशोंमें यह ब्रह्मस्वरूप व्यापक है और अनादि अनन्त समस्त कालोंमें यह ब्रह्मस्वरूप व्यापक है और आकार भी सदा एक समान है। इस कारण पुरुषाद्वैतका नित्यपना, सर्वगतद्वैतपना और साकारपना बिल्कुल नियत है। ऐसा कोई भी समय नहीं है जब कि चित्सामान्यके प्रतिभास न हो अर्थात् प्रत्येक क्षणोंमें चित् सामान्यका प्रतिभास निरन्तर रहता है। भले ही कोई यह सोचे कि प्रतिभास तो नष्ट होते जाते हैं—जैसे नील प्रतिभास होना यह नील है, तो यह ज्ञान सदा तो नहीं रहता, तो ऐसा यह प्रतिभास विशेष नष्ट हो गया। इसी तरह आन्तरिक पदार्थ सुख है। जिस समय सुखका प्रतिभास हुआ तो ऐसा प्रतिभास सदा तो नहीं रहता, वह भी नष्ट हो जाता है। तो यद्यपि ऐसा प्रतिभास विशेष किसी कालमें नष्ट हो जब फिर भी प्रतिभास सामान्य तो कहीं नष्ट नहीं हुआ। यहाँ यह बात भी प्रकट है कि प्रतिभास विशेष कहीं प्रतिभासमान हो रहा, वह दूसरे कालमें प्रतिभासित न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्योंकि समय-समयमें प्रतिभास विशेष नये-नये होते जाते हैं, तो अन्य प्रतिभासविशेष के द्वारा पूर्व प्रतिभास विशेष नष्ट हो गया। यह भी देखा जाता किन्तु समस्त प्रतिभास विशेषों के सम्बन्धमें प्रतिभास सामान्य तो रहता ही है। चाहे कितनी तरहके विशेष होते रहें, ज्ञात होते रहें याने व्यक्तिगत विशेष बनते रहें। यह चौकी है, यह पुस्तक है आदिक कितने ही ज्ञान बन रहे, पर उन सब ज्ञानोंमें ज्ञान सामान्य प्रतिभास सामान्य निरन्तर रह रहा है। समस्त प्रतिभास विशेषोंके सम्बन्धमें भी प्रतिभास सामान्य रहता है, इस कारण प्रतिभास सामान्यका किसी भी कालमें विच्छेद नहीं होता सदैव वह बना रहता है। देखिये! जैसे वह ब्रह्म प्रतिभास किसी भी कालमें नष्ट नहीं होता, इसी तरह वह देशसे भी नष्ट नहीं होता। यद्यपि किसी देशमें, किसी क्षेत्रमें, कोई प्रतिभास विशेष है और अन्य क्षेत्रमें अन्य प्रतिभास विशेष है तो एक देश वाला प्रतिभास विशेष और अन्य देशका प्रतिभास विशेष ये यद्यपि एक दूसरेसे अलग जचते हैं और उसके द्वारा विच्छेद बन गया है कि यहाँ अन्य प्रतिभास हो और दूसरे देशमें अन्य प्रतिभास विशेष हो रहा है, लेकिन इसके होनेपर भी प्रतिभास सामान्यका तो विच्छेद नहीं है। सर्व देशोंमें सर्व प्रतिभास देशीय प्रतिभास विशेषमें प्रतिभास सामान्य निरन्तर बन रहा है। यों देशकी अपेक्षासे भी प्रतिभास सामान्यका विच्छेद नहीं है। इसी प्रकार अब यह विचार कि प्रतिभास सामान्यका आकारसे भी विच्छेद नहीं है। यद्यपि प्रतिभास विशेषोंमें भिन्न-भिन्न आकारोंसे प्रतिभास विशेष हुआ करता है तो किसी आकारसे होने वाला जो ज्ञान विशेष है उसके अन्य आकार वाले ज्ञान विशेषसे विच्छेद पाया जाता है याने अन्तर पाया जाता है। एक आकार वाला प्रतिभास दूसरे आकार वाले प्रतिभास विशेषसे निराला जचता है, यही आकार का विच्छेद कहलाता है। तो यों प्रतिभास विशेषोंमें आकार विच्छेद होनेपर भी प्रतिभास सामान्य तो समस्त आकार वाले प्रतिभास विशेषमें रहता ही है। इस कारण आकारकी अपेक्षासे भी यह ब्रह्म, यह पुरुषाद्वैत प्रतिभास सामान्य स्वयं अविनाशी है, व्यापक है।

विच्छिन्नताकी भी प्रतिभासान्तः प्रविष्टताका पुरुषाद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन—प्रतिभास सामान्यकी सिद्धिमें उक्त युक्तिके अतिरिक्त यह भी तो सोचिये कि जो भी प्रतिभास विशेष, किसी देशमें किसी कालमें, किसी आकारमें हुए हैं वे प्रतिभास विशेष देशकाल, आकारसे विच्छिन्न हैं, तो जिसे भी विच्छिन्न बताया जा रहा वह प्रतिभासमें आ रहा या नहीं? यदि प्रतिभासमें नहीं आ रहे तब तो जिनका विच्छेद बताया जा रहा उनकी व्यवस्था ही न बन सकेगी, सत्ता ही न बन सकेगी। क्योंकि जो प्रतिभासमें नहीं आये उनकी भी सत्ता कायम कर दी जाय तो इसमें बड़ा दोष है। खरगोशके सींग, मनुष्यके सींग, इन सबकी भी सत्ता बन बैठेगी। तो जो प्रतिभास विशेष देश, काल, आकार आदिकसे विच्छिन्न है वे यदि प्रतिभासमान नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो रहे तब तो उनकी व्यवस्था ही नहीं बन सकती और यदि प्रतिभासमान हो रहे तो समझना चाहिए कि वह प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत ही है क्योंकि मूल अनुमान प्रयोग वेदान्तवादका यह है कि जो जो भी प्रतिभासमान होता है वह सब प्रतिभास स्वरूप है, प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत है। जैसे खुद प्रतिभास स्वरूप प्रतिभासमान होता है तो प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत है। इस अनुमानका स्पष्ट भाव यह है कि जो प्रतिभास हो रहा है, जानकारीमें आ रहा है, ज्ञात हो रहा है वह सब प्रतिभास स्वरूप है। जेसे कि ज्ञान स्वरूप भी तो ज्ञानमें आता है। तो वह ज्ञान सामान्यरूप है। तो जो जो भी प्रतिभासमें आ रहे हों वे वे सब प्रतिभास स्वरूप हैं और वे निरन्तर व्यापक हैं, सर्वकालमें व्यापक हैं और सर्व आकारमें व्यापक हैं। ऐसा कोई भी पदार्थ न मिलेगा कि जो प्रतिभासमान तो होता हो और प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत न हो. इसी कारण हमारा हेतु अनैकांतिक दोषसे दूषित नहीं है। जो जो प्रतिभासमान है वह प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत ही है। यदि हेतु विपक्षमें पाया जाता तो अनैकान्तिक दोष कहलाता। याने प्रतिभासमान तो हो कोई पदार्थ और प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत न आता हो तब दोष होता लेकिन जो जो भी प्रतिभासमान होता है वह सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत ही रहता है।

देशकालाकार भेदोंकी भी प्रतिभासान्तः प्रविष्टताका ब्रह्माद्वैतवादमें प्रतिपादन—अब अन्य बातको भी देखिये! दूसरेके द्वारा माना गया जो देशभेद, कालभेद और आकार भेद है, यों भेदको जताकार पुरुषाद्वैतका खण्डन करना चाहते हैं। जरा वे यह तो बतायें कि वे देश, काल और आकार भेद यदि प्रतिभासमान नहीं हो रहे तो उन भेदोंको स्वीकार कैसे किया जा सकता है? देखो जो स्वयं प्रतिभासमान नहीं है ऐसा किसी पदार्थको स्वीकार किया जाय तो इसमें तो बड़ा दोष है। असत्‌को भी सत् कह दिया जायगा। असत् भी प्रतिभासमान नहीं है, लेकिन वह भी सत् बन बैठेगा, क्योंकि अप्रतिभास होनेपर भी देशभेद, कालभेद, आकारभेदको स्वीकार किया जा रहा है। तो जो स्वयं प्रतिभासमान नहीं हैं उन्हें तो कहा ही नहीं जा सकता। स्वरूप भी नहीं किया जा सकता। और, यदि देश भेद कालभेद और आकार ये प्रतिभासमान हैं तो वे प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं ही। उससे तो इतना अनुमान पुष्ट होता है कि जो जो प्रतिभासमान हैं वे सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं। ये देशभेद, कालभेद, आकारभेद भी अगर प्रतिभासमान है, चाहे किसी रूपसे प्रतिभास हो रहे हों वे सब भी प्रतिभास सामान्यमें प्रविष्ट हैं। तब प्रतिभास सामान्य का विच्छेद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सब प्रतिभास सामान्य स्वरूप ही है। तो स्वरूपसे स्वका विच्छेद नहीं किया जा सकता। याने अपने स्वरूपसे अपना अभाव नहीं होता। खुद ही खुदका अभाव करे ऐसी किसमें सामर्थ्य है। जो पदार्थ सत् है वह स्वयं अपनेको असत् बनादे, ऐसा किसी प्रकार हो ही नहीं सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देशकालाकारविच्छेदोंकी प्रतिभासान्तः प्रविष्टताका पुरुषाद्वैतवादमें प्रतिपादन—अब एक बात और भी देखिये ! जो लोग कहते हैं कि प्रतिभास सामान्यका भी देश, काल, आकारका विच्छेद हो सकता तो किसी प्रकार कल्पनामें मान लें वे कि प्रतिभास सामान्यका देश, काल, और आकारका विच्छेद हो जाता है तो इतना माननेपर भी यह तो बतायें कि जो उसका विच्छेद हो तो यह बात प्रतिभासमें आयी या नहीं ? यदि यह प्रतिभासित हो रहा है विच्छेद, तो लो वही प्रतिभास ही बन गया। जो जो प्रतिभासवान हो वे वे सब प्रतिभास स्वरूप ही होते हैं। भले ही उसका नाम विच्छेद रख लिया लेकिन है तो प्रतिभास स्वरूप क्योंकि प्रतिभासमान हो रहा हैं, और यदि वह विच्छेद प्रतिभासित नहीं होता तो कैसे कहा जा सकता कि विच्छेद है। अरे जो प्रतिभासमें नहीं है उसे 'है" भी नहीं कहा जा सकता प्रतिभासित नहीं होता और "है" इन दोनोंमें परस्पर विरोध है। अब यहाँ वेदान्तियों के प्रतियोगाचार कहते हैं कि देखिये ! जो पदार्थ देशसे दूरवर्ती है याने बहुत दूर देश में रह रहे है, जो कालसे दूरवर्ती है याने जो हजारों करोड़ों वर्ष पहिले हो चुके हैं या आगे होंगे तथा जो स्वभावसे दूरवर्ती हैं जैसे परमाणु आदिक तो ये किसी तरह प्रतिभासमें तो नहीं आ रहे। यहाँसे १०० कोशपर रहने वाला कोई गाँव या पेड़ हमारे प्रतिभासमें तो नहीं आ रहा, लेकिन जो समझदार हैं वे उसे सत् मान रहे हैं तो ऐसा भी हुआ करता है कि प्रतिभासमें नहीं आया फिर भी सत् है, इसी प्रकार जो कालसे दूरवर्ती है जैसे राम रावण आदिक तो वे अब प्रतिभासमें तो नहीं आ रहे फिर भी वे सत् माने जा रहे, इसी तरह परमाणुको भी सत् समझा जाता है। तो अप्रतिभासित पदार्थ भी आस्तिकोंके द्वारा सत् ही कहा जाता है। कोई बाधा नहीं है। तो इसी प्रकार देश, काल, आकार, से प्रतिभास सामान्यका विच्छेद है और वह प्रतिभास मान भी हो तो भी वह विच्छेद तो है ही, यह सिद्ध हो जाता है। इसके उत्तरमें वेदान्ती कहते हैं कि नहीं, सर्वथा अप्रतिभासमान किसीको नहीं कहा जा सकता। वे देश काल आकारसे होने वाले विच्छेद भी शब्दज्ञान अथवा अनुमान ज्ञानसे प्रतिभासमें आ ही रहे हैं। यदि शब्दज्ञान अथवा अनुमान ज्ञानसे भी वह प्रतिभासित नहीं होता तो उसका अस्तित्व ही नहीं बन सकता। शब्दसे अनुमानसे कोई आकारसे कुछ प्रतिभास में आ ही तो रहा है जिसको समझनेकी कोशिश की जा रही है। तो जब प्रतिभासमान हो रहा है तो वह प्रतिभास स्वरूपके अन्तर्गत है। और यदि प्रतिभासमान नहीं हो रहा है तो उसकी सत्ता ही नहीं, व्यवस्था ही नहीं। तो यों सर्व कुछ प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत ही है।

अन्तरित पदार्थोंकी प्रतिभासान्त प्रविष्टताका पुरुषाद्वैतवादमें कथन यहाँ योगाचार कहते हैं कि यदि इस तरह मान लिया जाता कि शब्द ज्ञान और अनुमान ज्ञानसे जो प्रतिभासित हो रहा है ही, तब फिर शब्द ज्ञानमें विकल्पमें प्रति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भासित तो हो रहे हैं अनेक पदार्थ और उन परस्पर विरुद्ध पदार्थके प्रतिपादक अनेक मत मतान्तर वे भी विकल्प ज्ञानमें प्रतिभाषित हो रहे हैं और जैसे कि खरगोशके सींग या मनुष्यके सींग ये भी प्रतिभासमें तो आ रहे हैं, किसी ढङ्गसे समझा तो जा रहा है और जो भूतकालमें पुरुष हुए हैं वे भी प्रतिभासमें आ रहे हैं। जो आगे उत्पन्न होंगे, अभी नहीं हैं वे भी प्रतिभासमें आते हैं। तो उन सबका आप निराकरण कैसे कर सकते हैं? जगतके ये सारे पदार्थ विविध, वर्तमान, भूत, भविष्यमें होने वाले अनेक पदार्थ ये सब सत् हैं, इनका निराकरण कैसे किया जा सकता? और जब निराकरण नहीं किया जा सकता तो आप ब्रह्माद्वैतकी अड़पर क्यों बने हुए हैं? फिर कैसे पुरुषाद्वैतकी सिद्धि हो सकती है? ऐसे योगाचारके प्रश्नके उत्तरमें वेदान्ती जन कहते हैं कि पुरुषाद्वैतकी सिद्धि यों बनी हुई है कि जितने भी आप प्रतिभासमान विषयभूतकालीन, भविष्यकालीन और वर्तमान कालीन विविध पदार्थ हैं वे सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत ही हैं, यह सिद्ध होता है इस कारणसे पुरुषाद्वैतके माननेमें किसी प्रकारका दोष नहीं है। और, तब एक यह नियम बना कि जो जो प्रतिभास हों वे भी सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत ही हैं।

पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष, कारक, क्रिया आदि सब प्रतिभासोंकी प्रतिभासान्त प्रविष्टताका पुरुषाद्वैतवादमें वर्णन—इस सम्बन्धमें स्याद्वादी भी जो कुछ दोष दे रहे हैं वह दोष भी यहाँ सिद्ध नहीं होता।

> अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते।
> कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते॥
>
> कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
> विद्याऽविद्या द्वयं न स्याद्बन्धमोक्षद्वयं तथा॥

स्याद्वादी जन यह दोष उपस्थित करते हैं अद्वैत एकान्तके पक्षमें कि यदि अद्वैतका एकान्त हो तो जो भेद दिखाया जा रहा कि यह कारक है, यह क्रिया है, यह भेद फिर नजर न आना चाहिए, क्योंकि जो एक है वह अपनेसे उत्पन्न नहीं होता और इसके अतिरिक्त अद्वैत एकान्तमें पुण्य, पाप कर्म सुख दुःख फल, इहलोक परलोक, विद्या अविद्या, बंध और मोक्ष ये दो दो तत्त्व नहीं बन सकते हैं, क्योंकि अद्वैतका एकपनेका एकान्त कर लिया गया है, तो ऐसा जो दोष दिया जाता है वह यहाँ लागू नहीं होता। कारण यह है कि जो कुछ भी बताया गया है क्रिया, कारक, पुण्य, पाप, बंध, मोक्ष, साराका सारा प्रतिभाष सामान्यके अन्तर्गत है और उस प्रतिभासपनेसे तो प्रतिभास सामान्यकी ही पुष्टि होती है। इस कारण एक पुरुषाद्वैत तत्त्व है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसमें किसी भी प्रकारकी शङ्का न होनी चाहिए। जो अद्वैतका विरोध करने वाला द्वैत बताया गया है कि क्रिया भी देखी जाती, कारक भी देखा जाता। देखे जावें, प्रतिभास विशेष हो गए मगर सारे प्रतिभास विशेष प्रतिभास सामान्यके ही तो अन्तर्गत हैं। पुण्य पाप दो प्रकारके कर्म बता दिए। प्रतिभास विशेष बन गए, पर हैं तो प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत, इसी तरह अनादि अविद्या बन्ध बन जायगी। इहलोक, परलोक, सुख दुःख जो जो भी दो दो बातें कह रहे हैं, वे सब प्रतिभास विशेष हैं और प्रतिभास विशेष प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं। तो ये सब प्रतिभासमान हो रहे सो प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत सिद्ध होते हैं। अगर कहो कि ये सब प्रतिभासमान नहीं हो रहे, सब अप्रतिभासमान हैं—कारक क्रिया पुण्य पाप आदिक अगर अप्रतिभासमान हैं तो विरोधक बन ही नहीं सकते। जब ये प्रतिभासमें ही नहीं हैं इनकी सत्ता ही नहीं है, व्यवस्था ही नहीं है तो विरोधक कैसे बन सकते ? सारांश यह है कि जो प्रतिभासमान नहीं है वह हमारे पक्षका विरोधक भी नहीं बन सकता और जो प्रतिभासमान हों तो वे सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं। तो इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जितना भी प्रतिभास विशेष हो रहा है वह सब प्रतिभास विशेष प्रतिभास सामान्यका ही ज्ञापक है।

हेतु, साध्य, पक्ष आदिकी भी प्रतिभासान्तः प्रतिष्टताका पुरुषाद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन— जो यह भी कहा जाता है कि यदि हेतुसे अद्वैतकी सिद्धि की जाय तो यहाँ द्वैत आ गया। हेतु और साध्य तो अद्वैत एकान्ती न रहा और यदि हेतुके बिना ही अद्वैतकी सिद्धि की जाय तो इसका अर्थ है कि कहने मात्रसे अद्वैत बन गया। तो यों कहने मात्रसे द्वैत क्यों न बन जायगा ? इस प्रकारकी भी जो लोग आपत्ति देते हैं वह आपत्ति भी सही नहीं है, क्योंकि जो कुछ भी प्रतिभासमान हो, हेतु साध्य, पक्ष, वक्ता श्रोता आदिक वे समस्त पदार्थ प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं। तो हमारा मूल अनुमान प्रयोग यह है कि जो जो भी प्रतिभासमान होते हैं, वे वे सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं। जैसे कि प्रतिभासका सामान्यका स्वरूप वह प्रतिभासमें आ रहा तो वह प्रतिभास सामान्यका ही बन रहा है। तो जो जो भी प्रतिभासमान हों वे सब जब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत सिद्ध हो गए तो आपके कोई भी पदार्थ, कोई भी प्रतिभास विशेषाद्वैतको सिद्ध नहीं कर सकता और कोई यह कहे कि हेतुके बिना अगर आगमसे ब्रह्माद्वैतकी सिद्धि कर रहे हो तो द्वैत हो जायगा सो भी द्वैत नहीं होता। वह आगम वाक्य भी तो उस ब्रह्मस्वरूपसे भिन्न नहीं है, क्योंकि प्रतिभासमान हो रहा है, तो जो जो भी प्रतिभासमान हों वे वे सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं। यों जगतमें एक प्रतिभास ही ब्रह्म, पुरुषाद्वैत ही तत्त्व है और वह नित्य है, व्यापक है और एकाकार है। अतः सम्वेदनाद्वैतवादी जो यह कह रहे हैं कि [illegible] जो प्रतिक्षण विनाशीक है, एकदेशीय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, किन्तु स्वरूप दृष्टिसे एकरूप है और परमाणुमात्र ही है, ऐसा ज्ञानाणुरूप ज्ञानाद्वैत सो ठीक नहीं, इसे ज्ञानस्वरूप, प्रतिभास स्वरूप भी नहीं कहा, क्योंकि ज्ञान शब्दसे विशेषका बोध होता है। केवल प्रतिभासमात्र ब्रह्मस्वरूप ही वास्तविक तत्त्व है और उसका जो कहने वाला हो सो ही मोक्षमार्गका प्रणेता बनेगा, किन्तु ज्ञानाणु मोक्षमार्ग का प्रणेता नहीं बन सकता। ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि किन्हींका यह कहना है—पुरुषाद्वैतके खण्डन करनेमें कि यदि पुरुषाद्वैतकी अनुमानसे सिद्धि की जाय तो वहाँ पक्ष हेतु और दृष्टान्त अवश्य मान सकेंगे ? क्योंकि इन सबके माने बिना अनुमानकी उत्पत्ति नहीं होती। तो जब ये सब मानने पड़े तब अद्वैत तो न रहा, अनेक बातें बन गईं, यों पुरुषाद्वैतकी सिद्धि नहीं हो सकती। इसके उत्तरमें कहते हैं कि उनका ऐसा सोचना गलत है। ब्रह्माद्वैतवादी वहाँ यों कह रहे हैं कि अनुमान आदिकको अथवा पक्ष आदिकका भेद सिद्ध नहीं है, क्योंकि जो पक्ष हेतु दृष्टान्त आदिक जाने गये वे एक तो प्रतिभासके अन्त:प्रतिष्ट है। याने पक्ष आदिक क्या प्रतिभासमान हैं या नहीं? यदि प्रतिभासमान हैं। तब तो वे प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं। और फिर तब पक्ष हेतु आदिकका सिद्ध होना भी प्रतिभास सामान्यका बाधक नहीं है। जैसे कि अनुमान प्रयोग प्रतिभास सामान्यकी सिद्धिमें बाधक नहीं, किन्तु साधक है तो पक्षादिक भी प्रतिभास सामान्यकी सिद्धिमें साधक ही है। अब दूसरी बात सुनो ! यदि पक्ष हेतु दृष्टान्तादिक प्रतिभासमान नहीं हैं तो उनका सद्भाव ही असिद्ध है, उनकी सत्ता और व्यवस्था भी नहीं है, तो जिसकी सत्ता नहीं, व्यवस्था नहीं वह किसी भी तत्त्वका विरोधी कैसे हो सकता है ?

प्रमाण प्रमिति प्रमेय प्रमाता आदिकी भी प्रतिभासान्त: प्रविष्टताका पुरुषाद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन—ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि पुरुषाद्वैत तत्त्व अन्य प्रमाणसे प्रतीत होता है, तो जब अन्य प्रमाणसे पुरुषाद्वैतकी सिद्धिकी जा रही है तो प्रमेय भी मानना पड़ेगा। जिस प्रमाणसे पुरुषाद्वैतकी सिद्धि की जाय वह तो प्रमाण और पुरुषाद्वैत हुआ प्रमेय और पुरुषाद्वैतका जो ज्ञान हुआ वह हुआ प्रमिति। तथा कोई जानने वाला है जो कि प्रमाणको सिद्ध कर रहा है वह हुआ प्रमाता। तो इस तरह ये चार चीजें बन गईं प्रमाण, प्रमेय, प्रमिति और प्रमाता। जब ये चार तत्त्व वास्तविक सिद्ध हो गए तब फिर अद्वैत कहाँ रहा ? याने ये अनेक बातें हो गईं। इस सम्बन्धमें ब्रह्माद्वैतवादियोंका यह समाधान है कि प्रमाण आदिक चारों ही प्रतिभासमान हैं या नहीं ? यह बतावें। यदि चार भेद प्रतिभासमान हैं तब तो वह प्रतिभास सामान्यरूप ही रहे। तब परम ब्रह्मसे बाहर नहीं हुए और परम ब्रह्म ही तत्त्व रहा। दूसरा कुछ न रहा। जो कुछ भी दूसरा बताया जायगा वह ब्रह्मसे अभिन्न है ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि इसी आधार पर उन लोगोंका यह कहना भी खण्डित हो जाता है—जो लोग ऐसा कहते हैं कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१६ पदार्थ हैं और प्रागभाव आदिक चार अभाव हैं। तो जब १६ पदार्थोंकी जानकारी चल रही है और प्रागभाव आदिक अभावकी जानकारी की जा रही है तो अद्वैत तत्त्व कहाँ रहा ? ये तो अनेक पदार्थ हो गए। ऐसा जो कोई कह रहे हैं उनकी बात भी किसी युक्तिसे निराकृत हो जाती है। वे बतायें कि वे १६ पदार्थ आदिक जो कुछ भी बताये जा रहे हैं वे प्रतिभासमान हैं या नहीं। यदि वे प्रतिभासमान हैं तो प्रतिभास सामान्यसे अलग नहीं हो सकता तब उन सबकी जानकारीसे पुरुषाद्वैतके ज्ञानमें कोई बाधा नहीं आती। यदि वे १६ पदार्थ प्रतिभासमान नहीं हैं तो जो प्रतिभास नहीं किए जा रहे हैं उनका सद्भाव भी नहीं बन सकता। तो जिनकी सत्ता और व्यवस्था नहीं है उनसे हमारे पुरुषाद्वैतके सिद्धान्तमें क्या कोई बाधा आ सकती है ? यदि असत् पदार्थसे अव्यवस्थासे पुरुषाद्वैतके सिद्धान्तमें बाधा मान लोगे तो फिर खरगोशके सींग आदिक असत् पदार्थोंको भी इष्ट पदार्थमें माननेकी बाधा आने लगेगी। तात्पर्य यह है कि जो अप्रतिभासमान है, जानकारीमें आ ही नहीं रहे हैं है किसीके बाधक नहीं बन सकते। और जो प्रतिभासित हैं वे प्रतिभासान्तः प्रविष्ट हैं। ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि इसी आधारपर कोई बात यदि प्रतिभासमान है तो प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत है और यदि प्रतिभासमान नहीं है तो उसकी सत्ता ही नहीं है। उससे बाधा क्या आयगी ? अद्वैत मान लेंगे। इस कानूनके अनुसार सांख्य आदिककी मान्यता भी निराकृत हो जाती है। उनका मन्तव्य है कि २५ तत्त्व होते हैं—एक पुरुष तत्त्व और प्रधान आदिक शेष तत्त्व। तो अनेक हो जानेसे पुरुषाद्वैत नहीं ठहरता। उनका कथन भी इसी आधारपर बाधित होता है। वे बतायें कि वे पुरुष प्रकृति आदिक तत्त्व प्रतिभासमान हैं या नहीं ? यदि प्रतिभासमान हैं तब तो वे प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं और यदि प्रतिभासमान नहीं हैं तो उनकी सत्ता ही नहीं है उनसे पुरुषाद्वैत में कैसे बाधा आ सकती है ? कोई ऐसा सोचे कि आत्म साधनाके अङ्ग बहुत हैं यम, नियम, आशय, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये तो ८ योगके अङ्ग हैं और सम्प्रज्ञात व असम्प्रज्ञात ये दो प्रकारकी समाधियाँ हैं। विभूति और कैवल्य ये दो योगके फल हैं, जब इतने भेद हैं पदार्थ हैं तब पुरुषाद्वैतकी सिद्धि कैसे हो सकेगी ? ऐसी भी शङ्का न करना चाहिए क्योंकि ये सब भी प्रतिभासमान हैं या नहीं ? यदि प्रतिभासमान हैं तब तो प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हो गए। यदि प्रतिभासमान नहीं है तो उनकी सत्ता और व्यवस्था ही नहीं है, फिर वे पुरुषाद्वैतवादी उसके बाधक कैसे बन सकेंगे ?

प्रतिभासितकी प्रतिभासमें अभिन्नताका पुरुषद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन—कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि यद्यपि वस्तु प्रतिभासमान तो है लेकिन प्रतिभाससे वह भिन्न है। याने जो समझ बन रही है वह तत्त्व अलग है और समझमें जो आ रहा है वह तत्त्व अलग है। ऐसा प्रतिभासमान होनेके कारण कोई पदार्थ प्रति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भास सामान्यके अन्तर्गत नहीं किया जा सकता। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रतिभास तो ज्ञानको कहते हैं। वह स्वयं प्रतिभासित नहीं होता है। क्योंकि अपने आपमें अपनी क्रिया क्या होगी? अपनेमें अपनी क्रिया नहीं हुआ करती है इसलिए प्रतिभास अर्थात् ज्ञान अन्य ज्ञानके द्वारा ही प्रतिभासमें आ सकता है। इसके अतिरिक्त प्रतिभासका विषयभूत जो भी पदार्थ है याने समझमें जो कुछ भी पदार्थ आ रहा है वह वस्तु भी स्वयं प्रतिभासमान नहीं है क्योंकि वह ज्ञेय है। जो ज्ञेय है वह ज्ञानके द्वारा जानने योग्य है इस कारण वस्तुको ज्ञानके द्वारा ही प्रतिभास होना सिद्ध होता, है। स्वयं कोई प्रतिभासस्वरूप नहीं है। अतएव वेदान्ती जो प्रतिभास सामान्य मात्र सिद्ध करनेके लिए स्वयं प्रतिभासमात्र मानने रूप हेतु देते हैं वह असिद्ध है और ऐसी स्थितिमें किसी भी पदार्थको प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत नहीं कह सकते हैं। और, परसे प्रतिभासमानपना मानना स्पष्ट विरुद्ध है, क्योंकि वह प्रतिभाससे बाह्य वस्तुको सिद्ध करता है। ऐसी स्थितिमें पुरुषाद्वैत खण्डित हो जाता है। तब एक अद्वैत प्रतिभासकी सिद्धि नहीं हो सकती। ऐसा कथन करने वालेके प्रति ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि उनका अपने कथनका पक्षपात ही है। यदि मध्यस्थ भावसे हो विचार करें तो अनुभव कर लेंगे कि ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान है। यदि ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान न हो याने ज्ञानस्वरूप अपना प्रतिभास न करता हो तो अन्य ज्ञानसे भी उसका प्रतिभास नहीं बन सकता। इसके अतिरिक्त और भी यह विचार करें कि जो "प्रतिभासते" यह जो क्रिया है उसका अर्थ है ज्ञान प्रतिभासित होता है। तो यहाँ प्रतिभासकी एकतासे उसकी स्वतन्त्र रूपसे प्रतीति हो रही है याने प्रतिभासता है, ऐसा कहनेमें स्पष्ट सिद्ध है कि ज्ञान स्वतन्त्र है जाननेमें समझनेमें। यदि ज्ञान स्वतन्त्रतासे अपने स्वरूपको नहीं प्रतिभासता तो वहाँ यह कहना चाहिए था कि प्रतिभास्यते अर्थात् ज्ञान प्रतिभासित होता है, लेकिन ऐसा तो कोई अनुभव नहीं करता। अनुभव यही होता है कि ज्ञान प्रतिभासित है जो दूसरे ज्ञानके द्वारा समझमें आने वाला पदार्थ हो उसमें प्रतिभासमान होता है क्योंकि जाना जा रहा है यों बोध होगा। इसलिए यदि ज्ञानको प्रतिभासित किया जाता है, यह माना जाय तो इसमें अनवस्था दोष आयगा फिर जिस ज्ञानके द्वारा यह ज्ञान प्रतिभासमान हुआ उस ज्ञान शक्तिके द्वारा यह ज्ञान प्रतिभासमान हुआ, इस तरहसे अनेक ज्ञानकी कल्पना करनी पड़ेगी। और, अनवस्था दोष आयगा। और भी विचार कीजिये! ज्ञान प्रतिभासित होता है, ऐसी जो प्रतीति हो रही है वह भ्रमात्मक प्रतीति नहीं है, इसमें कोई बाधक प्रमाण नहीं हैं।

प्रतिभासमें प्रतिभासन क्रियाके अविरोधका पुरुषाद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन—यदि कोई यह आपत्ति दे कि जब आपमें क्रियाका विरोध है इसलिए यह क्रियाका विरोध उक्त प्रतीतिमें बाधक है अर्थात् ज्ञान प्रतिभासित होता है यह बात सङ्गत नहीं बनती। तो उससे यह पूछा जा सकता है कि आपने जो क्रियाका विरोध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बताया है सो कौन सी क्रियाका विरोध है ? ज्ञप्ति क्रियाका या उत्पत्ति क्रियाका ? अर्थात् ज्ञान अपने अपने आपको नहीं जानता, इस तरह क्रियाका विरोध है ? या ज्ञान अपनेसे उत्पन्न नहीं होता, इस तरहकी उत्पत्ति क्रियाका विरोध है ? इन दोनों विकल्पोंमें प्रथम विकल्प तो ठीक नहीं, अर्थात् ज्ञान अपने आपको नहीं जानता, इस तरह मानना ठीक नहीं। अपने आपमें ज्ञानकी क्रियाका कोई विरोध नहीं है। यह बात स्पष्ट जानी जाती है कि ज्ञप्ति नाम है स्वयं प्रकाशनका याने जो स्वयं प्रकाशन स्वरूप हो उसको ज्ञप्ति कहते हैं। जैसे सूर्यका आलोक वह स्वय प्रकाश स्वरूप है। तो उसका क्या स्वयं प्रकाशनमें कोई विरोध आता है ? अथवा आलोक प्रकाशन होता है, प्रदीप प्रकाशित होता है, यह प्रतीति स्पष्ट यह सिद्ध करती है कि प्रकाशन क्रिया का स्वयंमें कोई विरोध नही है। ज्ञप्ति भी पदार्थोंके जाननेरूप प्रकाशनका ही नाम है इसलिए ज्ञप्ति क्रियाका तो अपने आपमें कोई विरोध है नहीं। अब दूसरी बात पर विचार करें कि उत्पन्न क्रियाका विरोध है इस सम्बन्धमें यह समाधान है कि उत्पन्न क्रियाको न हम ब्रह्माद्वैतवादी मानते हैं और न स्याद्वादी मानते हैं। यह बात स्पष्ट है कि विद्वान लोग ऐसा स्वीकार नहीं करते कि कोई स्वयंसे उत्पन्न होता है। जो कुछ है वह स्वयं सत् है। उत्पन्न होनेकी बात ही क्या है ? सारांश यह है कि हम यह मानते नहीं कि ज्ञान अपनेसे उत्पन्न होता है, ज्ञप्ति क्रियाकी दृष्टिसे देखें तो उसका स्वयं प्रकाश है और हम लोगोंके ज्ञानकी दृष्टिसे देखें तो हम लोगोंके ज्ञानके उत्पादक इन्द्रिय आदिक कारण हैं। तब ज्ञानमें उत्पत्ति क्रियाका विरोध बाधक नहीं कहा जा सकता। इस कारण ज्ञान अपने स्वरूपसे जाने। इसमें किसी भी प्रकारका विरोध न होगा। और, भी देखिये ! जो कोई भी धातु है उसकी जो कुछ भी अर्थरूप क्रिया है वह तो अपने आपमें प्रसिद्ध ही है। धातुके अर्थरूप क्रियाका स्वात्मामें विरोध नहीं है देखो जब क्रिया प्रयोग किया जाता है ठहरता है, विद्यमान है, होता है, तो इन धातुओंका जो अर्थ है उस क्रियाका अपने आपमें क्या विरोध है ? होता है का अर्थ होता है में समझा ही जा रहा है। यदि कोई यहाँ यह कहे कि देखिये ! ठहरता है, होता है आदिक जो भी धातुओंका प्रयोग है तो ये धातु अकर्मक है तो अकर्मक होनेसे कर्म, क्रिया उत्पन्न नहीं होती इसलिए अपनी क्रियामें स्वयं समर्थ नहीं है। इस बातका खण्डन इन उदाहरणोंको देकर न करें। जो अकर्मक धातु हैं उनकी तो स्वात्मामें क्रिया होना स्पष्ट ही है। इसी तरह प्रतिभासित होता है यह धातु भी अकर्मक है। अतएव कर्म भी, क्रिया भी नहीं बनती। तो अपने आप ही यह सिद्ध हो गया कि इसकी अर्थरूप क्रिया कर्तामें ही बन जाती है। और, यहाँ भी ऐसा ही प्रतिभास होता है, ज्ञान प्रतिभासित होता है ऐसी ही प्रतीति सभीको होती है। सारांश यह है कि इस प्रकार ठहरता है, होता है आदिक धातु अकर्मक है। अकर्मक होनेसे उनके कर्ममें क्रिया नहीं बनती। कर्तामें ही उनकी क्रिया सिद्ध हो जाती है। यह प्रयोग कि "भासित" होता है, यह धातु भी अकर्मक है। और इस कारण कर्मके क्रियाके विरोध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की बात नहीं कह सकते। मतलब यह है कि प्रभावना, क्रिया कर्तामें अपने आप ही सिद्ध हो जाती है। उक्त प्रकारसे ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान होता है। यह फल भेद सिद्ध हो गया। तब ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान सिद्ध हो गया तो बाहरके समस्त पदार्थों में भी वे सब स्वयं प्रतिभासमान हैं यह सिद्ध हो जाता है और इसी तरह अर्थात् जैसे ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान है यह सिद्ध हुआ। बाह्य पदार्थ स्वयं प्रतिभासमान हैं यह सिद्ध हुआ, इसी तरह अंतरङ्गमें जो सुख आदिक हैं वे भी स्वयं प्रतिभासमान हैं यह सिद्ध हो जाता है। देखो ! सुख प्रतिभास होता है, रूप प्रतिभास होता है, उस तरह जो इसमें प्रतिभासन क्रियाका आश्रय है सो देखो ! स्वतंत्रताके साथ प्रतिभान क्रिया का अनुभव हो रहा है। तब स्वयं प्रतिभासमान यह हेतु असिद्ध नहीं है। जिससे कि प्रतिभासाद्वैतका निराकरण किया जा सके। तथा स्वयं प्रतिभासमान होना यह हेतु विरुद्ध भी नहीं है। क्योंकि ये सभी पदार्थ परसे प्रतिभासमान नहीं होते। चूंकि प्रतिभासमान है अतः प्रतिभास सामान्यमें ही प्रविष्ट रहता है।

अन्तरङ्ग ज्ञान व वहिरङ्ग समस्त अर्थोंकी स्वयं प्रतिभासमानता व प्रतिभासान्तः प्रतिष्टताका पुरुषाद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन—इस सम्बन्धमें कोई लोग ऐसा कहते हैं कि ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान नहीं हुआ करता। क्योंकि ज्ञान अस्वसंवेद्य चीज है। ज्ञानको जाननेके लिए अन्यकी अपेक्षा होती है। ज्ञान स्वयं जाना नहीं जाता है। तो ज्ञान अन्य ज्ञानसे प्रतिभासमान हुआ करता अतएव देखो कि प्रतिभासमें तो आ रहा है। ज्ञान क्रिया स्वयं प्रतिभासमान नहीं है। तब ब्रह्माद्वैत-वादियोंका हेतु विरुद्ध हो जायगा। ऐसा परोक्ष ज्ञान मानने वाले जो भट्ट अथवा प्रभाकर कहते हैं उनकी बात सङ्गत नहीं है। क्योंकि ज्ञान प्रकाशित होता है। बाह्य वस्तु प्रकाशित होती है, इस प्रकारकी सबको प्रतीति हो रही है। फिर वे सब स्वयं प्रतिभासमान हैं इसमें किसी भी प्रकारकी आपत्ति नहीं दी जा सकती। अब इस सम्बन्धमें इस दिशामें भी विचार कर लेवें कि कोई लोग ऐसा कहते हैं कि उनमें उक्त दूषण देने वाले प्रभाकर तो यह कहते हैं कि आत्मा स्वयं प्रकाशित होता है और भट्ट यह कहते हैं कि फलज्ञान स्वयं प्रकाशित होता है। तो लो उनके आत्मामें और फल-ज्ञानमें स्वयं प्रतिभासपना तो सिद्ध है ना ? तो यह बात तो प्रसिद्ध हो गयी कि कोई चीज स्वयं प्रतिभास स्वरूप होती है। अब इसको और समझ लीजिए कि सके अतिरिक्त समस्त वस्तुओंके लिए स्वयं प्रतिभासमानपना सिद्ध हो जाता है उ‍ र विचार कर लीजिए। देखिये ! विचार कोटिमें जो पदार्थ आया हो वह स्वयं उ‍ तस्थि होता है, क्योंकि वह प्रतिभासमान है। जैसे भाट्टोंने यह माना है कि आत्मा स्वयं प्रतिभासमान है, स्वयं प्रतिभासित है और प्रभाकरोंने यह माना है कि फलज्ञान स्वयं प्रतिभासमान है, स्वयं प्रतिभासित है तो प्रतिभासपनाकी विचार कोटिमें रहने वाला ज्ञान और ज्ञेयरूप अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग वस्तु है। याने घञ्चपाद ज्ञान और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विश्वके समस्त पदार्थोंको वह विवादापन्न रख रहा है कि यह स्वयं प्रतिभासमान नहीं है तो इसपर विचार किया जा रहा है, यह विचार कोटिमें स्थित ज्ञान और ज्ञेय अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग वस्तु है। चूंकि प्रतिभासमान ही तो है विचारकोटिमें और उस प्रतिभासमानपनेमें इसको देखा जा रहा है तो स्वयं प्रतिभासित हैं सारे पदार्थ, यह अपने आप सिद्ध हो गया। यह ब्रह्माद्वैतवादी ही कह रहे हैं कि हमने जो अनुमान में प्रतिभासमानपना हेतु बताया है वह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि सारी वस्तुओंके बारेमें ये दो विकल्प बना लिये कि ये समस्त वस्तु प्रतिभासमान हैं या नहीं? यदि समग्र वस्तु प्रतिभासमान हैं तो वह प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत सिद्ध हो जाता है। और यदि कहें कि प्रतिभासमान नहीं है तो कुछ असत्से पुरुषाद्वैतकी सिद्धिमें बाधा नहीं आ सकती तो कोई साक्षात् और कोई परम्परासे इसको प्रतिभासमान मानेगा ही तो प्रतिभासमानपना हेतु स्पष्ट आदिकसे सिद्ध है। और, जब हेतु सिद्ध है तो हेतुके साथ इसका अविनाभाव बना है, ऐसा साध्य भी सिद्ध हो जाता है। यहाँ साध्य है पुरुषाद्वैत। इसतरह निर्दोषरूपसे पुरुषाद्वैतकी सिद्धि हो जाती है।

पुरुषाद्वैतवादियों द्वारा ज्ञानाद्वैतका निराकरण करके अपने पक्षकी स्थापना—जब पुरुषाद्वैत सिद्ध हो गया तो सम्वेदनाद्वैतका निराकरण हो गया, याने जो लोग ज्ञानपरमाणु ही मानते हैं उनके मंतव्यका निराकरण हो जाता है। देखिये! कार्य कारण, ग्राह्य ग्राहक वाच्य वाचक, साध्य साधक, बाध्य बाधक और विशेषण विशेष्यभावका जब निराकरण कर दिया सम्वेदनाद्वैतवादियोंने कि मात्रज्ञान परमाणु ही है। दूसरा कोई तत्त्व नहीं है तो लो जब ग्राह्य ग्राहक आदिकका निराकरण किया है तो सम्वेदनाद्वैतकी व्यवस्था नहीं बन सकती याने जब एक सम्वेदन अद्वैत ही माना जा रहा तो वहाँ कार्य कारणभाव नहीं बन सकता। ग्राह्य ग्राहक भाव नहीं बन सकता। तो अद्वैतकी भी सिद्धि कैसे करेंगे? ग्राह्य ग्राहक भाव बन जाय ज्ञानका ग्रहण किया, अमुक पदार्थ जाननेमें आया तो द्वैतका प्रसङ्ग होता है और कोई कहे कि हम नहीं मानते ग्राह्य ग्राहक भाव तो सम्वेदनाद्वैतकी सिद्धि कैसे करेंगे? एक ज्ञानपरमाणु ही तत्त्व है। इस सिद्धान्तको कैसे सिद्ध किया जा सकेगा? इसकी सिद्धि के लिए किसीको साधक मानना होगा और अपना अद्वैत तत्त्व साध्य मानना होगा, दोष सम्वेदनाद्वैतमें आता है, लेकिन ब्रह्माद्वैतवादके सिद्धान्तमें यह दोष नहीं है, क्योंकि कार्य कारणभाव आदिक सभी बातें हम मानते हैं किन्तु वे सब प्रतिभासमान हैं, अतएव प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत आ जाता है। तो ब्रह्माद्वैतके सिद्धान्तमें ग्राह्य ग्राहक भाव आदिक माननेपर भी प्रतिभास सामान्यकी मान्यतामें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं आता। क्योंकि वे सब प्रतिभासमान है तो प्रतिभास सामान्य में अन्तर्गत है। यदि प्रतिभासमान नहीं है तो उनकी सत्ता ही नहीं है। उनकी कल्पनामें भी व्यवहार नहीं बन सकता। उस हालतमें वे किसीके बाधक कैसे बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकेंगे ? दूसरी बात यह है कि सम्वेदनाद्वैतमें ज्ञानपरमाणु एक क्षण ठहरने वाला माना गया है। तो जो एक क्षण भर सत्ता रखता हो वह कार्य कुछ नहीं कर सकता वह अपने क्षणमें अपनी उत्पत्ति भर कर सकेगा। तो जब वह ज्ञानाणु कुछ कार्य नहीं कर सकता तो वह वस्तु ही नहीं है क्योंकि अर्थक्रिया होवे तब वस्तु कहलायी जा सकती है। और, यदि यह मानेंगे कि हाँ ज्ञान परमाणु कार्य करता है तो कार्य कारणभाव सिद्ध हो जाता है तो इस तरह वह ज्ञानाणु यदि कारण वाला है तो कार्य कारण सिद्ध हो गया। यदि कारण रहित है तो ज्ञानाणु नित्य हो गया, क्यों कि जो कारणरहित हो और विद्यमान हो वह नित्य कहलायगा इस तरह प्रतिभास सामान्यरूप पुरुषाद्वैतकी तो सिद्धि बन जायगी मगर ज्ञानपरिणमनकी सिद्धि नहीं बन सकती।

ब्रह्माद्वैतवादियों द्वारा योगाचारोंके प्रति ग्राह्यग्राहकभाव संवेदनाद्वैत में भेद आनेका प्रसङ्ग—ब्रह्माद्वैतवादी ज्ञानाद्वैतवादीसे पूछ रहे हैं कि भला वे यह बतलायें कि क्षणिक सम्वेदनमें ग्राह्यग्राहकपनेका द्वैत नहीं है याने ग्राह्यग्राहका अभाव है, यह बात किसी प्रमाणसे गृहीत होती है अथवा नहीं ? याने ज्ञानाद्वैतमें कुछ अंश ग्राह्य हैं, कुछ अंश ग्राहक हैं इस प्रकारका जो द्वैतभाव नहीं है, इसकी सिद्धि क्या किसी प्रमाणसे है अथवा नहीं है। यदि ग्राह्य ग्राहकका अभाव किसी प्रमाणसे ग्रहण में नहीं आ रहा तब फिर ग्राह्यग्राहक भावका निराकरण कैसे किया जा सकता ? ग्राह्यग्राहक नहीं है यह बात जब प्रमाणसे सिद्ध हुई तब ही तो ग्राह्यग्राहकका निराकरण होगा कि मात्र अद्वैत ही सम्वेदन मात्र ही तत्त्व है। यदि कहो कि क्षणिक सम्वेदनमें ग्राह्यग्राहकपनेका अभाव प्रमाणसे गृहीत नहीं होता। तो ग्राह्यग्राहकके अभावकी सिद्धि ही कैसे कर सकेंगे ? यह तो कह नहीं सकते कि स्वरूप सम्वेदनसे ही ग्राह्यग्राहकका अभाव सिद्ध हो जाता है, क्योंकि यदि मात्र अपने स्वरूपके अनुभव के बलसे ग्राह्यग्राहकका द्वैत मिट जाय याने यह जानने वाला है, यह जाननेमें आया, इस प्रकारका द्वैत मिट जाय तो लो जब स्वरूप सम्वेदनमें ग्राह्यग्राहकका अभाव ग्रहण कर लिया तो स्वरूप सम्वेदनमें द्वैतमें स्वरूप सम्वेदन तो ग्राहक बन गया क्योंकि उसने ग्राह्यग्राहकका अभाव जाना। तो ज्ञायक तो बन गया स्वरूप सम्वेदन और ज्ञेय अथवा ग्राहक बन गया ग्राह्य ग्राहकका अभाव तो लो इस तरह ग्राह्यग्राहक भाव तो सिद्ध हो ही गया। फिर अद्वैत तत्त्व कहाँ रहा ? कुछ भी ग्राह्य बने, ग्राह्य ग्राहकका अभाव भी ग्राह्य बने, तो भी कुछ ग्राह्य तो कहलाया। और, उसका ग्रहण करने वाला स्वरूप सम्वेदन हुआ। तो यों कोई अंश ग्राह्य है, कोई ग्राहक है, ऐसा द्वैतपना आ गया। फिर सम्वेदनाद्वैत तो न रहा।

ज्ञानाद्वैतका ब्रह्माद्वैतके रूपमें कहनेका ब्रह्माद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन—इस प्रसङ्गमें योगाचार कहते हैं कि देखिये ! हमारा सिद्धान्त तो यह है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बुद्धिसे अनुभव किए जाने वाली कोई दूसरी चीज है ही नहीं याने बुद्धिके अतिरिक्त अन्य कोई अनुभव होता ही नहीं है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि बुद्धि ही स्वयं प्रतिभासमान होती है। जैसे कि प्रमाण वार्तिकमें कहा है कि "नान्योऽनुभाव्योबुद्धयाऽस्ति तस्य नानुभवोऽपरः। ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात्स्वयं सैव प्रकाशते।" याने बुद्धिके द्वारा अनुमान अन्य कुछ चीज नहीं है। वही है अर्थात् ग्राह्यग्राहकपनेकी असत्ता होनेसे स्वयं विधि ही प्रकाशमान हो रही है फिर वह ही मात्र तत्त्व है, इसीको सम्वेदनाद्वैत कहते हैं, ऐसा सिद्धान्तका वचन है इस कारण विधिसे न तो कोई ग्राह्य है और न किसीकी विधि ग्राहक है। तत्त्व सम्वेदन स्वरूप है, उस स्वरूपमें ही ग्राह्यग्राहक भाव का अभाव है। स्वरूपका अपने आप ही ज्ञान हुआ करता है। यह भी हमारे सिद्धान्त का कानून है और इन कानूनोंको जो हम कह रहे हैं यह प्रतिपादन और कल्पनासे है मगर इस कल्पनामें जो बात ग्रहणमें आयी है उस परमार्थकी बातको सिद्ध कर रहे हैं। वास्तवमें तो विधि स्वयं ही प्रकाशित होती है, उसमें इतना कहना कि विधि स्वरूपसे प्रकाशमान है यह भी एक कल्पना है। ज्ञान तो स्वयं एक ज्योतिर्मय तत्त्व है और वह भी मात्र सारे विश्वमें तत्त्व है। तो यह सिद्धान्त व्यवस्थित हुआ कि विधि स्वयं प्रकाशित होती है किन्तु वह स्वरूपको ग्रहण नहीं करती। स्वरूपको ग्रहण करनेकी आवश्यकता क्या ? जब स्वयं प्रकाशमान है हाँ स्वरूपतः अभिन्न जो ग्राह्य ग्राहकका अभाव है मायने जो अद्वैत ना है। कोई जाननेमें आया, कोई जानने वाला है, अद्वैतवादका भी अभाव है, उसको यहाँ सम्वेदन स्वरूपमे जान रहा है। उक्त सिद्धान्तके समाधानमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि बहुत ठीक कहा। आ का यह अभिप्राय हमें कोई विरुद्ध न पड़ेगा, क्योंकि स्वयं प्रकाशमान सम्वेदनको ही तो हम परम पुरुष ब्रह्म कहा करते हैं। वहाँ यह बात स्पष्ट है कि वह सम्वेदन जिसको कि क्षणिक ज्ञानवादी स्वरूपतः प्रकाशमान कह रहे हैं सो है स्वरूपतः प्रकाशमान, पर वह पूर्व और उत्तर कालसे विच्छिन्न नहीं है याने वह ज्ञानपुञ्ज अनादि अनन्त है। पूर्वकालमें भी रहा आया, उत्तर कालमें भी रहा आयगा। ऐसा वह ज्ञानपुञ्ज परम पुरुष सम्वेदन स्वरूप वह नित्य है और साथ ही वह बाह्य पदार्थोंसे भी अलग नहीं है, किन्तु अन्तः बाह्य जितने भी पदार्थ प्रतिभासमान होते हैं वे स्वयं प्रतिभासके अन्तर्गत हैं, और वे नित्य व्यापक हैं।

संवेदनकी नित्यता सिद्ध करके प्रश्नोत्तर द्वारा ब्रह्माद्वैतवादियों द्वारा पुरुषाद्वैतका समर्थन—अब सम्वेदन स्वरूपकी नित्यताकी बात सुनकर योगाचार कहते हैं कि सम्वेदनके पूर्वक्षण और उत्तरक्षणका अभाव है याने सम्वेदन द्वारा न पूर्वक्षणका ग्रहण होता है न उत्तरक्षणका ग्रहण होता है। वह तो एक समयवर्ती है। जिस समयमें जो ज्ञान तत्त्व उत्पन्न हुआ बस उसका वही समय है। उससे पहिले भी नहीं है, उसके बाद भी नहीं है। ... सम्वेदन अद्वैत है। इसके समा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धानमें कहते हैं कि इस तरह तो अर्थात् जैसे सम्वेदनमें पूर्वक्षण और उत्तरक्षणका ग्रहण नहीं होता अतएव पूर्व और उत्तर क्षणका अभाव बतला रहे हो उस सम्वेदनको क्षणस्थायी बतला रहे हो तो पूर्व और उत्तर क्षणोंको इस तरह अभाव बतानेपर हम भी यह कह सकते हैं कि सम्वेदनका अन्य सम्वेदनसे ग्रहण नहीं होता इस कारण स्वसम्वेदनका भी अभाव हो जायगा। योगाचार सम्वेदनाद्वैतको स्वयं प्रकाशमान मानते हैं, मगर स्वयं प्रकाशमानताका भी ग्रहण तो नहीं हो रहा है। अन्य सम्वेदनसे तो उस सम्वेदनका भी अभाव हो बैठेगा। यदि योगाचार यह कहें कि सम्वेदन तो स्वयं प्रकाशमान है उसे अन्य सम्वेदनसे जाननेकी क्या जरूरत है? यों स्वयं प्रकाशमान होनेसे स्वसम्वेदनका अभाव नहीं कहा जा सकता। तो इसी तरह सुनो—जैसे स्वसम्वेदन स्वयं प्रकाशमान है अतएव सम्वेदनका अभाव नहीं है इसी तरह पूर्व क्षणवर्ती उत्तर क्षणवर्ती जो स्वसम्वेदन हैं उनका या अन्य संतानमें पाये जाने वाले ज्ञानका और नील पट आदिक बाह्य पदार्थोंका भी अभाव कैसे सिद्ध किया जायगा? वे भी स्वयं प्रकाशमान हैं। तब स्वयं प्रकाशमान होनेसे स्वसम्वेदनमात्र तत्त्वकी सिद्धि कर रहे हो तो यह सब भी तो स्वयं प्रतिभासमें आ रहा है। प्रतिभासमान है सो सब व्यवस्थित है। वही प्रतिभास सामान्य परम पुरुष कहलाता है और वह पूर्वक्षण उत्तर क्षणमें रहेगा। यहाँ योगाचार यदि यह पूछें कि पूर्वक्षणवर्ती और उत्तर क्षणवर्ती सम्वेदन स्वयं प्रकाशमान है या अन्य संतानमें रहने वाले ज्ञान याने जीव और नील पट आदिक बाह्य पदार्थ ये स्वयं प्रकाशमान हैं यह कैसे जाना जाता है? तो अच्छा योगाचार यह बतायें कि ये सब बातें स्वयं प्रकाशमान हैं यह भी कैसे सिद्ध किया जायगा? यदि योगाचार यह कहें कि स्वसम्वेदनका स्वरूप स्वयं प्रकाशमान है इतने मात्रसे यह सिद्ध हो जायगा कि बाह्य पदार्थ और पूर्वक्षणवर्ती उत्तर क्षणवर्ती सम्वेदन अप्रकाशमान है। जब प्रकाशमान केवल स्वसम्वेदन हो रहा है तो उसके मायने यह हो जायगा कि पूर्वक्षणवर्ती ज्ञान उत्तरक्षणवर्ती ज्ञान अप्रकाशमान है तो इसके उत्तर में सुनो कि यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि पूर्वक्षणवर्ती उत्तरक्षणवर्ती ज्ञानप्रकाश है, इस तरह स्वसम्वेदन अप्रकाशमान क्यों न हो जायगा? यहाँ योगाचार कहते हैं कि यदि स्वसम्वेदन स्वयं प्रकाशमान हो तो आप उसके प्रकाशपनेका अभाव सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि जो कुछ भी निषेध किया जाता है वह विधिपूर्वक होता है। तो जो सब जगह सब कालमें कभी भी सत् नहीं है उसका निषेध तो नहीं किया जा सकता।

नित्य व्यापक एक ज्ञानाद्वैतको ब्रह्मस्वरूप माननेका ब्रह्माद्वैतवादियों द्वारा प्रतिपादन—यहाँ दो सिद्धान्तोंका परस्पर विरोध चल रहा है। ब्रह्माद्वैतवादी तो यह मानते हैं कि सारा विश्व एक ऐसा ज्ञानस्वरूप है कि जो नित्य है और सर्व व्यापक है याने ज्ञानपुञ्जको छोड़कर जगतमें और कोई तत्त्व नहीं है। लेकिन वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानपुञ्ज नित्य है और व्यापक है। अनादिसे अनन्त काल तक रहने वाला है और एक है और सर्वदेशमें व्यापक है, उस ही ज्ञानपुञ्जको ब्रह्म अथवा परम पुरुष कहते हैं और ज्ञानाद्वैतवादी यह कहते हैं कि ज्ञान तो तत्त्व अवश्य है मगर वह पुञ्जरूप नहीं है, किन्तु ज्ञान परमाणुरूप है और वह एक क्षण रहने वाला है। सब देशमें नहीं रहता है। भिन्न–भिन्न देशमें भिन्न–भिन्न ज्ञान परमाणु रहता है। तो इन दोनोंके विवादके प्रसङ्गमें योगाचार यह कह रहे हैं कि ज्ञानके पूर्व समय वाले ज्ञान और उत्तर समय वाला ज्ञान ये प्रकाशमान नहीं हैं इसलिए उसे नित्य क्यों कहा जा रहा? और पूर्व पूर्व समयका ज्ञान और उत्तर समयका ज्ञान तो अप्रकाशमान है। हाँ, स्वसंवेदन याने जिस समय जो ज्ञान होता है उस समय उस ज्ञानकी जानकारी चल रही है। बस उस एक समयमें स्वसम्वेदन प्रतिभासमान है। स्वसम्वेदन स्वयं प्रकाशमान है। यदि स्वसंवेदन स्वयं प्रकाशमान न हो जाय तो फिर स्वसम्वेवदनमें प्रतिभासमान का अभाव भी सिद्ध नहीं कर सकते। जो चीज नहीं है उसका निषेध कैसे किया जा सकता है? इसके उत्तरमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि फिर तो यह भी कह सकते हैं कि स्वसम्वेदन जो अनेक क्षण वाला है उससे भिन्न याने पूर्व समयमें रहने वाला ज्ञान और उत्तर समयमें रहने वाला ज्ञान वे दोनों यदि प्रकाशमान नहीं हैं तो उनको भी प्रकाशमानपनेका अभाव कैसे कह सकते हो? इससे मानना चाहिए कि ज्ञानपुञ्ज ही एक तत्त्व है और वह अनादि अनन्त है, सर्वदेशमें व्यापक है, एक ही परम पुरुष परम ब्रह्म है। योगाचार कहते हैं कि मालूम तो होता है ऐसा कि ज्ञान पहिले भी था अब भी है और आगे भी रहेगा, मगर पहिले ज्ञान था आगे ज्ञान होगा यह विकल्प उस समय हो रहा है, स्वसम्वेदनसे नहीं जाना जा रहा है इसलिए स्वसम्वेदनके द्वारा पूर्व क्षणके और उत्तर क्षणके ज्ञानका अभाव कह रहे हैं। इसके उत्तरमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि यह कथन सङ्गत नहीं, क्योंकि विकल्पके द्वारा पूर्वक्षणका ज्ञान और उत्तर क्षणका ज्ञान प्रतिभासमें आया है इसीसे उनको स्वयं प्रकाशमान कहा जा रहा है। जो जो विकल्पके द्वारा समझमें आता है वह वह स्वयं प्रकाशमान होता है। जिस विकल्पका स्वरूप जिस विकल्पके द्वारा हमने कोई नई चीज समझा तो वह विकल्प खुद हमको विदित है। स्वयं प्रकाशमान है ऐसे ही विकल्पका जो आकार आया है वह स्वयं प्रकाशमान है। विकल्प द्वारा प्रतिभासित हो रहे ज्ञानके पूर्वक्षण और उत्तरक्षण याने ज्ञानकी धारा पहिले भी थी, आगे भी रहेगी। यह स्वयं प्रकाश में आ रहा है और ये बाह्य पदार्थ भी विकल्प द्वारा जाननेमें आ रहे हैं। भींट चौकी आदिक जो जो कुछ भी दिखते हैं वे सब विकल्प द्वारा प्रतिभासित हो रहे हैं इस कारण वे स्वयं प्रतिभासमान हैं। इस तरह पूर्वक्षणका ज्ञान उत्तरक्षणका ज्ञान वर्तमान समयका ज्ञान ये सब एक ज्ञानपुञ्जमें धारा बन रहे हैं। वही ज्ञानपुञ्ज सदा शाश्वत रहने वाला है यह सिद्ध हो जाता है।

सब प्रतिभासोंकी प्रतिभासान्तः प्रविष्टताके कथनका ब्रह्माद्वैतवादिय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्वारा उपसंहार--यदि इस प्रसङ्गमें योगाचार यह कहे कि विकल्पसे तो गधेके सींग, मनुष्यके सींग, आकाशके फूल ये भी विकल्पसे आते हैं तो क्या ये सत्य हो गए ? और जो नष्ट हो गए और जो उत्पन्न हो रहे ऐसे पदार्थ भी विकल्पमें आते हैं, वे तो सत् नहीं हैं। सो आपका यह हेतु व्यभिचरित हो जाता है। सो ऐसा कहना सङ्गत नहीं है, क्योंकि जो जो कुछ भी प्रतिभासमें आ रहा हो वह प्रतिभास सामान्यमें समाया हुआ है। वेदान्तवादियोंका यह कहना है कि जगतमें केवल एक ज्ञानप्रकाश ज्ञानज्योति ही तत्त्व है और जो प्रतिभासमें आ रहे हैं ये सब प्रतिभास स्वरूप हैं। तो जो कुछ भी प्रतिभासमें आया वे सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत हैं अतएव सभी पदार्थ स्वयं प्रकाशमान होते हैं यह सिद्ध हो गया, अगर पदार्थ स्वयं प्रकाशमान न हो तो अनेकों ज्ञान किए जायें तो भी उनका कभी ज्ञान हो ही नहीं सकेगा। समस्त पदार्थ स्वयं प्रतिभासमान हैं अतएव विकल्पके द्वारा भी वे ज्ञात होते हैं। ज्ञानमें जाना जाता है। अब यहाँ इस बातपर आश्चर्य हो रहा है देखो ! ये क्षणिकवादी योगाचार यह तो स्वीकार कर रहे हैं कि दूर देशके पदार्थ विकल्पमें आते हैं। जैसे यहाँसे हजारों कोश दूर पर रहने वाला कोई नगर हमारे ज्ञानमें आ रहा है अथवा दूर कालके पदार्थ पहिले हो गए राम रावण आदिक वे वे विकल्पमें आ रहे हैं या परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ ये भी विकल्पमें आ रहे हैं तो विकल्प बुद्धिमें ये सब स्वयं प्रतिभासमान हो रहे हैं। ऐसा तो स्वीकार करते हैं पर ऐसा नहीं कहते कि ये सारे पदार्थ स्वयं प्रकाशमान हैं। यदि सब पदार्थोंको स्वयं प्रकाशमान मान लिया जाय तो सबके सब प्रतिभास सामान्यमें ही लीन होंगे और उससे परम पुरुष ब्रह्मकी ही सिद्धि होगी, किंतु एक क्षणवर्ती ज्ञान परमाणुकी सिद्धि न होगी।

चित्राद्वैतवादका निराकरण करके ब्रह्माद्वैतकी ब्रह्माद्वैतवादियों द्वारा स्थापना--अब इस प्रसङ्गमें जब कि ये दो विवाद चल रहे हैं योगाचार तो यह मान रहे हैं कि सिर्फ एक परमाणु बराबर ही ज्ञान है उसे ज्ञान परमाणु कहते हैं, और वह एक क्षण ठहरता है, और वदान्ती यह कह रहे हैं कि ज्ञानपुञ्ज तत्त्व है जो कि सर्वज्ञ व्यापक है, तो इन दोनोंके बीच द्वैतवादी कहते हैं कि ठीक है, ज्ञान परमाणु नहीं है। निरंश सम्वेदन अद्वैत नहीं है, किन्तु वह चित्राद्वैत है याने ज्ञानमें जब हजारों पदार्थ प्रतिभासमें आ रहे, जाननेमें आ रहे तो यह ज्ञान तो हजाररूप बन गया है। निरंश नहीं है। और इससे चित्राद्वैतकी ही सिद्धि होती है। देखो ! तीन कालमें और तीन लोकमें जितने भी पदार्थ हैं उनके जितने भी आकार हैं उनके इस ज्ञानमें प्रतिभास हो रहा है। प्रतिभास होकर भी यह ज्ञान एक ही है, इसे कहते हैं चित्राद्वैत। ज्ञान तो है और वह एक है, मगर चित्र विचित्र है, नानारूप हो रहा है। तो वह नानारूप असक्य विवेचन है याने एक ज्ञानमें जैसे १० रङ्ग एक साथ प्रतिभासमें आ रहे हैं तो हम इस ज्ञानमें यह तो अलग नहीं कर सकते कि यह तो पीलेका ज्ञान है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह नीलेका ज्ञान है। एक ज्ञानमें एक ही जगह जब सैकड़ों पदार्थ प्रतिभासमें आ रहे हैं तो हम उसमें पदार्थोंके नातेसे हम एक एक ज्ञान तो नहीं बता सकते कि यह अमुक का ज्ञान है यह अमुकका ज्ञान है। एक ही समयमें एक ही ज्ञानमें ५० पदार्थ प्रतिभास में आये हुए हैं तो वे सब प्रतिभास अशक्य विवेचन हैं, उनका न्यारापन नहीं कर सकते इसलिए ज्ञान तो एक है मगर वह है नाना स्वरूप रूप, चित्र विचित्र है। तो इस तरह ज्ञान एक है और वह नाना पदार्थोंका प्रतिभास करने वाला है। ऐसा चित्र स्वरूप है ऐसे चित्राद्वैतवादीके सिद्धान्त रखे जानेपर वेदान्ती यह कहते हैं कि तुम भी ठीक कह रहे हो कि ज्ञान एक है और वे बाह्य जितने पदार्थ हैं तीन लोक तीन काल के सारे पदार्थोंका ही आकार उस ज्ञानमें आया है और ऐसा माननेसे परम ब्रह्मकी सिद्धि होती है याने वह परम पुरुष वह ज्ञानपुञ्ज केवल एक है नित्य है, सर्वव्यापक है और सर्वजगतरूप है, क्योंकि जो जो कुछ भी जाननेमें आया है वह सब प्रतिभास स्वरूप है। समस्त देशोंमें, समस्त समयोंमें और सर्व आकारोंमें व्याप्त एक ज्ञान सामान्य ही है याने जितने ज्ञान विशेष हैं— चौकीका ज्ञान किया तो वह ज्ञानविशेष कहलाया, चटाईका ज्ञान किया तो वह ज्ञानविशेष कहलाया, लेकिन उन सब ज्ञान-विशेषोंमें ज्ञान सामान्य बराबर बना हुआ है। तो ठीक है। मान लीजिए कि ज्ञान एक है और वह तीन काल तीन लोकके समस्त पदार्थोंको जानता है और उसीका नाम है परमब्रह्म। उससे कहीं चित्राद्वैतकी सिद्धि नहीं की जा सकती, क्योंकि अगर चित्राद्वैतको सिद्ध करेंगे तो वहाँ कार्य कारणरूप बनेगा। याने वह चित्र विचित्र जो विधि हुई है वह विधि कारण है। और, उसमें जो प्रकाश हुआ है वह कार्य है। तो इस तरह दो चित्र विधियोंको यदि स्वीकार न किया जायगा तो मतलब नित्य बन जायगा। अगर वहाँ कार्यकारणभाव नहीं है इस भावको तो जाना और यह जाननेमें आया, इस तरहका कार्यकारण भाव नहीं है तो वह नित्य बन जायगा तो उसे चित्रा-द्वैत नहीं कहो, किन्तु ब्रह्माद्वैत कहो। इस तरह जैसे सम्वेदनाद्वैत, एक ज्ञान परमाणु एक क्षणमें ही रहता है, यह सिद्धान्त ठीक नहीं है, वैसे ही एक ज्ञान समस्त चित्र पदार्थोंका प्रतिभास करता है और वह भी एक क्षणमें ही रहता है, यह भी सिद्ध नहीं होता है। सिद्ध यह होता है कि ज्ञानपुञ्ज और वह तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंका प्रतिभास करता है और वह एक है, नित्य है, सर्वव्यापक है।

शून्याद्वैतवादका निराकरण करके पुरुषाद्वैतवादियों द्वारा ब्रह्माद्वैतका समर्थन—क्षणिकवादियोंमें जो एक शून्याद्वैतवादी है, जैसे कि इन सब झगड़ोंको सुनकर कोई यह कहेगा कि क्यों झगड़ते हो? तत्त्व यह है कि दुनियामें कुछ है ही नहीं। केवल ख्याल ही ख्याल है। कल्पनासे अपने अपने मत बताये जारहे हैं। तो यों सर्वथा शून्य तत्त्व भी व्यवस्थित नहीं है। यदि शून्य अनुभवमें आये तो वह भी परम ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। कुछ भी ज्ञानमें आया बस, वह ही परम ब्रह्म है। तो उसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जितने भी आक्षेप प्रतिक्षेप किए जायें उन सबसे परम ब्रह्मकी सिद्धि होती है इसलिए कहते हैं कि सुगत वास्तवमें अथवा कल्पनासे भी सर्वज्ञ नहीं है और वह मोक्षमार्गका प्रतिपादक नहीं है। केवल यह परम पुरुष परम ब्रह्म ही विश्व तत्त्वका ज्ञाता है और मोक्षमार्गका प्रणेता है, यह बात उक्त न्यायसे अपने आप सिद्ध हो जाती है। जब न ज्ञान परमाणु रहा, न चित्राद्वैत रहा, न शून्याद्वैत रहा तो अनुभवमें यह बात आयी कि जगतमें केवल एक ज्ञान सामान्य ही तत्त्व है। लोग भी ऐसा कहते हैं। यदि स्वयं के ज्ञानमें कोई विकल्प हो या दुःख हो तो वह कहता है कि सारा जगत दुःखी है। ज्ञानमें यदि सुख हो तो वह सोचता है कि सारा जगत सुखी है। वह उसका ज्ञान ही इस प्रकारका बना। ज्ञान ही एक मात्र तत्त्व है। बाह्य पदार्थ जो तत्त्व माने जाते हैं वे वास्तवमें ज्ञानस्वरूप ही हैं, परम ब्रह्म ही है। चौकी आदिक ये कोई अलगसे तत्त्व नहीं हैं। जैसे स्वप्नमें जो कुछ ज्ञान होता है तो वह सब ज्ञान स्वरूप ही तो है, चीज तो सामने नहीं है। स्वप्न आ जाय कि सामने शेर खड़ा है, पर्वत खड़ा है तो वह ज्ञान ही ज्ञान तो है, वहाँ शेर और पर्वत आदिक कोई चीज तो नहीं है। इसी तरह यहाँ भी जितने जो कुछ भी पदार्थ प्रतिभासमें आ रहे हैं वे समस्त ज्ञान ही ज्ञान हैं, ज्ञान को छोड़कर अन्य अन्य कुछ नही है और वह है ज्ञान व्यापक सदा रहने वाला। ऐसा एक ब्रह्माद्वैत ही तत्त्व है, लेकिन उसकी तरङ्गोंको देखते है। अगर उसे नहीं देख पाते तो जो इन तरङ्गोंकी उपेक्षा करके उस ब्रह्मस्वरूपको ही देखने चलेंगे उनको परम पुरुषकी प्राप्ति होगी और संसारके झंझट उनके सदाके लिए बिदा हो जायेंगे। इस तरह इस प्रकरणमें यह सिद्ध किया है कि परम ब्रह्म ही तत्त्व है, वही मोक्षमार्गका प्रणेता है, वही आप्त है और वही कर्मभूभृतका भेदने वाला है और वही समस्त तत्त्वोंका ज्ञाता है।

प्रतिभास विशेषकी पारमार्थिकता होनेसे पुरुषाद्वैतैकान्तकी असिद्धि बताते हुए उक्त आरेकाओंका समाधान—अब पुरुषाद्वैतके सम्बन्धमें समाधान किया जा रहा है कि अद्वैतका एकान्त जैसा कि वर्णन किया जाता है वह विचार करनेपर बनता नहीं है। अभी अद्वैत सिद्धान्तमें प्रतिभास सामान्य चैतन्यरूप परम ब्रह्मकी पारमार्थिकता माना है जो उसमें यह युक्ति दी है कि सदाकाल जो आकारका भेद होनेपर भी प्रतिभास सामान्यका कहीं भी अभाव नहीं होता इस कारण वह एक और व्यापक नित्य है। हाँ उसके प्रतिभास विशेषोंका अवश्य व्यभिचार है अर्थात् अभाव है। जो प्रतिभास विशेष है वह किसी जगह है किसी जगह नहीं है। किसी समय है, किसी समय नहीं है, कोई आकार लिए हुए है तो अन्य आकार नहीं है इस तरह प्रतिभास विशेषोंका तो सदा सर्वत्र अभाव है, किन्तु प्रतिभास सामान्यका कभी भी अभाव नहीं है। अतः वह पुरुषाद्वैत ही पारमार्थिक है। इस संकल्पके विषयमें शङ्काकार जरा यह बतलावें कि प्रतिभास सामान्यको तो पारमार्थिक बताया और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिभास विशेषको पारमार्थिक नहीं कहा तो यह बतलायें जरा कि जो वह प्रतिभास सामान्य है तो क्या समस्त प्रतिभास विशेषोंसे रहित है अथवा वहाँ सत् है ? यह तो सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि प्रतिभास सामान्य प्रतिभास विशेषोंसे रहित है। क्योंकि जहाँ कोई भी प्रतिभास विशेष न हो याने समस्त प्रतिभासोंसे रहित हो ऐसा प्रतिभास सामान्य अनुभवमें नहीं आता । याने कोई ज्ञानकी मुद्रा न हो आकार न हो और कहें कि ज्ञान सामान्य है तो प्रतिभास विशेषोंसे रहित ज्ञान सामान्य कुछ नहीं हो सकता । हाँ प्रतिभास विशेषसे सहित ही प्रतिभास सामान्यका अनुभव हुआ करता है । कहीं प्रतिभास विशेषका अभाव है तो रहो दूसरी जगह प्रतिभास विशेषका सद्-भाव है । किसी कालमें किसी प्रतिभास विशेषका अभाव है तो रहो, अन्य समयमें कोई प्रतिभास विशेष अवश्य हैं । इसी प्रकार किसी आकार विशेषसे प्रतिभास विशेष का अभाव हो फिर भी किसी न किसी अन्य दूसरे आकारसे तो प्रतिभास विशेष मिलेगा ही । तो इससे सारांश यह निकला कि प्रतिभास सामान्यमें जो प्रतिभास विशेष है वह विशेष चाहे देश विशेष हो, काल विशेष हो, आकाश विशेष हो उनकी अपेक्षासे ही तो वह प्रतिभास विशेष है । तो वह जब प्रतिभास विशेष है तब उनका अभाव कहाँ है ? इस तरह प्रतिभास विशेषमें भी पारमार्थिकपना सिद्ध होता हैं इस विषयमें अनुमान प्रयोग बनाया जा सकता है कि यह प्रतिभास विशेष पारमार्थिक है । जैसे रूपको यह प्रतिभास नित्य है उस रूपसे यह पारमार्थिक है, क्योंकि वह प्रतिभास विशेष कुछ रूपसे अव्यभिचारी है । जो जिस रूपसे अव्यभिचारी है वह उसी रूपसे पारमार्थिक है । जैसे प्रतिभास सामान्य प्रतिभासमानरूपसे ही अव्यभिचारी है विशेष रूपसे तो न तो प्रतिभास सामान्य जब प्रतिभासमानरूपसे अव्यभिचारी है तो वह प्रतिभासमानरूपसे ही पारमार्थिक है, इसी प्रकार यहाँ भी लगाइये कि यह प्रतिभास विशेष अनियत देश, अनियतकाल और अनियत आकाररूपसे अव्यभिचारी है याने उनका उस समय जो आकार है उससे है, अन्यसे नहीं है तो यों अपने आपके स्वरूपसे अव्यभिचारी है प्रतिभास विशेष, इस कारण प्रतिभास विशेष भी अपने स्वरूपसे पारमार्थिक है । यों प्रतिभास सामान्यकी तरह प्रतिभास विशेष भी पारमार्थिक याने वस्तु सिद्ध हो जाता है । तब यह कहना कि केवल प्रतिभास सामान्यका ही अद्वैत है अन्य कुछ नहीं हैं, यह बात घटित नहीं होती ।

प्रतिभास विशेषोंकी सिद्धि—बिल्कुल स्पष्ट अनुभवमें आता है कि जो जिस देशकी अपेक्षा प्रतिभास विशेष है वह उस देशसे व्यभिचारी नहीं होता । वह वहाँ है ही । यदि जो जिस देशकी अपेक्षासे है वह उससे व्यभिचारी बन जाय तो उसे फिर भ्रान्त कैसे कहा जाना चाहिए । जैसे शाखाके क्षेत्रसे होने वाला चन्द्रका प्रतिभास होता ही तो है प्रतिभास विशेष इसी प्रकार जो जिस कालका प्रतिभास विशेष है याने जिस समयमें जो प्रतिभास विशेष बना वह उस कालका व्यभिचारी नहीं है, क्यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि जो जिस कालका प्रतिभास विशेष है वह उसका ही व्यभिचारी बन जाय तो वह असत्य कहलायगा मगर है तो यह जैसे रात्रिमें किसीको स्वप्न आया कि इस समय दोपहरका बड़ा तेज घाम है तो ऐसा स्वप्न प्रतिभास उस रूपसे तो बन रहा है इसी तरह जो जिस आकारका प्रतिभास विशेष है वह उस आकारका विसम्वाद करने वाला नहीं है। जो उस आकारका विसम्वादी हो उसे तो मिथ्याज्ञान कहा गया है। जैसे पीलिया रोग वालेको याने जिसके आँखमें पीलिया रोग हो गया है ऐसे पुरुषको सफेद वस्तुमें पीले आकार रूपसे प्रतिभास विशेष होता है तो ये सब हैं ना इस कारण देश काल और आकारसे जो व्यभिचारी बने ऐसे मिथ्या प्रतिभासोंमें समान इन प्रतिभासोंको नहीं समझा जा सकता है जो कि सचमुच रूपसे देश और काल एवं आकारसे अव्यभिचारी है, सत्य है, ऊपर जो तीन दृष्टान्त दिए हैं वे तो असत् प्रतिभासके हैं, उनकी तरह कहीं देश, काल, आकार विशेषसे जो ये प्रतिभास विशेष हो रहे हैं इन्हें व्यभिचारी नहीं कहा जा सकता। इसी कारण यह कथन भी सङ्गत नहीं बैठता कि जो आदिमें और अन्तमें नहीं है वह वर्तमानमें भी नहीं है, और ऐसा कानून बनाकर मिथ्या प्रतिभास विशेषोंके समान ही सत्य और सम्भावात्मक प्रतिभास विशेषोंको बता देना युक्त नहीं है। जो प्रतिभास विशेष सत्य हैं, आप लोगोंके अनुभव में आ रहे हैं वे आदिमें और अन्तमें भले हा असत् हों याने विद्यमान न हों पर वर्तमानमें तो उनका सत्त्व प्रसिद्ध ही है। देखिये ! जिस प्रकार स्वप्नादिक मिथ्याज्ञानोंमें उस सम्बन्धमें भी बाधक प्रमाण उत्पन्न होता है उस तरह जागृत अवस्थामें होने वाले सत्य प्रतिभासमें बाधक प्रमाण नहीं होता। जब जहाँ जिसको जिस आकारसे जान रहे हैं वैसी तो उसकी सिद्धि है। उसको सिद्ध करने वाले साधक प्रमाण ही हैं। उस समय वहाँ स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है कि मैंने उस समय पदार्थ अच्छी तरह देखा क्यों कि वह अर्थक्रियाकारी है। यदि वह मिथ्या होता तो उससे अर्थक्रिया नहीं बन सकती। जैसे इन्द्रजाल, मायाजालमें देखा गया पदार्थ, उससे कोई अर्थक्रिया नहीं बनती तो वह मिथ्या है। जैसे तमाशगीर लोग किसीकी टोपी खिसकाकर या कमीज हिलाकर रुपये लटकाते दिखाते हैं तो जो रुपये दिखाये वे अर्थक्रिया नहीं कर सकते, उनसे एक धेलेकी चीज भी नहीं खरीदी जा सकती, तो वे मिथ्या हैं। लेकिन ऐसा तो यहाँके प्रतिभास विशेषकी बात नहीं है। वह अर्थक्रियाकारी है अतएव सत्य है। दूसरी बात यह जानें कि यह ज्ञान मिथ्या है और यह ज्ञान सत्य है। ऐसी व्यवस्थामें तो छोटे मोटे पुरुषोंको भी विवाद नहीं रहता, विद्वानोंकी बात तो दूर रहे। जो छोटे आबाल गोपाल हैं वे तक भी यह कहते हैं कि इन्द्रजाल आदिकमें देखे गए पदार्थ भ्रान्त हैं अभ्रान्त नहीं और जैसा स्पष्ट साक्षात् देख रहे हैं, जो व्यवहारमें आ रहे हैं वे अभ्रान्त हैं, भ्रान्त नहीं। तो इस तरह प्रतिभास विशेषोंमें स्वप्नादिकके उदाहरण देकर उनका भ्रान्त सिद्ध करना युक्त नहीं है।

एकान्ततः प्रतिभास सामान्यकी सिद्धिकी अशक्यता—ब्रह्माद्वैतवादियों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से पूछा जा रहा है कि भला बतलाओ कि वह प्रतिभास सामान्यरूप है अथवा द्रव्यरूप है ? वह जो ज्ञान सामान्य हुआ है यदि सामान्यरूप माना जाय उसे तो ठीक है। वह सत्तारूप ही तो सिद्ध हुआ, क्योंकि प्रतिभास सामान्य भी तो पर सामान्यरूपसे ही व्यवस्था पाता है। याने द्रव्य सामान्य ही सदा है अथवा पर सामान्य रूप है सो ठीक है किन्तु वह सामान्य सब विशेषोंके द्वारा ही बन सकता, इस कारण द्वैतका प्रसङ्ग आ ही जाता है। ऐसा एकान्त करना व्यवस्थित न बन सकेगा कि मात्र यही है दुनियामें अन्य कुछ नहीं। दुनियामें अनन्त पदार्थ हैं, उनमें सामान्य और विशेषकी अपेक्षासे अनेक बातें घटित हो जाती हैं। तो यहाँ वे पुरुषाद्वैतवादी कहते हैं कि यह सत्ता सामान्य जिसको विकल्प कोटिमें रखे हैं वे बतलायें कि स्वयं प्रतिभासमान नहीं है। यदि कहो कि वह स्वयं प्रतिभासमान है तो बस अचेतन सिद्ध हो गया। जो जो प्रतिभासमान होते हैं वे वे प्रतिभास सामान्यरूप होते हैं। यदि दूसरी बात कहें कि वह सत्ता सामान्य स्वयं प्रतिभासमान नहीं है तब उसकी कोई व्यवस्था ही नहीं बना सकता। जब प्रतिभासमें ही नहीं है तब उसकी सत्ता ही नहीं है तो उसकी व्यवस्था क्या बने ? इस तरह सत्ता सामान्यरूप है, ऐसा विकल्प उठाकर प्रतिभास सामान्यका निराकरण करना युक्त नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये, सत्ता सामान्य क्या है ? सत् सत् इस प्रकारके अन्वय ज्ञानका जो विषय है वही सत्ता सामान्य कहलाता है। और तभी सत्ता सामान्यकी जब अन्वयज्ञानसे व्यवस्था बन गई तो वह स्वयं प्रतिभासमान है यह भी असिद्ध हो जाता है। वह तो अन्वय ज्ञानसे विषयभूत होता है। अब तो ऐसा ज्ञान बन रहा है कि सत्ता प्रतिभासित होती है सो ज्ञान तो विषयमें विषयी धर्मका उपचार करनेसे होता है अर्थात् यह विषयी तो है ज्ञान और उसका धर्म है प्रतिभास होना, तो वह विषय याने प्रतिभास होनेकी बात सत्ता सामान्यसे आरोपित किया जाता है। सो ठीक ही है उस आरोपमें निमित्त कारण प्रतिभासमान क्रियाका अधिकरणपना है। याने चूंकि प्रतिभासन क्रियाका अधिकरण सत्ता सामान्य है अतएव सत्ता सामान्यमें ज्ञानके धर्मका याने प्रतिभासनका आरोप किया जाता है। तभी जिस प्रकार ज्ञान प्रतिभासित होता है उस सम्बन्धमें प्रश्न कर्तामें रख रहे हैं उसी तरह उपचारसे ज्ञानका विषयभूत जो पदार्थ है उसमें भी क्रिया स्थित मानी जाती है याने ज्ञान प्रतिभासित होता है इससे जैसे यह बात स्पष्ट समझमें आती है कि प्रतिभासन क्रियाका आधार कर्ता है।

प्रतिभासित पदार्थोंमें प्रतिभासकी तरह कहनेका कारण—कर्तामें स्वयं यह प्रश्न पड़ा है, इसी प्रकार जब सकर्मकरूपसे प्रयोग होगा तो सकर्मक धातुकी क्रिया कर्ता और कर्म दोनोंकी ही स्थिति कहलाती है। जैसे प्रयोग किया गया कि 'ओदनं पचति' तो यहाँ जो पचन क्रिया है वह दो जगह पाई जाती है। जो चीज पक रही है उसमें भी प्रतीति होती है और जो कोई पक रहा है उसमें भी इसकी क्रिया

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कमा प्रतीत हो रही है। इसी तरह यहाँ भी लगायें—जब अकर्मक रूपसे प्रयोग किया जाता कि ज्ञान प्रतिभासित होता है तो उस अकर्मक धातुकी क्रिया कर्तामें स्थित है। उस धातुका अर्थ है कर्तामें स्थित क्रियामात्र और जब सकर्मक रूपसे प्रयोग किया जाय तो वहाँ कर्ममें स्थित भी मालूम होता है, पर वास्तवमें जहाँ कर्मस्थ क्रियाका अभाव है अकर्मक धातुओंमें कर्म नहीं, कर्मस्थ क्रिया नहीं तब वहाँ कर्तामें स्थित क्रिया कर्मको उपचारसे कहा जाता है। ज्ञान प्रतिभासित होता है, ऐसा कहना यह तो सीधा सही है और वस्तु प्रतिभासित होती है इस आग्रहमें ज्ञानकी क्रिया जो प्रतिभास है उसका उपचार ज्ञेय पदार्थमें किया गया है। अब यहाँ पुरुषाद्वैतवादी कहते हैं कि देखिये ! जब किसी प्रमाणसे ज्ञानमें मुख्यतया स्वयं प्रतिभासना सिद्ध हो तब ही तो अन्य याने ज्ञानके विषयभूत पदार्थमें प्रतिभासनके उपचारकी कल्पना करना सही है। जैसे ज्ञान प्रतिभाषित होता है तो जब ज्ञानमें प्रतिभासना मुख्य सिद्ध हो जाय तब ही ज्ञान द्वारा जाने गए पदार्थमें प्रतिभासनेका उपचार किया जा सकता है। जैसे किसी बच्चेको अग्नि कह दिया तो अग्निका काम जब मुख्यतया अग्निमें सिद्ध होता है, जैसे जलाना, प्रकाश आदिक अर्थक्रिया अग्निमें सिद्ध होती है तो वहाँ मुख्यतया सिद्ध हुआ ना ! तब अग्निके जलाने आदिक धर्मको देखकर किसी बच्चेमें उस धर्मके उपचारकी बात कही जाती है। तो जब कोई मुख्य पदार्थके अर्थ क्रिया सिद्ध हो तब उपचारसे उसको किसी अन्य पदार्थमें भी कह सकते हैं। जैसे अग्निके जलानेकी अर्थक्रिया प्रसिद्ध है। अग्नि ईंधनको जला देती है। तो जो जलाने वाली हो उसे अग्नि कहते हैं। अब कोई किसी बच्चेको ही अग्नि कहदे, यह बच्चा तो आग है, क्रोध विशेष करता हो या अन्य आचरणसे तो वहाँ बच्चेमें अग्निका उपचार किया गया है। बच्चा परमार्थभूत अग्नि नहीं है, लेकिन ज्ञान तो स्वयं प्रतिभासमान सिद्ध है। वह तो दूसरे ज्ञानसे जाना जाता है इसलिए ज्ञानके प्रतिभासनेका कहीं साधन भी नहीं बना सकता। तब एक यह सिद्धान्त बना कि ज्ञान स्वयं ज्ञानको नहीं जानता, किन्तु दूसरे ज्ञानके द्वारा ज्ञान जाना जाता है। जैसे किसी पदार्थको जान लिया कि यह रस्सी है तो जब यह सोचते हैं कि हमने जो यह जाना कि यह जाना कि यह रस्सी है, यह ज्ञान भी हमारा सही है या नहीं ? तो उस ज्ञानको सही समझनेके लिए एक अन्य ज्ञान बनता है ना ! तो अब उस अन्य ज्ञानको भी सही समझनेके लिए और अन्य ज्ञान बनेगा तो इस तरह प्रकृत ज्ञानको सही सिद्ध कर ही न सकेंगे। अनेक ज्ञानोंको सही करनेकी पड़ जायगी। तो जब ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान सिद्ध होता ही नहीं है तब ज्ञानकी प्रतिभासन क्रियामें ज्ञेयमें उपचार कैसे किया जा सकता है ? यहाँ शङ्काकारका यह अभिमत है कि दो तरहके वाक्य प्रयोग होते हैं एक तो ऐसा कि 'ज्ञान प्रतिभासित होता है' और एक यह कि 'किवाड़ प्रतिभासित होती है।' तो इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। ज्ञान तो स्वयं प्रतिभासस्वरूप है। ज्ञान प्रतिभासित होनेकी बात बन सकती है पर किवाड़ तो प्रतिभासस्वरूप है नहीं। क्यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहा जाता कि किवाड़ प्रतिभासित होते हैं ? तो उत्तर यह दिया गया था कि प्रतिभासना काम तो ज्ञानका है, पर ज्ञानका विषयभूत बना है किवाड़। ज्ञानमें ज्ञेय बना है ऐसे ज्ञानका जो धर्मप्रकाश है, प्रतिभासन है उसको उपचारसे किवाड़में लगा लिया है। इसपर वेदान्ती यह कहते हैं कि उपचार कैसे बन पायगा ? पहिले मुख्य बात तो सिद्ध करलो। ज्ञान स्वयं प्रकाशमान है, यह ही सिद्ध नहीं है, क्योंकि ज्ञान अन्य ज्ञान के द्वारा जाना जाता है। इस शङ्काके उत्तरमें स्याद्वादी कहते हैं कि देखिये ! यह दोष उनके लिए आ सकता है जो ऐसा मानते हों कि ज्ञानको अन्य ज्ञानके द्वारा जाना जाता है। जो ज्ञान परोक्ष माना हो उनपर यह दोष है याने अब सिद्धान्त ऐसा है कि ये अन्य ज्ञानके द्वारा प्रकृत ज्ञानका ज्ञान मानते हैं। तो ऐसा परोक्षज्ञान मानने वाले नैयायिक हों, वैशेषिक हों और उनका प्रभेदरूप भट्ट प्रभाकर हों, उनके सिद्धान्तमें तो यह बात कही जाती है, पर स्याद्वाद सिद्धान्तमें यह दोष नहीं होता कि स्याद्वादी जनोंका ज्ञान स्वसम्वेदी स्वरूप है अर्थात् ज्ञान स्वयंका भी उसी समय ज्ञान कर लेता है और पदार्थका भी ज्ञान कर लेता है। जैसे दीपक जलता है तो तत्काल दीपक बाह्य पदार्थोंको भी प्रकाशित करता है। इसी तरह ज्ञान जब उत्पन्न होता है तो वह ज्ञान स्वयंको भी जानता है और बाह्य विषयभूत पदार्थको भी जानता है।

ज्ञानकी स्वयं स्वसंवेद्यताका समर्थन—अब इस प्रसङ्गमें भट्टसिद्धान्तानुयायी कहते हैं कि यद्यपि हम परोक्षज्ञानवादी हैं फिर भी दोषके योग्य नहीं हैं। हमारे सिद्धान्तमें आत्मा तो स्वयं प्रतिभासमान माना गया है और जो प्रतिभासन है वह कहलाता है ज्ञान ! तो यह प्रतिभासन याने ज्ञान आत्माका धर्म है और आत्मा स्वयं प्रतिभासमान है। तो स्वयं प्रतिभासमान आत्माके प्रतिभासन धर्मका उपचार ज्ञानमें बन जाता है और घट प्रतिभासित होता है, किवाड़ प्रतिभासित होता है, यह सब प्रतिभासन ज्ञानके बिना होता नहीं, इस कारण कारणभूत परोक्ष भी ज्ञान है तो भी उस ज्ञानकी जानकारी बन ही जाती है। जैसे कि रूपके ज्ञानसे चक्षुका ज्ञान। कोई अपनी आँखको जान रहा है क्या ? कोई अपनी आँखको नहीं देख सकता, नहीं जान सकता। अगर आँख द्वारा सामने रूप जानें कि यह पीला है, तो रूप जाना। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि मेरे आँख भी है अन्यथा मैं रूपको कैसे जान लेता ? तो जैसे रूपके ज्ञानसे चक्षुका ज्ञान बनता है इसी प्रकार आत्माके सम्बन्धसे परोक्ष भी ज्ञान जाननेमें आ जाता है। इसी तरह प्रभाकरसिद्धान्तानुयायी भी कहते हैं कि हमारे यहाँ भी यह दोष नहीं लग सकता। यद्यपि हम करण ज्ञानको और आत्माको परोक्ष मानते हैं यह स्वयं प्रतिभासमान नहीं है, इंद्रिय आदिक ये स्वयं प्रतिभासमान नहीं हैं आत्मा भी स्वयं प्रतिभासमान नहीं है, लेकिन जो फलज्ञान उत्पन्न होता है वह तो स्वयं प्रतिभासमान माना है। तब फलज्ञानके धर्मका याने उस प्रभावनाका उपचार आत्मामें और ज्ञानमें लग जाता है। और भी देखिये ! चूंकि फलज्ञान कर्ताके बिना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और करण ज्ञानके बिना बन नहीं सकता इसलिए वह फल कर्ता और करण ज्ञानको सिद्ध करता है कि है कोई कर्ता और कोई करण। जैसे रूपके प्रतिभासनेकी जो क्रिया है यही तो फल है। हमने आंखसे देखा तो फल क्या हुआ ? रूप प्रतिभासमें आया। तो जब रूप प्रतिभासमें आया तो दोनो बातें सिद्ध हो गयीं कि करण ज्ञान भी है और आत्मा भी है। इस तरह परोक्षज्ञानवादी अपनी दोषापत्तिका निवारण करते हैं, किन्तु उनके समाधानपर जब विचार किया जाता तो ये दोनों बातें सङ्गत नहीं उतरतीं। भाट्ट सिद्धान्तमें आत्माको तो मानते है कि वह अपने स्वरूपका प्रतिभास कर लेता है तो जब आत्माको निज स्वरूपका प्रतिभास करने वाला मान लिया तो उसीको ही बाह्य अर्थका प्रतिभास करने वाला भी मान लो और यों जब कि आत्मा अपने स्वरूपका प्रतिभासक है तो परका भी प्रतिभासक सिद्ध हो गया, फिर आत्मासे भिन्न किसी परोक्षज्ञानके माननेकी क्या आवश्यकता पड़ी है ? इसी तरह यही तो प्रभाकर सिद्धान्तमें भी होता है कि जब फलज्ञान अपने स्वरूपका और बाह्य अर्थका जाननहार सिद्ध हो गया तो उससे भिन्न कोई परोक्ष करण ज्ञानकी कल्पना क्यों की जा रही है ? इस विषयमें यदि वे यह उत्तर दे कि बात यह है कि कर्ताका करणके बिना, साधनके बिना क्रियामें व्यापार नहीं होता। तो यद्यपि जाना आत्माने और फल भी मिला जाननेका। लेकिन करणके बिना जानना बनेगा नहीं। वही करणज्ञान कहलाता है। यों परोक्षज्ञानकी कल्पना करनी पड़ी, ऐसा कहना भी यों सङ्गत नहीं है कि जब मन और चक्षु आदिक इन्द्रिय जो भीतर और बाहर करण ज्ञान करनेमें मौजूद हैं तब अन्य करणकी कल्पना करनेमें अनवस्था दोष होता है। देखो ! सुख दुःखादिकका ज्ञान अन्तरङ्ग करणसे हो जाता याने मनसे हो जाता, बाह्य पदार्थोंका ज्ञान नेत्र आदिक इन्द्रियसे हो जाता तो अब स्व और परकी पहिचान में ये दो ही करण पर्याप्त हैं और अन्य साधनोंको माननेकी क्या आवश्यकता ? तो यों स्व और पर परिच्छेदक जब आत्मा बना अथवा फल ज्ञान बना तो इसमें यथार्थ सिद्धान्त बन ही जाता है कि स्वयं प्रतिभासमान आत्मा है अथवा ज्ञान है, उसके प्रतिभासन धर्मका विषयमें विचार किया जाता है तब चाहे यों कहो कि ज्ञान प्रतिभासित होता है चाहे यों कहो कि सदा सामान्य या पदार्थ विशेष प्रतिभासित होता है। दोनों ही घट जाते हैं उस मुख्यता और उपचारसे। और इस तरह फिर उस पदार्थ विशेषका प्रतिभास मात्रमें प्रवेश सिद्ध नहीं होता। इससे मानना पड़ेगा कि वास्तवमें ज्ञान स्वयं प्रतिभासमान है।

सत्ता सामान्यसे भी अधिक व्यापकत्व प्रतिभास सामान्यमें बतानेका विफल प्रयास—अद्वैतवादी कहते हैं कि हम सत्ता सामान्यको प्रतिभास मात्र नहीं मानते, क्योंकि सत्ता सामान्य द्रव्य गुण कर्ममें ही व्यापक है। सामान्य विशेष समवाय तथा चार प्रकारके अभाव इनमें सत्ता नहीं रहती है। तो सत्ता सामान्यको हम प्रति-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भास सामान्य नहीं कह सकते। प्रतिभास सामान्य व्यापक तत्त्व है, सत्ता सामान्य व्यापक नहीं है याने सत्ता सामान्य वहाँ नहीं है वहाँ भी प्रतिभास मात्र है। तो यों सत्ता सामान्यका नाम प्रतिभास सामान्य न हुआ। तब कोई पूछे कि प्रतिभास सामान्य फिर क्या है ? तो सुनो ! जो समस्त भावात्मक पदार्थोंमें रहे और समस्त अभावों में रहे ऐसा जो प्रतिभास सामान्य है उसे कहते हैं हम प्रतिभास मात्र। इस कारिकाके समाधानमें कहते हैं कि पुरुषाद्वैतके समर्थनमें उक्त वचन भी समीचीन नहीं हैं, क्योंकि प्रतिभास सामान्य प्रतिभास विशेषोंका अविनाभावी है। यदि प्रतिभास विशेष कुछ नहीं है। प्रतिभास विशेषोंके अभावमें प्रतिभास सामान्यकी व्यवस्था नहीं बनती। इस तरह प्रतिभास सामान्य और प्रतिभास विशेष ये दो मानने ही होंगे और दो की सिद्धि हो जानेपर अब अद्वैत तो न रहा। यदि शङ्काकार यह कहे कि प्रतिभास विशेष है तो सही किन्तु वह सत्य नहीं है और सत्यताके न होनेका कारण यह है कि उनमें समवायकता नहीं है। याने प्रमाणपना उनमें नहीं है। जैसे स्वप्नादिकके प्रतिभास विशेष। स्वप्नमें जैसे अनेक घटनाओंका प्रतिभास होता है वह प्रतिभास विशेष ध्यानमें तो आया किन्तु वह सत्य नहीं है, इसी प्रकार विश्वके समस्त प्रतिभास विशेष भले ही कल्पनामें आते हैं किन्तु वे सत्य नहीं हैं। यदि ऐसा कहें तब उनके लिए यह प्रसङ्ग आयगा कि इस तरह प्रतिभास सामान्य भी सत्य न ठहरेगा, क्योंकि कहा जा सकता है कि प्रतिभास सामान्य असत्य है क्योंकि वह विसम्वादी है, अप्रमाण है। प्रतिभास सामान्यके सम्बन्धमें समवायकपना नहीं है अर्थात् जाना जाय और सही जान लिया जाय यह बात नहीं बनती। जैसे कि स्वप्नादिक प्रतिभास सामान्य स्वप्न जैसी स्थितिमें जो कुछ प्रतिभास सामान्य होता हो वह जैसे असत्य है इसी प्रकार यहाँ भी कल्पना करके जो प्रतिभास सामान्य कहा है वह भी असत्य है। तो स्वप्नादिक प्रतिभास विशेषका दृष्टान्त देकर सारे प्रतिभास विशेषोंको असत्य ठहराया तो स्वप्नादिक प्रतिभास विशेषको सामान्य असत्य ठहराकर प्रतिभास सामान्य भी असत् ठहराया जा सकता है। वहाँ यह न कहा जा सकेगा कि स्वप्नादिक प्रतिभास विशेष ही विसम्वादी हैं अर्थात् प्रतिभास विशेषोंमें प्रमाणता न आयी। तो यों स्वप्न प्रतिभास विशेष ही अप्रमाण है, उनमें व्याप्त होने वाले प्रतिभास सामान्य अप्रमाण नहीं हैं। यह बात यों न कही जा सकेगी कि स्वप्नादिक प्रतिभास विशेष अप्रमाण हैं, असत् हैं तो उनमें फिर प्रतिभास सामान्य कैसे बताया जा सकेगा ? यदि सत् प्रतिभास विशेषोंमें प्रतिभास सामान्य बताया जाय तो खरविषाण आकाश पुष्प कछुवाके रोम, बंध्याका पुत्र आदिक नहीं है तो भी उनमें व्यापक सामान्यका सद्भाव मानना पड़ेगा। जब प्रतिभास विशेष कुछ नहीं है और प्रतिभास विशेषोंमें व्यापक प्रतिभास सामान्य माना जाता तो जो पदार्थ असत् हैं उनमें भी प्रतिभास सामान्य मानना पड़ेगा।

प्रतिभास सामान्यकी तरह प्रतिभास विशेषोंकी सर्वत्र व्यापकता व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सत्यता—अब यहाँ पुरुषाद्वैतवादी कहते हैं कि देखिये ! खरविषाण आदिक तो असत् हैं। वे हैं ही नहीं, उनका अस्तित्व ही नहीं, फिर उनमें व्यापक कोई सत् कैसे हो सकता है ? उनमें प्रतिभास सामान्य कैसे माना जा सकता है ? तो उसका उत्तर यही है कि इसी तरह असत्य प्रतिभास विशेषोंमें जो रहने वाला प्रतिभास सामान्य बताया है वह भी कैसे सत्य ठहरेगा ? जैसे आकाशके फूल कुछ चीज नहीं हैं तो उनमें प्रतिभास सामान्य नहीं ठहरता ऐसे ही सारे प्रतिभास विशेष ज्ञान विशेष जो जो कुछ भी विशिष्ट जानकारियाँ हो रही हैं उन सब ज्ञानोंमें ज्ञान सामान्य कैसे रह सकेगा ? सारांश यह है कि यदि प्रतिभास विशेष असत्य है पुरुषाद्वैतके मतमें तो प्रतिभास विशेषोंमें रहने वाला प्रतिभास सामान्य भी असत्य ही ठहरेगा, वह सत्य न हो सकेगा। शङ्काकार यदि यह कहे कि प्रतिभास सामान्य तो सत्य ही है और उसका कारण यह है कि प्रतिभास सामान्यका कहीं भी विच्छेद नहीं है, सर्वत्र निरन्तर है, सब जगह निरन्तर है, सब कालमें निरन्तर है, समस्त आकारोंमें निरन्तर है, ऐसा प्रतिभास सामान्य सत्य है तो इसपर विचार कीजिए कि इस कथनमें यही तो बताया गया कि देश, काल, और आकारेसे विशिष्ट ही प्रतिभास सामान्य है और वही सत्य है, सब जगह, सब काल और सब आकारमें जो निरन्तर रहे वह प्रतिभास सामान्य है तो इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि देश, काल और आकारसे विशिष्ट ही प्रतिभास सामान्य है। देश, काल, आकारको छोड़कर कोई प्रतिभास सामान्य नहीं। यदि प्रतिभास सामान्य समस्त देश विशेषोंसे रहित हो तो ऐसे प्रतिभास सामान्यमें यह विशेषण हीं नहीं लग सकता है कि सब जगह सब काल और सब आकारोंमें प्रतिभास सामान्य रहता है सारांश यह है कि यदि प्रतिभास सामान्य प्रतिभास विशेषोंसे रहित है, देश आदिक विशेषोंसे रहित है तो उसके लिए फिर देश, काल, आकारके सम्बन्ध की बात नहीं कही जा सकती, और इस तरह कहने वालेने देश, काल, आकाश, विशेषके सत् प्रतिभास सामान्यको स्वीकार किया। तो देश, काल आदिक तो हुए पर्याय विशेषण और प्रतिभास सामान्य हुआ एक मूल द्रव्यकी तरह। तो इस कथनमें ऐसा ही प्रतिभास सामान्य स्वीकार किया गया जो एक द्रव्य अनन्त पर्यायों रूप हो ऐसा ही प्रतिभास सामान्य स्वीकार किया गया और प्रमाणसे ऐसा ही सिद्ध हो सकेगा। सामान्य विशेषात्मक वस्तु ही प्रमाणसे सिद्ध होती है। तो किसी भी प्रकार युक्तियाँ लगाकर भी बोलें तो वह वस्तु रूप उतरेगा तो वह सामान्य विशेषात्मक वस्तु ही ज्ञानमें आयगा।

प्रतिभासविशेषात्मक प्रतिभाससामान्यको पुरुषाद्वैत सिद्ध करनेका प्रयास व समाधान—यहाँ पुरुषाद्वैतवादी कहते हैं कि ठीक है। एक द्रव्य और अनन्त पर्यायरूप प्रतिभास सामान्य जो सिद्ध किया है वह हमने स्वीकार किया है लेकिन उसमें यही परम पुरुष ही तो आयगा। यह परम पुरुष ही ज्ञानात्मक प्रकाशसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्मल है। वह ज्ञान ज्योति स्वरूप है और मोहरूपी अंधकारसे रहित है, उसमें मोह रागद्वेषका अंधेरा नहीं है, वह अन्तर्यामी अर्थात् सर्वज्ञ है। देखिये ! लोकमें जो लोकका प्रकाश करने में समर्थ है ऐसा सूर्य भी तो यही प्रकाशपुञ्ज परम पुरुष है। जिसकी महान महिमा है ऐसा यह प्रसिद्ध सूर्य परम पुरुषके होनेपर ही सब पदार्थोंका प्रकाशन करता है। परम पुरुषके अभावमें सूर्य भी कुछ नहीं है। तो यह जगमगाता हुआ सूय उस परम पुरुषकी ही याद दिलाता है। इसमें जो सन्देह करता है वह अलाभमें रहता है। इस तरह एक द्रव्य और अनन्त पर्यायोंरूप प्रतिभास सामान्य सिद्ध होना तो ठीक है। लेकिन यह है वही परम पुरुष। इसके समाधानमें कहते हैं कि भले ही यह श्रुतिमें बताया है कि ज्ञानात्मक प्रकाशसे निर्मल है, मोहान्धकारसे परे है, अन्तर्यामी है, तो ऐसा परम पुरुष है। यह भी समझमें आ रहा है या नहीं ? समझमें यदि आ रहा है तो इसके मायने है कि वह ज्ञेयमय हुआ, प्रकाश्य हुआ। तो ज्ञानरूपसे प्रकाशित होने वाला हुआ ना कुछ ! वह हुआ ज्ञेय, तो ज्ञानरूपसे ज्ञेय भिन्न ही होता है। अब यहां दो चीजें हो गईं—ज्ञान और ज्ञेय। प्रकाश और प्रकाश्य। तो अद्वैत परम पुरुष सिद्ध तो नहीं हो सकता। प्रकाशपुञ्ज भी है और प्रकाश में जो कुछ आ रहा है, ऐसा पदार्थ भी है। यदि शङ्काकार यह कहे कि हम तो समस्त ज्ञेयोंको ज्ञानरूप ही मानते हैं, क्योंकि वह प्रकाशमान हैं। जैसे ज्ञानका अपने स्वरूपमें ज्ञानमें ज्ञानका स्वरूप आता है, जाना जाता है। तो वह ज्ञानस्वरूप ज्ञान मात्र ही तो है। इसी प्रकार जगतमें जितने भी पदार्थ है वे सब प्रकाशमान हैं अतएव सब ज्ञानरूप ही हैं। ऐसा कहने वाले पुरुष ऐसा माननेको बाध्य होंगे ही कि लो ज्ञान भी ज्ञेयरूप बन गया। तो इस हालतमें अब ज्ञेयाद्वैत मान लेना चाहिए। तो अब पुरुषाद्वैत तो न रहा, प्रकाशाद्वैत भी न रहा। अब तो ज्ञेयाद्वैत सिद्ध हो गया, क्योंकि समस्त ज्ञेयोंको ज्ञानरूप मान लिया। तो चाहे ज्ञानाद्वैत कह लो, ज्ञेय मिटाने के लिए चाहे ज्ञेयको द्वैत कह लो ज्ञान मिटानेके लिए। तो जब प्रधान रूपसे ज्ञेयोंको ज्ञानरूप मानते तो ज्ञेयाद्वैत रहा। यदि शङ्काकार यह कहे कि ज्ञेयाद्वैत कैसे रहा ? ज्ञानके अभावमें ज्ञेय कैसे सिद्ध हो सकता है ? तो उसके उत्तरमें यह भी तो कहा जा सकता कि ज्ञेयके अभावमें ज्ञान कैसे सिद्ध हो सकता है ? ज्ञान ज्ञेका अविनाभावी है। यदि ज्ञेय नहीं है तो ज्ञान भी कुछ तत्त्व नहीं है।

ज्ञेयके अभावमें ज्ञानकी सिद्धि न हो सकनेसे द्वैतसिद्धिकी अनिवार्यता

पुरुषाद्वैतवादी कहते हैं कि ज्ञेयके बिना भी ज्ञान हो सकता है। जैसे स्वप्नमें जो कुछ देखा या इन्द्रजालमें जो कुछ देखा वहां ज्ञेय तो नहीं है लेकिन ज्ञान हो रहा है। तब यह न कहना चाहिए कि ज्ञान ज्ञेयका अविनाभावी है, ज्ञेय न हो तो ज्ञान कुछ न रह सके यह बात नहीं बनती। ज्ञान सर्वोपरि है, सर्व व्यापक है। ज्ञेयके बिना भी ज्ञान रहता है। इसके समाधानमें स्याद्वादी कहते हैं कि स्वप्न और इंद्रजाल जैसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थितिमें भी जो ज्ञान होता है वह ज्ञेय सामान्यके सद्भावमें ही होता है। चाहे वहाँ ज्ञेय विशेष वस्तुरूपसे नहीं पाया गया। लेकिन एक आकार तो ज्ञेयरूपसे बना ही। जितने भी ये ज्ञान हैं संशयज्ञान हो, स्वप्नज्ञान हो ये ज्ञेय सामान्यके व्यभिचारी नहीं बन पाते। ज्ञेय सामान्य तो है ही अन्यथा ज्ञान नहीं बनता। हाँ ये सब ज्ञान जो अप्रमाण माने जाते हैं वे ज्ञेय विशेषमें व्यभिचरित होनेसे याने जैसा जाना वैसा ज्ञेय विशेष वहाँ उपस्थित नही है, न अप्रमाण कहा जाता है, पर जाननेके समयमें ज्ञेय सामान्य तो रहता ही है। चाहे कोई यथार्थ ज्ञान हो अथवा अयथार्थ ज्ञान हो सारे ही ज्ञान ज्ञेयको लेकर ही होते हैं। ज्ञेयके बिना किसी भी ज्ञानकी निष्पत्ति नहीं होती। जेसे संशयमें यह जाना कि यह सीप है या चाँदी तो भले ही वहाँ न सीपका निर्णय है न चाँदीका निर्णय है और वहाँ क्या चीज पड़ी है उस वस्तुके प्रतिभासमें दृढता भी नहीं है लेकिन कुछ तो है रूप आदिक वाला ऐसा ज्ञेय सामान्य इस संशयज्ञानमें विषय हो तो रहा है तो ज्ञेय सामान्यके अभावमें संशयज्ञान भी न हो सका। कभी विपरीत ज्ञान भी हो जाय कि पड़ी तो हो सीप और जान गए चाँदी तो चाँदी यद्यपि वहाँ नहीं है और ज्ञान हो रहा है तो वही ज्ञेय नहीं है लेकिन ज्ञेय सामान्य तो है ही। कोई वस्तु ज्ञानमें आ ही तो रही है जिसके प्रति यह विकल्प बना कि यह जुदी है। तो ज्ञेयके बिना कोई भी ज्ञान निष्पन्न हो ही नहीं सकता। तब यह सिद्ध हो गया कि ज्ञेय भी है, ज्ञान भी है। दोनोंको माना और उनमें यदि ज्ञानाद्वैतकी ही हठ रखने हो तो वही क्यों हठ हो? ज्ञेयके अद्वैतकी हठ करने लगो। दूसरी बात यह है कि सारे ज्ञेय स्वयं प्रकाशमान सिद्ध नहीं होते। ज्ञेय स्वयं प्रकाशमान नहीं है, स्वयं प्रकाशमान तो ज्ञान है और स्वयं प्रकाशमान ज्ञानका विषय होनेके कारण ज्ञेयको उपचारसे प्रकाशमान कह दिया जाता है। जैसे ज्ञान प्रतिभासमान है, यह तो है सत्य कथन और चौकी आदिक प्रतिभासित हैं यह है उपचार कथन याने प्रतिभासित तो है ज्ञान और ज्ञानके प्रतिभासपनेका उपचार किया है ज्ञानके विषयमें जो ज्ञानका विषयभूत है उसे भी प्रतिभासित कह दिया गया है तो जैसे स्वयं प्रकाशमान तो सूर्य है और सूर्यके प्रकाश पुञ्जसे प्रकाशित ये सारे पदार्थ हैं. इनको भी प्रकाशमान कहा जाता है। तो यहाँ सूर्यका जो प्रकाशमानपना धर्म है उस धर्मका इन पदार्थोंमें उपचार किया गया है। तब जिस प्रकार प्रकाशनेके योग्य पदार्थ न हो तो सूर्य उनको प्रकासित नहीं कर सकता इसी प्रकार जाननेमें आने वाले नील पदार्थ, सुख आदिक पदार्थ यदि ये ज्ञेय पदार्थ न हों तो परम पुरुष उनको प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। जैसे परम पुरुषको अभी बोध स्वरूप प्रकाशसे निराला और सर्वज्ञ बताया गया याने कुछ भी न हों दुनियाँमें ये बाह्य पदार्थ तो सूर्य किसे प्रकाशित करे? फिर सूर्य प्रकाशित करनेमें समर्थ न रहा, इसी तरह अगर ये जगतके सारे पदार्थ न हों ये ज्ञेय तत्त्व न हों तो वह परम पुरुष किसे प्रतिभासित करेगा? तो यह सिद्ध हुआ ना, कि यहाँ तक कि जो भीतरी प्रकाशमान तत्त्व है, अनन्त पर्याय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाला है, एक परम पुरुष माना है तो माना ना, सामान्य विशेषात्कक । तो इसी तरह बाहरमें जितने भी पदार्थ प्रकाशित हो रहे हैं वे सब भी अनन्त पर्याय विशिष्ट द्रव्य माने जाने चाहियें। तो इस तरह चेतन द्रव्य भी सामान्य विशेषात्मक सिद्ध हुआ और अचेतन द्रव्य भी सामान्य विशेषात्मक सिद्ध हो जाता है । इस तरहसे चेतन और अचेतन इन दो द्रव्योंकी सिद्धि तो हो ही जाती है। अब केवल एक पुरुषाद्वैत न रहा, जैसे कि सम्वेदनाद्वैत भी नहीं रहता ।

चेतन अचेतन पदार्थोंकी विविधता—अब चेतन और अचेतन ये दो द्रव्य सिद्ध हो जानेके बाद इसका विस्तार देखिए ! चेतन द्रव्य सामान्यकी अपेक्षासे एक है याने जितने भी चेतन पदार्थ हैं उन सबमें चेतन सामान्य समस्त रूपसे पाया जा रहा है। तो केवल एक स्वरूपकी दृष्टिसे एक रहा फिर भी कहते हैं कि अपेक्षासे देखा जाय, उनकी परिणति पर्यायोंको निरख करके देखा जाय तो संसारी और मुक्त ऐसे दो भेद हुए । फिर उनका और विशेष देखा जाय तो और भी अनेक भेद होते हैं। तो सर्वथा एक चेतन न रहा, क्योंकि सर्वथा एक माननेपर संसार और मुक्त ये भेद नहीं मिल सकते । तो चेतन भी सिद्ध हुआ और वह भी अनेक सिद्ध होगा। इसी प्रकार अचेतन द्रव्य भी जो सामान्य विशेषात्मक रूपसे प्रसिद्ध हुआ था वह भी एक सामान्य तया तो कह लीजिए, पर विशेष अपेक्षासे मूर्तिक और अमूर्तिक ऐसे दो भेद हो जाते हैं। यदि सर्वथा अचेतन द्रव्य एक हो तो मूर्तिक द्रव्य और अमूर्तिक द्रव्य में भेद नहीं बन सकते हैं। और, यह प्रकट समझमें आ रहा है कि जितने ये अचेतन पुद्गल द्रव्य हैं वे सब मूर्तिमान है, लेकिन वे चाक्षुष नहीं हो रहे हैं, स्कंध पृथ्वी आदिक अनेक प्रकारके मूर्तिक पदार्थ प्रकट ज्ञात हो रहे हैं। अब रहा कोई अमूर्तिक द्रव्य तो ऐसे अमूर्त द्रव्य चार प्रकारके हैं—धर्म, अधर्म, आकाश और काल । याने अचेतन होकर अमूर्तिक हों, वे द्रव्य चार प्रकारके हैं और ये चार प्रकारके द्रव्य हैं, ऐसा समझनेमें सन्देह न रखना, क्योंकि जब चार प्रकारके कार्य देखे जा रहे हैं कि गतियाँ हो रही हैं, चलना हो रहा है फिर भी ठहर जाते हैं। पदार्थका अवगाहन होरहा है, परिणमन हो रहा है पदार्थोंका तो इन कार्योंका अनुमान होता है कि जो गतिमें निमित्तभूत हो सो धर्मद्रव्य है जो स्थितिमें निमित्तभूत हो सो अधर्म द्रव्य है, जो अवगाहनमें निमित्त है सो आकाश द्रव्य और जो परिणमनमें निमित्त है सो काल द्रव्य है। इस तरह ६ द्रव्य सब प्रमाण सिद्ध होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । और इन ६ द्रव्योंकी अनन्त पर्याय है । प्रथम तो द्रव्यमें अर्थपर्याय होती है जिसमें षटगुण हानिवृद्धि है। सूक्ष्म है वह ज्ञानगम्य है । फिर उन द्रव्योंकी व्यञ्जन पर्यायें हैं, जिनमें आकार पाया जाय वे तो प्रदेशत्व गुणके विकाररूप हैं, व्यञ्जन पर्याय हैं । जिनमें भाव पाया जाय वे गुणपर्यायें हैं। इस तरह द्रव्य पर्याय सभी ज्ञेय हैं। तब एक पुरुषाद्वैतकी सिद्धि नहीं हो सकती है। और यह भी न कहा जा सकता कि ये सारे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्य समस्त पर्याय जो ज्ञानमें प्रतिभासमान हो रहे हैं वे सब प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत ही हुए। किसी भी प्रकार कुछ भी समझ आयें, ज्ञान और ज्ञेय तो मानना ही पड़ेगा। विषय विषयीका भेद न हो तो न विषय ठहरेगा न विषयी रहेगा। यदि ज्ञान ज्ञेयकी प्रक्रिया न मानी जाय तो न ज्ञान ही ठहरेगा और न ज्ञेय ही ठहर सकता। तो न तो द्रव्यका एकान्त रहा न पर्यायका एकान्त रहा, न ज्ञानका एकान्त रहा, न ज्ञेयका एकान्त रहा। सभी प्रकारके पदार्थ हैं और जो जिस प्रकारसे पदार्थ अवस्थित है वहां उस प्रकारसे ज्ञान करना चाहिए। तो प्रतिभासाद्वैत मानने वालोंने जो एक यह रटन लगाया था कि जो कुछ भी बताया जाय उसीको ही प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत कर लेंगे तो यों प्रतिभास सामान्यमें अन्तर्गत न होगा। सारा विश्व प्रतिभास अपनी जगह है और प्रतिभास्य पदार्थ वह अपने स्वरूपमें है।

कर्म क्रिया कारक आदि सबकी सिद्धि—कर्म आदिक कारक और परिस्पंदात्मक क्रियाके धात्वर्थ वाली क्रिया इसके भेदकी जो बात रखी उसे भी यों कह कर टाल दिया था कि चूंकि ये भी प्रतिभासमान हो रहे हैं तो प्रतिभासमात्रके अन्तर्गत आते हैं। प्रतिभासमान हो रहे हैं तो ज्ञानके विषय तो हैं। भले ही उनमें प्रतिभासमानपनेकी बात कहकर प्रतिभास सामान्यमें बोल रहा हो लेकिन यह तो विचारें कि उनको प्रतिभासमानपना उपचारसे ही कहा जा रहा है। वास्तवमें प्रतिभासमान उस धर्म ज्ञानका है और ज्ञानमें जो विषय होता है उसे प्रतिभासमान कहा जाता है उपचारसे। तो जो ये बाह्य पदार्थ प्रतिभासमें आ रहे हैं वे प्रतिभास्य हैं किन्तु ज्ञान मात्र नहीं हैं। पुरुषाद्वैतवादियोंके प्रति जिन जिन बाह्य तत्त्वोंकी बात रखी गई, वे उन सबको ही प्रतिभास सामान्यके अन्तर्गत मानकर निराकरण करते आये हैं। वस्तुत विचार किया जाय तो क्रिया कारक आदिकका जो भेद प्रतिभास है, यह जो हो रहा है, यदि प्रतिभास मात्रके अन्तर्गत हो तो प्रतिभास हो ही नहीं सकता। यह भेद जो सबको दिख रहा है यह भेद कैसे हुआ? प्रतिभासमात्र उनका जनक नहीं हो सकता। जो एक है वह अपनेसे उत्पन्न नहीं होता, याने एक ही स्वयं जन्य हो और वही जनक हो यह बात नहीं बनती। तो जो भी बताया गया है—कर्म दो हैं, फल दो हैं, लोक परलोक हैं विद्या अविद्या है तो जैसे ये स्वयं प्रतिभासमान प्रमाणके विषय हैं इसी तरह बन्ध मोक्ष ये भी स्वयं प्रतिभासमान प्रमाणके विषय हैं और इनका प्रतिभास हो रहा है, पर है प्रमेयरूपसे व्यवस्था। ज्ञानमें आ रहे हैं, पर ये प्रतिभासमात्रके अन्तर्गत नहीं कहे जा सकते। तो इस तरह प्रतिभासमात्रसे भिन्न ये प्रमेय न माने जायें तो प्रमाणकी भी व्यवस्था नहीं बन सकती। आगम आदिककी भी व्यवस्था नहीं बन सकती। और, स्याद्वादी ही नहीं किन्तु वैशेषिक नैयायिक सांख्य आदिक अनेक दार्शनिकोंके द्वारा स्वीकार किया गया है कि अनेक पदार्थ हैं। तो उनके स्वीकारसे भी पुरुषाद्वैतमें बाधा आती है। वे सभी पदार्थ जितने माने हैं किसी न किसी रूपमें वे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान विशेषसे प्रतिभासमान हैं और उनको प्रतिभासमात्र नहीं कह सकते प्रतिभासमात्र तो एक ज्ञानमात्र तत्त्व है। तो यों मोक्षमार्गका प्रणेता एक प्रतिभासमात्र परम पुरुष भी नही व्यवस्थित होता। इस तरह जब अन्य किसीकी सर्वज्ञताका सद्भाव नहीं बनता तो मोक्षमार्गका प्रणेतापन भी नहीं बनता। तब क्या सिद्ध हुआ इसको आचार्य देव कारिकामें कहते हैं।

सोऽर्हन्नेव मुनीन्द्राणां वन्द्यः समवतिष्ठते।
तत्सद्भावे प्रमाणस्य निर्बाध्यस्य विनिश्चयात् ॥ ८७ ॥

वीतराग सर्वज्ञ अर्हन्तके ही मुनीन्द्रवन्द्यता—जो मोक्षमार्गका प्रणेता है, सर्वज्ञ है, कर्मभूभृतका भेत्ता है वह अरहंत ही है। और वही मुनीन्द्रों द्वारा वंदनीय है। यहाँ किसी व्यक्तिका नाम अरहंत नहीं है, किन्तु जिसका आत्म श्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणरूप समाधिके बलसे अपने आत्म-प्रकाशमें ही अपना उपयोग लगाया है, वहाँ ही वह मग्न करता है, उसके प्रतापसे कर्मपहाड़ नष्ट हुए हैं, सर्वज्ञता प्रकट हुई है और धर्मविशेषके कारण दर्शनविशुद्धि भावनाके कारण जो एक तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध हुआ था, उसका अभ्युदय प्राप्त हो तो वह ही मोक्षमार्गका प्रणेता है। ऐसा कोई भी पुरुष हो वह मोक्षमार्गका प्रणेता है। क्योंकि अरहंतके सद्भावमें निर्बाध प्रमाण मौजूद है। जिस प्रमाणमें बाधा न आये और निश्चित हो ऐसे प्रमाण द्वारा अरहंतके सर्वज्ञपना, कर्मपहाड़का भेदनपना और मोक्षमार्गका प्रणयन सिद्ध होता है। ऐसा वह कौन सा प्रमाण है जो अरहंतकी इन तीन विशेषताओंको सिद्ध करता है? तो सुनो!

ततोऽन्तरिततत्त्वानि प्रत्यक्षाण्यर्हतोऽञ्जसा।
प्रमेयत्वाद्यथाऽस्मादृक्प्रत्यक्षार्थाः सुनिश्चिताः ॥ ८८ ॥

अर्हंतके अन्तरित तत्त्वोंके स्पष्ट प्रत्यक्ष होनेकी प्रमाणसे सिद्धि—अरहंतके सर्वज्ञत्व कर्मभूभृत्त्व और मोक्षमार्ग प्रणेतत्त्व सिद्ध करनेके लिए ये प्रमाण दिये जा रहे हैं तो सबसे पहिले सर्वज्ञताकी सिद्धिमें कह रहे हैं कि अंतरित पदार्थ अर्थात् जो देशसे दूर हो, कालसे दूर हो और स्वभावसे सूक्ष्म हो वह पदार्थ अरहन्त भगवानकी अवस्थामें प्रत्यक्ष हो रहे हैं, क्योंकि प्रमेय है, जैसे हम लोगोंके द्वारा सुनिश्चित जो प्रत्यक्षभूत पदार्थ हैं वे प्रत्यक्ष हो रहे हैं। जैसे हमें अपने प्रत्यक्ष पदार्थ अर्थात् जो देशसे दूर हो, कालसे दूर हो और स्वभावसे सूक्ष्म हो वह पदार्थ अरहंत भगवानकी अवस्थामें प्रत्यक्ष हो रहे हैं, क्योंकि प्रमेय हैं। जैसे हम लोगोंके द्वारा सुनिश्चित जो प्रत्यक्षभूत पदार्थ हैं वे प्रत्यक्ष हो रहे हैं। जैसे हमें अपने प्रत्यक्ष पदार्थ का निश्चित रूपसे प्रत्यक्ष ज्ञान बन रहा है उसी प्रकार अरहंतको भी अंतरित पदार्थों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

का यथार्थरूपसे प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। अंतरित पदार्थके मायने क्या है ? कि जो देश काल और स्वभावसे अंतरित हो।

अन्तरित तत्त्वोंकी प्रत्यक्षगोचरताके प्रतिकूल शङ्काकारकी शङ्का—यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि उन अंतरित पदार्थोंकी सत्ता सिद्ध करनेमें कोई प्रमाण नहीं बन रहा है। हम लोगोंका प्रत्यक्ष तो काम नहीं दे रहा कि उन अन्तरित पदार्थों को जानें, क्योंकि बहुत दूर देशके बहुत दूर कालके और स्वभावसे जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं ऐसे पदार्थ हम लोगोंके प्रमाणके विषय नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो वह है जो इंद्रिय के साथ आत्माका सम्बन्ध बनकर ज्ञान उत्पन्न हो। तो उन अन्तरित पदार्थोंकी प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो सिद्धि है नही, अनुमान प्रमाण भी उन अन्तरित पदार्थोंका सद्भाव सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि उनका सिद्ध करने वाला कोई अविनाभावी लिङ्ग नहीं है जिस साधनको देखकर निश्चित रूपसे यह कहा जा सके कि यह है अन्तरित पदार्थ. आगम प्रमाण भी अन्तरित पदार्थके सद्भावका साधक नहीं हो सकता, क्योंकि आगम तो अपने स्वरूप विषयमें ही प्रमाण है और आगमको अपौरुषेय भी कहा जाता है। जो अपौरुषेय आगम है वह तो अपने स्वरूपके विषयमें ही प्रमाण है और जो अपौरुषेय नहीं है याने किसी पुरुषके द्वारा रचे गये हैं उनमें प्रमाणता सम्भव नहीं है। यदि कोई यह कहे कि जो सर्वज्ञ प्रणीत पौरुषेय प्रकाश हैं उनसे सर्वज्ञकी सिद्धि कर ली जायगी। तो पहिले सर्वज्ञ सिद्धि तो करलें फिर सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत आगमकी दुहाई दी जा सकती है। अर्थापत्ति प्रमाण भी अन्तरित पदार्थोंका सद्भाव सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि जो देश, काल, स्वभावसे विप्रकृष्ट हैं याने दूरवर्ती हैं, उन पदार्थोंके बिना जो उत्पन्न न हो, ऐसा कोई पदार्थ दीखता ही नहीं है। किसी भी प्रमाणसे सिद्ध ही नहीं है, तो अर्थापत्ति भी अंतरित पदार्थोंके परिचयमें साधक नहीं होसकती। उपमान प्रमाण तो अन्तरित पदार्थोंका अस्तित्व कैसे सिद्ध करे ? उनके समान कोई उपमानभूत पदार्थ मिले तब कहा जाय कि उपमान प्रमाणसे अन्तरित पदार्थोंका सद्भाव सिद्ध हुआ है। इस प्रकार जब सत्त्वका सद्भाव सिद्ध करने वाले ५ प्रमाण अंतरित पदार्थोंकी सिद्धिमें साधक नहीं हैं तो कैसे कहा जा सकता कि कोई अन्य अन्तरित दूरवर्ती सूक्ष्म पदार्थ है। तो जब अंतरित पदार्थ ही सिद्ध नहीं हो सकता तो हेतु किसमें रहे ? किसको प्रत्यक्ष सिद्ध करे ? तो हेतुमें आश्रयासिद्ध दोष होता है।

अन्तरित तत्त्वोंकी ज्ञानगोचरता सिद्ध करते हुए उक्त शङ्काका समाधान—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि अन्तरित पदार्थोंकी सत्ता सिद्ध करने वाला प्रमाण निर्बाध है। देखो ! स्फटिक काँच आदिकका स्फटिक पदार्थ तो हमें प्रत्यक्षसे ही सिद्ध हो रहा है, किसी काँचके पीछे कोई पदार्थ हो तो उसका हमें ज्ञान हो रहा कि नहीं ? तो व्यवहित याने अंतरित पदार्थ ज्ञेय हो सकता है, यह बात

Version 1

तो हम अपने इस ज्ञानसे ही समझ सकते हैं। और, कोई अन्तरित पदार्थ ऐसा होता है जो अनुमान द्वारा जान लिया जाता है। जैसे दीवालके पीछे आग जल रही है, पर हम धुवाँको देखकर ज्ञान कर लेते हैं कि यहाँ आग है तो देखो वह दीवालसे व्यवहित है आग लेकिन उसका परिचय हमने अनुमानसे कर लिया, इसी प्रकार कालसे व्यवहित पदार्थ भी जान लिया जाता है। जैसे अभी आध' पौन घण्टेमें वर्षा होने वाली हो तो हम उसी वर्षाका अस्तित्व विशिष्ट मेघ आकाशमें छाये मेघको देखकर कर लेते हैं तो यह एक माद्दा है कि भावी पदार्थ भी जान लिए जाते हैं इसी तरह अतीत पदार्थमें ज्ञानमें आ जाता है। जैसे अग्नि आदिक पदार्थ अब नहीं रहे, वे जलकर राख हो गए तो उस राखको देख करके यह तो समझ लेते हैं कि अग्नि थी। और इन्द्रियकी शक्तियाँ ये स्वभावसे व्यवहित हैं अर्थात् सूक्ष्म बातें हैं। पर इन्द्रिय शक्तियोंको भी हम अर्थापत्तिसे जान लेते हैं, आँखमें देखनेकी शक्ति है। इस शक्तिको क्या किसीने प्रत्यक्ष समझा है ? नहीं समझा। लेकिन चूंकि हम रूपका परिचय करते हैं तो इस रूप ज्ञान के कारण यह जानकारी सही बनती है कि मेरे आँखमें देखनेकी शक्ति है तो इस तरह अंतरित पदार्थ प्रसिद्ध है। तब यह नहीं कहा जा सकता कि हेतु आश्रयासिद्ध है, अन्तरित पदार्थ है और अन्तरित पदार्थोंका ही किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत सिद्ध किए जा रहे हैं। अब यहाँ कोई शङ्का कर रहा है कि हम लोगोंके प्रत्यक्ष अनुमानमें आने वाले व्यवहित पदार्थ भी सिद्ध हो जायें और इस तरह हेतुमें आश्रयासिद्ध दोष भी न रहे, लेकिन प्रकृत अनुमान तो अप्रसिद्ध विशेषण है, अर्थात् जो पक्ष बनाया गया है उसका विशेषण असिद्ध है। पक्ष यह बनाया गया है कि अन्तरित पदार्थ अरहंत भगवानके प्रत्यक्ष है तो अरहंतकी प्रत्यक्षता कहीं भी सिद्ध नहीं हो सकती। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शङ्का करना योग्य नहीं है। पहिली बात समझिये—योग्य पुरुष विशेषका नाम अरहंत है ऐसे योग्य पुरुषके प्रत्यक्ष ज्ञान रहे इसमें, किसी प्रकार का विरोध नहीं है। तो अरहंतके प्रत्यक्षता है, वह योग्य पुरुष है, उसकी प्रत्यक्षताकी बात कही जा रही है। यदि सम्बद्ध वर्तमान आदिक पदार्थोंमें अरहंतकी प्रत्यक्षताका विरोध हो तो फिर अन्य किसीके भी द्वारा माने गये किसी पुरुषकी प्रत्यक्षता सिद्ध नहीं हो सकती। उक्त बात सुनकर शङ्काकार यहाँ अपना आशय यह दिखा रहा है है कि अन्तरित पदार्थ अरहंतमें प्रत्यक्ष है, यह बात तो उपचारसे सिद्ध हुई। जैसे कि ऊपर योग्य पुरुषकी बात कहकर बताया जा रहा है। तो इस तरहकी बात मानना उसके लिए सिद्ध साधन ही है। किसी विशेष पुरुषमें उपचारत: भी बात कही जा सकती है। उसका हमें कोई विरोध नहीं है। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का करना यों ठीक नहीं कि हम अरहंत भगवानके परमार्थ प्रत्यक्षकी बात कह रहे हैं। उपचार प्रत्यक्षकी बात नहीं कह रहे, और इस कारण न हेतुमें सिद्ध साधन दोष है और न आश्रयासिद्ध दोष है। अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि जो यह अनुमान बनाया है कि अन्तरित पदार्थ अरहंत भगवानके प्रत्यक्ष है, क्योंकि प्रमेय है तो यह हेतु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

विपक्षमें रहनेसे अनेकांतिक दोषसे दूषित है याने प्रमेय होनेसे वह प्रत्यक्ष ही हो सो बात नहीं, किन्तु अप्रत्यक्षमें भी प्रमेयपना पाया जाता है । इस आशङ्काको दूर करने के लिए एक कारिका कहते हैं ।

हेतोर्न व्यभिचारोऽत्र दूरार्थैर्मन्दरादिभिः ।
सूक्ष्मैर्वा परमाण्वाद्यैस्तेषां पक्षीकृतत्वतः ॥ ८९ ॥

सभी अन्तरित पदार्थोंका भी पक्षी करण होनेसे प्रमेयत्व हेतुमें अनैकान्तिक दोषकी अनुपपत्ति—दूर देशवर्ती मेरु आदिक पदार्थ अथवा सूक्ष्म परमाणु आदिक पदार्थके साथ हेतुका अनैकान्तिक दोष नहीं होता, क्योंकि उनको यहाँ पक्षमें बताया गया है । याने जितने भी दूरदेशवर्ती पदार्थ हैं या सूक्ष्म पदार्थ हैं या बहुत अतीत भविष्यकालके पदार्थ हैं उन सबको पक्षमें ही दिखाया गया है कि वे सभी पदार्थ अरहंतके प्रत्यक्ष हैं । तो प्रमेयत्व हेतु तो अनैकान्तिक तब बनता कि जिसको पक्षमें नहीं बताया है ऐसे विपक्षमें हेतु चला जाता, लेकिन विपक्ष कोई मिलेगा ही नहीं । जितने भी अंतरित पदार्थ हैं वे सभी पदार्थमें दिखाये गए हैं अतएव प्रमेयत्व हेतुका दोषी बताना युक्त नहीं है । अनैकान्तिक दोषका अर्थ यह है कि हेतु सपक्षमें भी पाया जाय और विपक्षमें भी पाया जाय । तो जो हेतु विपक्षमें पाया जाता हो उस हेतुके ज्ञायकता नहीं बन सकती । किन्तु यहाँ जितने भी अन्तरित पदार्थ हैं सभी पक्ष के अन्तर्गत हैं । तो हेतु पक्षमें पाये जा रहे हैं, विपक्षमें कहीं भी नहीं पाया जा रहा है इस कारण इस हेतुको अनैकान्तिक दोषसे दूषित नही कह सकते । इस बातको भी स्पष्ट कर सकते हैं ।

तत्त्वान्यन्तरितानीह देश-काल-स्वभावतः ।
धर्मादीनि हि साध्यन्ते प्रत्यक्षाणि जिनेशिनः ॥ ९० ॥

जिनेश्वरके धर्मादिक सभी अन्तरित तत्त्वोंकी प्रत्यक्ष गोचरता—सर्वज्ञताकी सिद्धिके लिए जो अनुमान प्रयोग किया गया है उस अनुमानमें देश, काल और स्वभावसे अन्तरित धर्मादिक पदार्थ जिनेन्द्रके प्रत्यक्ष हैं ऐसा सिद्ध किया गया है । देखिये ! कितने ही पदार्थ तो देशसे अन्तरित हैं । जैसे धर्म, अधर्म तत्त्व देशसे अन्तरित हैं, अन्य देशमें रहने वाले पुरुषोंके आश्रयसे हैं । कोई पदार्थ कालसे अन्तरित है याने कालसे अन्तरित प्राणियोंमें भूतकालमें या भविष्यकालके प्राणियोंमें रहने वाले हैं । कोई पदार्थ स्वभावसे अन्तरित है याने वह यद्यपि इस देशमें है, इस कालमें है, तो भी स्वभावसे सूक्ष्म है, अतीन्द्रिय है, इन्द्रियके द्वारा विषयभूत नहीं होता । तो जो पदार्थ अतीन्द्रिय है वह स्वभावसे अन्तरित कहलाता है । तो ऐसे ये सभी पदार्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और उसी प्रकारसे हिम्मान, मेरुपर्वत, असंख्याते द्वीप समुद्र ये देशसे अंतरित हैं वे भी अरहंत भगवानके प्रत्यक्ष सिद्ध किये जा रहे हैं। जो पर्यायें नष्ट हुई हैं और जो पर्याय उत्पन्न नहीं हुई, भविष्यमें होंगी वे पर्यायें कालसे अन्तरित कहलाती हैं, वे सब अरहंत भगवानके प्रत्यक्ष हैं और परमाणु वगैरह स्वभावसे अन्तरित पदार्थ हैं, क्योंकि ये इन्द्रियके विषयभूत नहीं हैं। वे सब भी जिनेन्द्रके प्रत्यक्ष सिद्ध किए जा रहे हैं। तो जब ये सभी पदार्थ पक्षके अन्तर्गत हैं तो हेतु अब व्यभिचारी नहीं कहा जा सकता। यदि पक्षके अन्तर्गत पदार्थोंमें हेतुकी पहिचानपर व्यभिचारी बताया जाय तो सारे अनुमान इस तरह व्यभिचारी बन जायेंगे।। यहाँ शङ्काकार कहता है कि सर्वज्ञता की सिद्धि करने वाला जो अनुमान बताया है उसका हेतु व्यभिचारी तो भले ही न हो लेकिन दृष्टान्त तो साध्य विकल है। याने दृष्टान्तमें साध्य नहीं रहता है, अथवा दृष्टान्त भी उसका कोई स्पष्ट नहीं विदित होता है। इस शङ्काके समाधान में कहते हैं—

न चास्मादृक्समक्षाणामेवमर्हत्समक्षता।
न सिद्ध्येदिति मन्तव्यमविवादाद्‌ द्वयोरपि ॥ ९१ ॥

अनन्तरित पदार्थोंकी भी सर्वज्ञज्ञानगोचरता होनेसे प्रमेयत्वहेतुके दृष्टान्तमें साध्यविकलता दोषकी अनुपपत्ति—कुछ लोगोंके प्रत्यक्षभूत पदार्थ अरहंत भगवानके भी प्रत्यक्ष हैं ही। यहाँ यह न समझना चाहिए कि हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत पदार्थ हैं उनमें अरहंत भगवानकी प्रत्यक्षता नहीं होगी, क्योंकि इसमें दोनों का भी विवाद नहीं है। वादी और प्रतिवादी सभी यह समझ रहे हैं कि जो पदार्थ हम लोगोंके प्रत्यक्ष हो सकते हैं वे पुरुष विशेष अरहंतके प्रत्यक्ष क्यों न होंगे? यदि हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत पदार्थसे अरहंतके प्रत्यक्ष न माना जाय तो उस देश और उस कालमें रहने वाले दूसरे पुरुषोंको भी उनका प्रत्यक्ष न हो. क्योंकि अब तो यह हठ बना ली है कि जो हम लोगोंको प्रत्यक्षभूत पदार्थ हो रहे हैं ज्ञानमें, उनका प्रत्यक्ष अन्यसे नहीं हुआ करता। अरे, जो हमको प्रत्यक्ष हैं वे जिनेश्वरके प्रत्यक्ष तो होंगे ही, दृष्टान्त यहाँ दिया गया था कि हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत पदार्थ। तो शङ्काकारने यह आपत्ति की थी कि दृष्टान्त साध्यविकल है। साध्य यह है कि जिनेश्वरके प्रत्यक्षभूत है। दृष्टान्त यह दिया कि जैसे हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत पदार्थ तो। तो हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत पदार्थमें अरहंतकी प्रत्यक्षता नहीं है, ऐसा सोचकर शङ्काकारने दृष्टान्तको साध्यविकल बताया था। लेकिन दृष्टान्त साध्यविकल नहीं है। जिन पदार्थोंको हम जैसे साधारण पुरुष भी प्रत्यक्षसे जानते हैं और जो सम्बद्ध है, मौजूद भी हैं उन पदार्थोंको तो अरहंत जानते ही हैं। उनमें किसको विवाद हो सकता। क्योंकि अरहंत तो हम लोगोंकी अपेक्षासे विशिष्ट पुरुष हैं। कोई भी उनमें विवाद नहीं करता। तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टान्तको साध्यविकल नहीं कहा जा सकता। शङ्काकार यहां पूछता है कि सर्वज्ञवादी अरहंतके प्रत्यक्ष सिद्ध कर रहे हैं अन्तरित पदार्थोंको तो भला अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे अन्तरित पदार्थोंको अरहंत प्रत्यक्ष बताया जारहा है या इंद्रिय प्रत्यक्षके द्वारा प्रत्यक्ष बताया जारहा, सिद्ध किया जा रहा कि जिनेश्वरके सारे अंतरित पदार्थ प्रत्यक्षमें विषयभूत हैं तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा वे जान रहे हैं या इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा वे जान रहे हैं ? यदि यह कहा जाय कि अरहंत तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा अन्तरित पदार्थोंको जान रहे हैं तो ऐसा सिद्ध करनेमें दृष्टान्त साध्यविकल हो जायगा। इस अनुमानमें दृष्टान्त यह दिया गया है कि हम लोगोंके प्रत्यक्षा तो हम लोगोंके प्रत्यक्ष किसी अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है तो हम लोगोंके प्रत्यक्षभूत पदार्थोंमें अतीन्द्रिय प्रत्यक्षमें अरहंतमें प्रत्यक्षता नहीं है। यदि कहा जाय कि इन्द्रिय प्रत्यक्षसे ही वह सर्वज्ञ बन जायगा, अन्तरित पदार्थोंका ज्ञाता हो जायगा तो यह पक्ष प्रमाण बाधित है। इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा अन्तरित पदार्थोंका परिचय नहीं हो सकता। धर्म अधर्म आदिक या दूर देशवर्ती, दूरकालवर्ती पदार्थ ये इन्द्रिय प्रत्यक्षके विषयभूत कहां हैं ? उसे इस तरह भी सिद्धकर सकते हैं कि अरहंतका इन्द्रिय प्रत्यक्ष धर्मादिक अंतरित पदार्थोंको जाननेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। जैसे कि हम लोगोंका इन्द्रिय प्रत्यक्ष अन्तरित पदार्थोंको जाननेमें समर्थ नहीं है। इस अनुमानसे इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा अरहंतके द्वारा सर्वज्ञता नहीं बन सकती। इस अनुमानमें हमारा हेतु न तो अंजन सहित चक्षु प्रत्यक्षके साथ व्यभिचारी है और न ईश्वरके इन्द्रिय प्रत्यक्षके साथ व्यभिचारी है याने चक्षु इन्द्रिय धर्म अधर्म आदिकको साक्षात् नहीं जान सकता कि कैसा ही विशिष्ट अंजन लगा लो उससे अंतरित पदार्थ नहीं जाना जा सकता। और ईश्वरवादियोंने ईश्वरको इन्द्रिय प्रत्यक्ष माना नहीं अतः उससे भी दोष नहीं दिया जा सकता। इस तरह जिनेश्वर न तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्षमें सर्वज्ञ है और न इन्द्रिय प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ हो सकता है।

प्रत्यक्ष सामान्यसे अर्हंतके प्रत्दक्षत्वकी सिद्धिके पश्चात् अतीन्द्रिय प्रत्यक्षत्वकी सिद्धि—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यहां अरहंतमें सर्वज्ञत्वमें यों बाधा नहीं आती कि हम प्रत्यक्ष सामान्यसे अन्तरित पदार्थोंको अरहंतका प्रत्यक्षपना सिद्ध हो जाता है तब धर्मादिक पदार्थोंके साक्षात्कार करने वाले प्रत्यक्षको हेतुवों से अतीन्द्रिय प्रत्यक्षरूप सिद्ध करते हैं इसी कारण दृष्टान्तमें साध्यविकलताका दोष नहीं आता। शङ्काकारने जो यह कहा था कि अरहंतको इन्द्रिय प्रत्यक्षसे अथवा अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे प्रत्यक्ष ज्ञान माननेपर वहां साध्य विकलताके दोष आते हैं सो बात नहीं है, क्योंकि हम पहिले प्रत्यक्ष सामान्यसे अन्तरित पदार्थोंका प्रत्यक्षपना सिद्ध कर रहे हैं फिर युक्तियोंसे उनका अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष सिद्ध करते हैं। यदि इस प्रकारमें भी बाधायें बतायी जायें तो फिर शङ्काकारके इष्ट अनुमानमें भी साध्यविकलताका दोष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आ जायगा, सो देखिये! शङ्काकार शब्दको नित्य स्वीकार करता है और उसको सिद्ध करनेके लिए अनुमान बनाता है कि शब्द नित्य है क्योंकि वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। जैसे कि आत्मा। आत्मा इस प्रत्यभिज्ञानका विषय है याने यह वही है इस प्रकारका आत्मामें बोध होता है तो वह प्रत्यभिज्ञानका विषय है। इसी प्रकार शब्द भी प्रत्यभिज्ञानका विषय है यह वही शब्द है जिसे कल सुना था। तो यों प्रत्यभिज्ञान का विषय होनेसे शब्दको नित्य सिद्ध किया जा रहा है। तो शङ्काकार सर्वज्ञका अभाव मानने वालेका एक यह अनुमान है, इस अनुमानके बारेमें शङ्काकारसे पूछा जाय कि यहाँ शब्दको जो नित्य सिद्ध किया जा रहा है तो क्या कूटस्थ नित्य सिद्ध किया जा रहा या दूसरे काल तक ठहरने वाला नित्य सिद्ध किया जा रहा है? यदि कहें वे कि हम कूटस्थ नित्य सिद्ध करते हैं तो पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है। शब्दमें जो विशेषण दिया है कि वह कूटस्थ नित्य है तो कूटस्थपना किसी दूसरे पदार्थमें प्रसिद्ध तो नहीं है और यदि कूटस्थ नित्य हो कुछ भी जैसी कि शब्दमें कल्पना की जा रही है कि कूटस्थनित्यमें प्रत्यभिज्ञान घटित नहीं होता क्योंकि कूटस्थ नित्यका अर्थ यह है कि मेरी न कुछ पूर्वमें पर्याय है न उत्तरमें पर्याय है तो पूर्व और उत्तर पर्यायसे जो रहित होता है वह प्रत्यभिज्ञानका विषय नहीं होता। प्रत्यभिज्ञान तो पूर्व और उत्तर पर्याय में रहने वाले एक वस्तुके सम्बन्धमें होता है, पर कूटस्थ नित्यका तो अर्थ यह हुआ कि न कोई पूर्वमें पर्याय होती न कोई उत्तरमें पर्याय होती तो उसमें प्रत्यभिज्ञान ही सम्भव नहीं है तथा और भी देखिये! कूटस्थ नित्यता पुरुषमें नहीं मानी गई है क्योंकि वह सातिशय परिणामी नित्य है। उसमें अतिशय है, परिणमन है, कुछ तरगें होती हैं। कूटस्थ नित्य नहीं है। उसका तो साध्य विकल भी हो गया। शङ्काकारका अनुमान तो शब्दको कूटस्थ नित्य मानकर वह अनुमान नहीं बना। अब यदि कहा जाय कि शब्द कूटस्थ नित्य नहीं है किन्तु दूसरे काल तक ठहरने वाला नित्य है तो ऐसा तो शङ्काकारके मतमें माना ही नहीं गया। दूसरे काल तक ठहरा रहे ऐसा नित्य शब्दको नहीं माना। यदि शङ्काकार यह कहे कि हम पहिले शब्दको सामान्यतया नित्य सिद्ध करते हैं तब यही उत्तर प्रस्तुत अनुमानमें भी लगा लीजिए कि अन्तरित पदार्थोंमें आप प्रत्यक्ष सामान्यसे अरहंतको प्रत्यक्षता सिद्ध कर रहे हैं उसमें भी कोई दोष नहीं है तब अरहद प्रत्यक्षपना सिद्ध करने वाले अनुमानमें न तो अप्रसिद्ध विशेषणका दोष आता है। और न यह दोष आता है कि दृष्टान्त साध्य विकल है। यों अरहंत भगवानके समस्त अंतरित प्रत्यक्ष है यह सिद्ध हो जाता है।

न चासिद्धं प्रमेयत्वं कात्स्न्यर्तो भागतोऽपि वा।
सर्वथाऽप्यप्रमेयस्य पदार्थ स्याव्यवस्थितेः ॥ ९२ ॥
यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात्सर्वज्ञः केन वार्यते।
इति ब्रुवन्नशेषार्थप्रमेयत्वमिहेच्छति ॥ ९३ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चोदनातश्च निःशेष पदार्थज्ञान सम्भवे।
सिद्धमन्तरितार्थानां प्रमेयत्वं समक्षवत् ॥ ९४ ॥

विश्वज्ञता सिद्ध करनेमें प्रमेयत्व हेतुकी शक्तता—अरहंतके समस्त पदार्थ प्रत्यक्षभूत हैं, इसको सिद्ध करनेके लिए हेतु दिया गया है प्रमेयपना। चाहे देशसे अन्तरित हो कालसे अन्तरित हो, स्वभावसे अंतरित हो, चूंकि वह प्रमेय है इस कारण वह अवश्य ही अरहंत सर्वज्ञदेवके प्रत्यक्ष है, तो यहाँ जो प्रमेयत्व हेतु दिया है उसके सम्बन्धमें कोई यह शङ्का न करे कि प्रमेयत्व हेतु असिद्ध है। ऐसी शङ्का करने वाले न तो सम्पूर्णपनेसे असिद्ध बता सकेंगे हेतुको और न एकदेशरूपसे भी असिद्ध बता सकेंगे। क्योंकि जो सर्व प्रकार अप्रमेय हो ऐसा कुछ भी पदार्थ नहीं होता सभी पदार्थ किसी न किसी प्रमाणके विषयभूत हुआ करते हैं अतएव प्रमेय ही होता है। और, भी देखिये ! जो लोग ऐसा कह रहे हैं कि ६ प्रमाणोंसे सर्वज्ञ कोई सिद्ध करे तो उसका हम निराकरण नहीं करते। शंकाकारका यह सिद्धान्त है कि कोई सर्वज्ञ अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा नहीं किन्तु छहों प्रमाणोंसे किसी प्रमाणसे कुछ, किसी प्रमाणसे कुछ जाना इस तरह छहों प्रमाणोंसे सर्वज्ञ है कोई, ऐसा माने तो हम मना नहीं करते। ऐसा जो शंकाकारने कहा है उससे भी यह सिद्ध होता है कि सारे पदार्थ प्रमेय अवश्य हैं। अब रह गया उनकी जानकारीकी पद्धतिमें विवाद, पर इतना तो सामान्यतया मान ही लें कि समस्त पदार्थ प्रमेय हैं। चाहे किसी प्रमाणके द्वारा समझा जाय। और, भी देखिये ! जो लोग ऐसा कहते हैं कि समस्त पदार्थोंका ज्ञान वेदसे सम्भव है तो ऐसा कहने वालोंने इतना तो स्वीकार कर ही लिया कि सारे पदार्थ प्रमेय होते हैं। अब वह प्रमेय किस साधनसे होता है यह एक विषय अलग है, पर यह तो किया ही गया कि सभी पदार्थ प्रमेय होते हैं। तो प्रमेयपना असिद्ध नहीं है। चाहे कोई छहों प्रमाणोंसे अर्थ व्यवस्था स्वीकार करे तो उसने भी यह तो मान ही लिया कि समस्त पदार्थोंका ज्ञान हो सकता है याने सभी पदार्थ प्रमेय होते हैं या जिन्होंने वेदोंको माना है कि सर्व पदार्थोंका ज्ञान सम्भव है तो उन्होंने भी यह स्वीकार कर लिया कि सभी पदार्थ प्रमेय होते हैं। तो प्रमेयपना हेतुको असिद्ध नहीं कह सकते कि वह पक्षमें पाया नहीं जाता।

प्रमाता प्रमेय आदि सभी तत्त्वोंकी प्रमेयरूपता—शंकाकार कहता है कि देखिये ! चार चीजें हुआ करती हैं-१ प्रमाता, २ करण, ३ फल, और ४ प्रमिति। प्रमाताका अर्थ है जानने वाले। याने आत्मा। करणका अर्थ है जिसके द्वारा जाना जाता है याने ज्ञान और फल है वह जो जानकारी बनी है। और प्रमिति क्रिया कही जाती है जाननेकी क्रिया। तो प्रमेयपना अलग चीज है और प्रमाता, करण, फल, प्रमिति, ये अलग चीज हैं। प्रमेयपना तो केवल कर्मरूप प्रमेय पदार्थमें है। प्रमाताने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिस पदार्थको जाना उस पदार्थमें ही प्रमेयपना है। प्रमातामें प्रमेयत्व न रहा, करण ज्ञानमे प्रमेयत्व न रहा, फल ज्ञानमें प्रमेयत्व नहीं है और प्रमिति क्रियामें प्रमेयत्व नहीं प्रमेयमें ही तो प्रमेयत्व होता है याने प्रमाणसे जो विषयभूत पदार्थ है उसमें ही प्रमेयपना है। तो लो देखो प्रमेयपना हेतु भागा सिद्ध हो गया याने समस्त पदार्थोंमें न रह सका। पक्ष तो यह था कि सभी पदार्थ प्रमेय होते हैं। अब सब कहाँ प्रमेय हुए? केवल प्रमाणके विषयभूत पदार्थ ही प्रमेय कहलाते हैं। प्रमाता प्रमिति आदिक तो प्रमेय न हो सकेंगे। तो यों प्रमेयत्व हेतु असिद्ध दोषसे दूषित होता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका उक्त कथन विवेक पूर्वक नहीं है क्योंकि प्रमाता, करण, फल, ज्ञान, प्रमिति ये सबके सब प्रमेय हैं। यदि आत्मा सर्वथा अप्रमेय हो तो जैसे प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा वह नहीं जाना जाता उसी तरह अनुमानसे भी न जाना जा सकेगा। यद्यपि कर्मरूपसे आत्मा प्रत्यक्ष द्वारा प्रतीत नहीं होता कि लो जैसे हमने चौकीको जाना इस तरह लो आत्माको जाना। तो यह तो शंकाकारका अपना खुद का अभिमत है और ऐसा भी मान लिया जाय तो इसमें यह निषेध तो नहीं होता कि वह किसी भी प्रमाणसे प्रतीत नही होता। यदि आत्मा किसी भी प्रमाणके द्वारा प्रतीत न हो तो आत्माकी व्यवस्था नहीं बन सकती। इसी तरह करणज्ञान फलज्ञान और प्रमितिके सम्बन्धमें भी समझ लेना चाहिए कि वे पदार्थ यद्यपि कर्मरूपसे प्रतीत नहीं होते, मगर करणरूपसे क्रियारूपसे प्रतीत तो हो रहे हैं। शंकाकारका यह कथन था कि जैसे एक ज्ञानकी यह मुद्रा बनी कि मैं ज्ञानके द्वारा घटकी जानकारी कर रहा हूं घटको जान रहा हूं तो इस ज्ञान मुद्रामें घट प्रमेय रहा। जाना किसे गया? घट को। तो वहाँ घटके सिवाय आत्मा ज्ञान आदिक कुछ प्रमेय न रहे, लेकिन शंकाकार की यह बात उचित यों नहीं है कि कर्मरूपसे प्रमेय तो न रहा मगर कर्तारूपसे आत्मा प्रमेय है। प्रतीतिमें आ रहा है। करणरूपसे ज्ञानमें आ रहा है। क्रियारूपसे वह जानन क्रिया प्रतीतिमें आ रही है। तो करणज्ञान प्रत्यक्षमें कर्मरूपमें प्रतीत नहीं हो रहा फिर भी ज्ञानके बिना घट आदिक पदार्थोंकी जानकारी नहीं हो सकती। इस अनुमानसे ज्ञानका ज्ञान तो हो रहा है। इस कारण कारणभूत ज्ञानको सर्वथा अप्रमेय नहीं कह सकते। अन्यथा शंकाकारने स्वयं यह स्वीकार किया है, सिद्धान्तमें बताया है कि ज्ञाता होकर प्रमाता अनुमानसे विधिको जानता है। तो लो प्रतीतिकी बात आ गई ना! अब इस वचनके साथ विरोध आ गया। यहाँ हठ यह की जा रही थी कि प्रमेय तो केवल कर्म ही होता है। प्रमाता प्रमिति आदिक नहीं लेकिन यहाँ कुछ और ही कह दिया। तो आत्मा भी प्रमेय है करणभूत ज्ञान भी प्रमेय है और फल ज्ञान भी प्रमेय है, फलज्ञानको तो शंकाकारके मित्र प्रभाकरने सुसम्वेदन प्रत्यक्षसे और अर्थ क्रियारूप अनुमानसे ज्ञाता माना है। तो फलज्ञान भी अप्रमेय न रहा। इस तरह प्रमाता, प्रमिति और करण ज्ञान ये सभी प्रमेय हो जाते हैं। तो प्रमेयपना हेतु भागासिद्ध नहीं है क्या? जो कुछ भी ज्ञानमें आया वह सब प्रमेय है प्रमेयपना समस्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वस्तुओंमें पाया जाता है। इस तरह जो प्रकृत अनुमान बताया गया कि समस्त अंतरित पदार्थ अरहंतके प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि प्रमेय हैं। यों प्रमेयपना हेतु समस्त पदार्थोंमें सूक्ष्म स्थूल अंतरित और स्पष्ट सभी पदार्थोंमें प्रमेयपना हेतु सिद्ध होता है।

यन्नार्हतः समक्षं तन्न प्रमेयं बहिर्गतः ।
मिथ्यैकान्तो यथेत्येवं व्यतिरेकोऽपि निश्चितः ॥ ९५ ॥

सर्व तत्त्वोंकी प्रमेयता व अर्हत्प्रत्यक्षता—उक्त प्रसङ्गमें यह बता दिया गया था कि प्रमेयपना हेतु असिद्ध नहीं है। अब इस कारिकामें यह बतला रहे हैं कि प्रमेयपना हेतु संदिग्ध व्यतिरेक भी नहीं है। तो इसकी व्यतिरेक व्याप्तिमें सन्देह हो ऐसा भी नहीं है। इसका व्यतिरेक यों बनेगा कि जो अरहंतके प्रत्यक्ष नहीं है वह प्रमेय नहीं है। उसके लिए दृष्टान्त बनाया जायगा कि जैसे प्रत्यक्षसे बहिर्भूत मिथ्या एकान्त, मिथ्या एकान्त धर्म अरहंतके प्रत्यक्ष नहीं है क्योंकि अवस्तु है तो इस तरह का व्यतिरेक भी यहाँ सम्भव होता है। यों प्रमेयपना हेतुमें संदिग्ध व्यतिरेक नामका दोष भी नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह बात स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि जो मिथ्या एकान्त ज्ञान है वह तो प्रमेय है, आगम गम्य भी है, अनुमान गम्य भी है और अरहंतके प्रत्यक्ष है तो जो मिथ्या एकान्त ज्ञान है वह यहाँ विपक्षमें न लगाना क्योंकि मिथ्या एकान्त ज्ञानका परिणमन है और वह पर्यायसत है, किन्तु एकान्त विषयका विषयभूत जो कल्पना किया गया धर्म है जैसे पदार्थ निरन्वय क्षणिक होना आदिक वे सब सर्वथा एकान्त कहलाते हैं, वे अरहंतके प्रत्यक्ष नहीं हैं। तो विपक्ष यहाँ क्या बताया गया ? याने जहाँ प्रमेयपना न पाया जाय और अरहंतमें प्रत्यक्षता न पायी जाय ऐसा स्थल क्या कहलाया ? सर्वथा एकान्त ज्ञानका विषयभूत काल्पनिक तत्त्व। एकान्त ज्ञान तो ज्ञानके परिणमन हैं। उन्हें अप्रमेय नहीं कहा जा रहा है, किन्तु उन ज्ञानोंका विषय जो कुछ कल्पनामें लाया जा रहा है वह है अप्रमेय। वह किसी प्रमाण से जाना नहीं जाता। अतएव अप्रमेय है, याने उनका भाव है उन एकान्त धर्मोंकी सत्ता ही नहीं है तब यह व्यतिरेक बन गया कि जो अरहंतके प्रत्यक्ष नहीं है वह सब प्रमेय नहीं होता। जैसे सर्वथा एकान्त ज्ञानके विषय। तो व्यतिरेक इसीको ही तो कहते हैं कि साध्यके अभावमें साधनके अभावका निश्चय करना। तो यह व्यतिरेक यहां सम्भव हो गया। तो प्रमेयपना हेतु निश्चित व्यतिरेक वाला है वहाँ व्यतिरेक व्याप्तिका सन्देह नहीं है। और अन्वय निश्चित है यह बात तो पहिले बता ही दी गई थी कि जो जो प्रमेय होते हैं वे सब अरहंतके प्रत्यक्ष हैं। यह व्यतिरेक व्याप्तिकी बात कही जा रही है जो प्रत्यक्ष नहीं वह प्रमेय भी नहीं। इस तरह अन्वय व्यतिरेक से सहित इस हेतुसे साध्यकी सिद्धि नियमसे होती है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुनिश्चितान्वयाद्धेतोः प्रसिद्धव्यतिरेकतः ।
ज्ञाताऽर्हन् विश्वतत्त्वानामेवं सिद्ध्येदबाधितः ॥ ९६ ॥

अर्हन्त देवके सर्वज्ञत्वकी निर्बाध सिद्धिमें शङ्काकारकी आरेका—उक्त युक्तियों द्वारा जब प्रमेयपना हेतुका अन्वय और व्यतिरेक सिद्ध हो गया तो निश्चित जिसका अन्वय और व्यतिरेक पाया जा रहा ऐसे प्रमेयत्व हेतुसे अरहंत भगवानके सर्व पदार्थ विषयक प्रत्यक्षता सिद्ध हो ही जाती है । अब यहाँ सर्वज्ञत्वका अभाव मानने वाला शङ्काकार अपना पक्ष उपस्थित कर रहे हैं कि देखिये ! सर्वज्ञत्वकी सिद्धि करने वाला अनुमान अन्य अनुमानसे बाधा जाता है । प्रस्तुत अनुमान यह था कि सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाले अरहंत हैं क्योंकि वे सब पदार्थ प्रमेय हैं । अनुमानमें प्रमाणबाधितपनेका दोष है । पक्षसे प्रमाणमें बाधा आती है और हेतु बाधित विषय है वह किस प्रकार सो सुनो ! पक्ष यह था कि सभी पदार्थ अरहंतके प्रत्यक्ष हैं सो यह प्रत्यक्ष अनुमानसे बाधित होता है । बाधक अनुमान यह हैं कि धर्मादिक पदार्थ किसीके भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकते क्योंकि वे पदार्थ सदा अत्यन्त परोक्ष हैं । जो किसीके प्रत्यक्ष है वे सदा अत्यन्त परोक्ष नहीं होते । जैसे घट पट आदिक पदार्थ । किन्हींको कोई समझ रहा है तो किसी न किसीके ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है तब वह परोक्ष नहीं कहलाता, लेकिन धर्मादिक पदार्थ तो अत्यन्त परोक्ष हैं, इस कारण वे किसीके प्रत्यक्ष नहीं हो सकते । धर्मादिक पदार्थ अत्यन्त परोक्ष हैं, यह बात असिद्ध नहीं है, क्योंकि वे सभी समझ रहे हैं कि धर्मादिक पदार्थ कभी किसीके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होते इसलिए कोई भी प्रत्यक्ष धर्मादिक पदार्थोंको विषय नहीं कर सकता । और भी सुनो ! इस अनुमान प्रयोगसे भी पुष्ट होता है कि धर्मादिक पदार्थ किसीके भी प्रत्यक्षभूत नहीं हैं । देखिये ! अनुमान प्रयोग यह है कि विवादापन्न प्रत्यक्ष याने विचार कोटिमें रहने वाले ये प्रत्यक्ष धर्मादिक पदार्थोंको विषय नहीं करता । क्योंकि वह प्रत्यक्ष शब्द द्वारा वाच्य है । जो जो प्रत्यक्ष शब्द द्वारा कहा जाय वे सब धर्मादिक पदार्थोंको विषय नहीं कर सकते । जैसे हम लोगोंके प्रत्यक्ष शब्द द्वारा वाच्य हैं तो ये प्रत्यक्ष धर्मादिक पदार्थोंको विषय नहीं करते, इसी तरह ये विवादापन्न प्रत्यक्ष याने विचार कोटिमें चल रहे अरहंत प्रत्यक्ष ये भी प्रत्यक्ष शब्द द्वारा कहे जा रहे हैं तो वे भी धर्मादिक पदार्थोंको विषय नहीं कर सकते । इस अनुमानसे भी यह सिद्ध होता है कि धर्मादिक पदार्थोंको विषय कर सके कोई ऐसा प्रत्यक्ष है ही नहीं । कोई यहाँ ऐसी शङ्का न करे कि जिन पदार्थोंका हमको प्रत्यक्ष नहीं होता ऐसे पदार्थोंको गृद्ध सूकर चींटी आदिकके चक्षु स्रोत्र और नासिकायें जानी जाती है याने गृद्धके आँखसे वह जान लिया जाता हो । हम नहीं जानते । सूकरके कानसे जो शब्द सुन लिए जाते वे हम नहीं सुन सकते, चींटीकी नासिकासे जो चीज प्रत्यक्ष होती है उसे हम नहीं प्रत्यक्ष कर सकते । तो लो इस ज्ञानके साथ हेतुका व्यभिचार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हो जायगा, ऐसी शङ्का न करे कोई क्योंकि गृद्ध, सूकर, चींटी आदिक जो कुछ भी जान रहे हैं जानें, पर वे भी धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंको विषय नहीं करते। और, इसी कारण उनका प्रत्यक्ष भी हम लोगोंके प्रत्यक्षकी तरह है। जैसे पदार्थोंको हम प्रत्यक्ष द्वारा जानते हैं ऐसे ही वे प्रत्यक्ष द्वारा जानते हैं। याने इन्द्रिय द्वारा अपने विषयको ग्रहण करते हैं, अन्य इन्द्रिय विषयको वे नहीं जानते। तो धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका प्रत्यक्ष वे भी नहीं कर सकते। यों सबको जान जाय ऐसा कोई प्रत्यक्ष नहीं होता।

बुद्धि आदिके अतिशयकी एक विषयमें ही संभवताका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—यदि कोई यहाँ यह तर्क उपस्थित करे कि देखिये! बुद्धि प्रतिभा स्मरण, श्रुति, तर्क और प्रबोध, इन शक्तियोंका प्रत्येक पुरुषमें अतिशय देखा जाता, किसीमें कम है किसीमें अधिक है। तो इस अतिशयसे यह सिद्ध किया जा सकता कि किसीका प्रत्यक्ष विशेष अतिशय वाला होगा और यह ही अतिशय जब उत्कृष्ट होता तो धर्मादिक सूक्ष्म पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला हो जाता है। यह कथन भी ठीक नहीं है। यद्यपि बुद्धि प्रतिभा आदिक पुरुषोंमें न्यूनाधिक पाये जाते हैं सो पाये जायें भले ही, पर यह नहीं हो सकता कि किसीके अतीन्द्रिय पदार्थका भी प्रत्यक्षज्ञान बन जाय। सबकी सीमा होती है। ये इन्द्रिय गोचर पदार्थोंमें अधिक बढ़ जायें पर अतीन्द्रिय पदार्थोंमें अन्तरित पदार्थोंमें यह जान नहीं सकते, इस कारण सर्व पदार्थोंको जानने वाला कोई भी ज्ञान नहीं है। शङ्काकार ही कहे जा रहा है कि यदि यहाँ कोई यह कहे कि कोई बुद्धिमान पुरुष जैसे अत्यन्त सूक्ष्म शास्त्रीय विषयोंका परिज्ञान करनेमें समर्थ देखा जा रहा है उसी तरह कोई पुरुष ऐसा भी हो सकता है कि प्रत्यक्षसे धर्मादिक स्थूल पदार्थोंको साक्षात्कार करनेमें समथ हो। ज्ञान ही तो है। ज्ञानमें कितनी उत्कृष्टता बनती है इसकी कोई सीमा नहीं की जा सकती है। बढ़ता जा रहा है। सर्वको जान लो, बस यह ज्ञानकी उत्कृष्टता है। तब यह न कहा जा सकेगा कि ज्ञान इतना ही हो सकता है, इसकी इतनी ही सीमा है, इससे अधिक ज्ञान नहीं बढ़ सकता। शङ्काकार अपने पक्षके समर्थनमें कह रहा है कि उक्त विचार सही नहीं है। क्योंकि कोई सा भी ज्ञान हो ज्ञान विशेष ही तो है। वह अपनी जातिका उल्लंघन नहीं कर सकता और फिर अपनी जातिमें भी जो कुछ ज्ञानमें विशेषता आती है वह दूसरेके जो छोटे छोटे ज्ञान हैं उनकी अपेक्षा अतिशय मालूम होता है। जैसे कोई पुरुष व्याकरणका बहुत अधिक ज्ञान करले तो यह तो न होगा कि वह नक्षत्र और गृह समूहकी गति आदिकका निर्णय इतना बढ़ा सके कि ज्योतिष शास्त्रके ज्ञानियोंका भी उल्लंघन कर जाय, क्योंकि वह केवल व्याकरणके बारेमें ही तो उत्कृष्ट ज्ञान रख रहा है। उसकी बुद्धि चलेगी तो शब्दोंकी सिद्धिमें चलेगी। कौनसे शब्द सिद्ध हैं कौन से असिद्ध हैं, किस तरह उनकी साधना बनती है, यह ही बुद्धि चलेगी। तो वह दूसरे

http://sahjanandvarnishastra.org/

वैयाकरणोंको प्रभावित कर सकता है याने व्याकरणोंको प्रभावित कर सकता है याने व्याकरण शास्त्रमें ही इतना ज्ञान बढ़ गया कि अन्य वैयाकरणोंसे अधिक हो गया, लेकिन वह ज्योतिष शास्त्रके विद्वानोंको तो प्रभावित न कर सकेगा, इसी तरह जो ज्योतिष शास्त्रके वेत्ता हैं वे चन्द्र सूर्य ग्रहण आदिकका उत्कृष्ट निर्णय करलें, ज्योतिष शास्त्रका प्रकर्ष ज्ञान करलें अन्य ज्योतिषियोंसे ऊंचे बढ जायें, अनेक ज्योतिषियों को प्रभावित करदें फिर भी भवति आदिक जो शब्दोंकी सिद्धि है उसका प्रकृष्ट ज्ञान तो नहीं रखता। वह वैयाकरणोंको तो प्रभावित नहीं कर सकता। इसी तरह अन्य विषय भी इतिहासमें बड़ा प्रकृष्ट ज्ञान रखने वाला हो कोई तो बढ़ जाय, किन्तु स्वर्ग देवता, धर्म अधर्म इनका साक्षात्कार तो नहीं कर सकता। एक शास्त्रके ज्ञानमें अतिशय हैं, रहा आये, पर दूसरे शास्त्रका ज्ञान उससे तो न आ जायगा। इस सब निर्णयसे यह समझ लेना चाहिए कि सर्वज्ञता सिद्ध करने वाले जो यह युक्ति दिया करते हैं कि ज्ञान किसी आत्मामें चरम सीमाको प्राप्त हो जायगा, क्योंकि ज्ञान बढ़ने वाला है जब बढ रहा है तो कहीं ज्ञान इतना बढ जायगा कि वह सबको जानले। जैसे परिमाण परमाणुमें छोटे है स्कंधमें बढते हैं तो कहीं चरम सीमाको भी प्राप्त परिमाण है—जैसे आकाश। कितना है आकाश ? अनन्त! तो जो बढने वाली चीज है वह कहीं न कहीं चरम सीमाको प्राप्त हो जाती है। तो ज्ञान भी बढने वाला है इस कारणसे ज्ञान भी किसी आत्मामें चरम सीमाको प्राप्त हो जायगा। यह कथन भी सङ्गत नहीं है।

प्रत्यक्ष व अन्य ज्ञानकी चरम सीमामें विश्वज्ञताके अभावका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—शङ्काकार कह रहे हैं कि भला बताओ सर्वज्ञतावादीने किसी पुरुषके सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें जो अनुमान बनाया है कि ज्ञान कहीं चरम सीमा को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि वह बढने वाला है। तो यहाँ जिस ज्ञानसे चरम सीमा को प्राप्त करनेकी बात कही जा रही है वह ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान है या शास्त्रज्ञान, अनुमान आदिक ज्ञान है ? यदि कहो कि प्रत्यक्ष ज्ञान है तो प्रत्यक्ष ज्ञान तो इन्द्रिय जन्य ज्ञान होता है वह प्रत्येक जीवमें बढता भी है, लेकिन अपने विषयका उल्लंघन नहीं करता। जानेगा तो इंद्रिय विषयको जानेगा और सीमामें जानेगा। अपने विषयमें जितनी सीमा बन सकती है उस उत्कृष्ट सीमाको प्राप्त हो जायगा पर अतीन्द्रिय आदिकको विषय करने रूपसे वह ज्ञान न बन सकेगा। जैसे देखनेमें जो कुशल होता है वह देखनेकी बात बढाले जैसे गृद्ध बहुत दूरसे सूक्ष्म वस्तुको देख लेता है तो देखले, पर अतीन्द्रिय अर्थको तो नहीं देख सकता। तो इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानको धर्मी बना कर पक्षमें रखकर चरम सीमाको प्राप्त होनेकी बात नहीं कही जा सकती। यदि कहो कि हमारा प्रयोजन शास्त्र अर्थक ज्ञानसे है याने शास्त्रोक्त अर्थका ज्ञान किस अर्थ विशेषमें चरम सीमाको प्राप्त हो जाता है। तो ठीक है जो जिस शास्त्रका ज्ञान रखता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है वह शास्त्रमें बढता हुआ अपने ही विषयमें चरम सीमाको प्राप्त होगा। दूसरे शास्त्र के अर्थको विषय न करेगा या धर्मादिक अतीन्द्रियका साक्षात्कार न कर लेगा। तो अन्य कोई भी ज्ञान हो, शास्त्रके अर्थका ज्ञान हो, अनुमान आदिक ज्ञान हो वे उत्कृष्टताको प्राप्त होंगे तो अपने विषयमें ही होंगे। धर्मादिक अतीन्द्रिय अर्थका साक्षात्कार न कर सकेंगे। यदि यहाँ कोई यह कहे कि हम तो धर्मी ज्ञान सामान्यको बना रहे हैं याने ज्ञान सामान्य कहीं परम सीमाको प्राप्त हो जाता है क्योंकि वह बढने वाला है। जैसे कि परिमाण। परमाणुसे बड़ा है स्कंध। उससे बड़ा और है। तो सबसे बड़ा आकाश है। प्रमाणमें वृद्धि होनेसे कहीं उत्कृस्ट सीमा बन गई ऐसे ही ज्ञान सामान्य बढ रहा है तो कहीं उत्कृष्ट बढ जाता है। शङ्काकार कहता है कि यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक ज्ञान विशेषमेंसे किसी एक ज्ञान विशेषकी ही तो उत्कृष्टता सिद्ध हो सकेगी। ज्ञान सामान्य क्या है ? बढ रहा है तो वह ज्ञान होगा वह ज्ञान विशेष ही होगा। ज्ञान विशेषको छोड़कर ज्ञान सामान्यकी उत्कृष्टता बनना सिद्ध नहीं है। अरे जो बढ़ेगा वह ज्ञान विशेष ही तो होगा। ज्ञान सामान्यमें बढनेकी बात क्या आयगी क्योंकि ज्ञान सामान्य तो निरतिशय चीज है उसमें हानि वृद्धिकी बात नहीं आती। तो ज्ञान सामान्यसे इस अनुमानसे पक्ष बनाया जाय, ज्ञान विशेषको न बनाया जाय तो इसमें दोष न आयगा। यह कहना ठीक न रहा क्योंकि प्रकर्षता वृद्धि यदि होती है तो ज्ञान विशेषमें होती है ज्ञान सामान्यमें प्रकर्षताकी बात कहना बिल्कुल असङ्गत है। क्योंकि उसमें अतिशय नहीं होता।

अभ्यासबलसे भी ज्ञानविशेषके अतिशयकी असीमताकी असम्भवता का शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—जो लोग यह कहते हैं कि श्रुतज्ञान, अनुमानज्ञान, कोई सा भी ज्ञान हो उनका अभ्यास बढाया जाय तो अभ्यास करते करते जब यह ज्ञान पूर्ण अभ्यस्त बन जाता है तब ये पुण्य पाप आदिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका साक्षात् कार कर लेते हैं। तो ज्ञान उत्कृष्ट सीमाको प्राप्त होता है। शङ्काकार अपने पक्षका समर्थन करता हुआ कहता है कि यह कथन भी युक्त नहीं है वह तो केवल मनकी कल्पना मात्र है ? कभी यह ज्ञान अपने विषयको जान भी ले और यह बड़ा अभ्यास भी करे तो वह उन विषयोंका ज्ञान तो नहीं कर सकता। यहाँ शङ्काकार सर्वज्ञका सद्भाव मानने वालोंसे कह रहे हैं कि कोई भी ज्ञान ऐसा नही होता जो विषयोंमें बढा चढा हो जाय। कोई ज्ञान विशेषमें बढ जाय यह बात तो हो सकती है, पर वह सारे विषयोंमें बढ जाय या अपने विषयमें भी अनन्त हो जाय यह बात नहीं हो सकती। जैसे कोई आकाशमें कूदनेका अभ्यास करता है तो एक बालक दो फिट कूद जाता है तो दूसरा बालक ३–४ फिट कूद जाता है। अब कोई यह कहे कि जब एकसे एक बढकर बोलते हैं, जो इतनी ऊंची कूद मार सकता है तो कोई ऐसा भी बालक होगा कि जो १० हजार हाथ की कूद लगा दे तो यह कैसे सम्भव है ? ज्ञान है तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ दूर तक बढ़ जायगा, पर उसे अनन्त तो नहीं कह सकते। इस तरह सर्वज्ञकी सत्ताका निषेध करने वाले शङ्काकारोंका यह कथन चला कि दुनियामें कोई सर्वज्ञ नहीं है, अतएव सर्वज्ञकी वन्दना करना, सर्वज्ञकी विशेषता बताना यह सब मनः कल्पित बात है।

प्रत्यक्ष शब्द द्वारा वाच्य होनेपर भी प्रत्यक्षोंकी विशेषता बताते हुए सर्वज्ञत्वमें शंका रखनेवालोंके लिये समाधान—अब सर्वज्ञका निषेध करने वालेके प्रति समाधानमें कहा जा रहा है कि देखो! सर्वज्ञके अभाव सिद्ध करने वालेने जो यह कहा था कि विवादापन्न प्रत्यक्ष धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंको नहीं जान सकता, क्योंकि वह प्रत्यक्ष शब्दके द्वारा कहा जाता है। जैसे हम लोगोंका प्रत्यक्ष इसका नाम प्रत्यक्ष है ना, तो अतीन्द्रिय पदार्थोंको तो नहीं जान सकता। तो इस उपायमें शङ्काकार यह बतायें कि वह प्रत्यक्ष कौन सा है जिसके लिए अतीन्द्रिय विषयोंके ज्ञानका निषेध किया जा रहा? यदि यह कहें कि वह तो हम लोगों जैसा प्रत्यक्ष है जो आत्मा और इन्द्रियका सम्बन्ध होनेपर ज्ञात होता है। ऐसे प्रत्यक्षकी बात यहाँ कह रहे हैं तो सुनो! सबके हम जिस प्रत्यक्षमें सर्वज्ञता सिद्ध कर रहे हैं वह प्रत्यक्ष इन्द्रिय प्रत्यक्षसे भिन्न चीज है। अरहंत भगवान जिस प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा सबको जानते हैं वह प्रत्यक्ष इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं है, वह आत्मीय प्रत्यक्ष है। यों प्रत्यक्ष शब्द द्वारा भले ही कह दिया जाय, पर उससे सर्वज्ञताका अभाव सिद्ध नहीं होता। जैसे इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष शब्द द्वारा कहा जाता है पर वह अतीन्द्रिय प्रत्यक्षका साक्षात्कार करने वाला नहीं है ऐसा कहकर यह तो नहीं कहा जा सकता कि दूसरे क्षेत्र और दूसरे कालमें विचार कोटिमें आया हुआ प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष शब्द द्वारा वाच्य है सो वह भी धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका साक्षात्कार न कर सकेगा याने इन्द्रिय प्रत्यक्षकी करतूतका इन्द्रिय प्रत्यक्षके साथ समानता बता सकते हैं। तो जैसे प्रत्यक्षकी बात हुई वैसे ही प्रत्यक्षकी समानता बनती है क्योंकि वहाँ अविनाभाव बना हुआ है, लेकिन इन्द्रिय प्रत्यक्षको तो उदाहरणमें बताया और अरहंतके प्रत्यक्षमें उसी तरह अल्पज्ञता सिद्ध करें, यह बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि भिन्न ही ज्ञान है? यहाँ न इन्द्रिय प्रत्यक्ष इन्द्रियसे उत्पन्न होता किन्तु सर्वज्ञका प्रत्यक्ष तो केवल एक आत्मासे ही उत्पन्न होता है। तो दोनोंमें यद्यपि प्रत्यक्ष शब्दकी समानता है मगर प्रत्यक्षके अर्थमें तो समानता नहीं। तो सामान्यतया शब्दकी समानता होनेपर भी अर्थभेद है, यदि ऐसा न माना जाय तो देखो गो शब्दका अर्थ वाणी भी है और गाय भी है। तो गो शब्द बोलकर कोई यह कहे कि वाणीमें सींग लगी रहती है, क्योंकि वह गो शब्द द्वारा वाच्य है। यहाँ गायमें सींग लगी रहती, क्योंकि वह गो शब्द द्वारा कहा जाता है तो यह बात ठीक तो न बैठी। गो शब्दके अनेक अर्थ हैं, पर जो गायमें बात पायी जाती है वह वाणी और किरण आदिमें भी लगायी जाय यह कैसे सम्भव हो सकता है सारांश यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष और अरहंत भगवानका प्रत्यक्ष ये दोनों प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष शब्द द्वारा कहे गए हैं लेकिन अर्थ दृष्टिसे देखें तो इनमें बड़ा ही अन्तर है। यदि केवल प्रत्यक्ष शब्द द्वारा कहा गया है इतने मात्रसे दोनोंको एक मान लिया जाय। जो बात इन्द्रिय प्रत्यक्षमें है सो अरहंत प्रत्यक्षमें होगी ऐसी यदि समता स्वीकार करली जाय तो वाणी और पशु ये दोनों भी एक हो जायेंगे क्योंकि गो शब्दमें अनेक अर्थ हैं। वाणी भी अर्थ है, पशु भी अर्थ है। तो पशुके जैसे चार पैर हैं, सींग हैं ऐसे ही वाणी के भी पैर और सींग मान लिए जायें ऐसा प्रसङ्ग आ जायगा। यदि कोई यह कहे कि वाणी और पशु दोनों एक शब्द द्वारा अवहित हैं। गो शब्दके दोनों अर्थ हैं तो भी पशुमें ही सींग सिद्ध होंगे, क्योंकि पशुमें ही सींग सिद्ध करनेके लिए गो शब्द द्वारा कहा गया यह हेतु बनेगा, वाणी आदिकमें नहीं क्योंकि गो और वाणी, गाय और वचन ये दोनों भिन्न भिन्न चीजें हैं। तो समाधानमें कहते हैं कि यही बात इंद्रिय प्रत्यक्ष और अरहंतके प्रत्यक्षमें घटित कर लीजिए दोनोंके ज्ञानको यद्यपि प्रत्यक्ष शब्द से कहा गया है फिर भी अरहंत प्रत्यक्षमें तो सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय करनेकी कला है। इन्द्रिय प्रत्यक्षमें नहीं है, क्योंकि दोनों प्रत्यक्षके अर्थमें फर्क है।

प्रत्यक्षका मुख्य अर्थ अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष— प्रत्यक्षका अर्थ है अक्षणोति व्यापनोति जानाति इति अक्षः, अर्थात् जो व्याप्त करे, जाने उसका नाम है अक्ष याने आत्मा। और, अक्षको ही लेकर जो ज्ञान बने उसे कहते हैं प्रत्यक्ष। याने जो ज्ञान आत्मासे ही उत्पन्न हुआ है उसका नाम है प्रत्यक्ष। तो देखिये यह है अरहंतका प्रत्यक्ष तो इन्द्रिय प्रत्यक्षसे भिन्न हुआ ना! हम लोग जिस ज्ञानको प्रत्यक्ष कहा करते हैं उसका प्रत्यक्ष देखो, प्रत्यक्ष सुनो, तो वह इन्द्रिय द्वारा ही तो उत्पन्न किया गया है। सो इन्द्रिय प्रत्यक्ष सबका जाननहार नहीं है किन्तु अरहंत प्रत्यक्ष सबका जाननहार है। तो यहाँ जो हम प्रत्यक्षकी बात कह रहे हैं वहाँ अरहंतके प्रत्यक्षकी बात कह रहे हैं वही समस्त द्रव्य पर्यायोंको जानता है, उसे अनुमान द्वारा सिद्ध कर लीजिए। विचार कोटिमें स्थित अरहंत प्रत्यक्ष मुख्य प्रत्यक्ष है, क्योंकि वह समस्त द्रव्य पर्यायों का जाननहार है। जो मुख्य प्रत्यक्ष नहीं है वह समस्त द्रव्य पर्यायोंका जाननहार नहीं हो सकता। जैसे हम लोगोंका प्रत्यक्ष यह इंद्रिय प्रत्यक्ष है, समस्त द्रव्य पर्यायोंका जाननहार नहीं है तो वह मुख्य प्रत्यक्ष भी नहीं कहा जा सकता। परोक्षज्ञान है वास्तविक उपचारसे प्रत्यक्ष कहा जाता है लेकिन समस्त पर्यायोंको जानने वाला अरहंत प्रत्यक्ष है, इस कारण वही मुख्य प्रत्यक्ष है। अरहंत प्रत्यक्ष समस्त द्रव्य पर्यायों को जानता है वह बात असिद्ध नहीं है, क्योंकि क्रमरहित है। क्रमरहित है यह कैसे पहिचाना? याने अरहंत भगवानका प्रत्यक्ष क्रम क्रमसे नहीं जानता किन्तु तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंको एक साथ जानता है, क्योंकि वह मन और इंद्रिय द्वारा नहीं उत्पन्न होता। मन और इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं रखता अरहंत प्रत्यक्ष। इसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण वह है कि वह निर्दोष हैं। रागद्वेष रहित है ज्ञान। वहाँ मिथ्यात्व, अज्ञान, अशक्ति आदिक कोई दोष नहीं हैं इस कारण निर्दोषज्ञानमें ऐसी शक्ति होती है कि वह एक साथ समस्त पदार्थोंको जान ले। तो एक साथ समस्त द्रव्य पर्यायोंको अरहंत प्रत्यक्ष जानते कहीं इस कारण यही मुख्य प्रत्यक्ष कहलाता है।

अरहंतके प्रत्यक्ष ज्ञानकी निर्दोषता—अरहंतके प्रत्यक्षमें मिथ्यात्व आदिक कोई दोष नहीं रहे इसका कारण यह है कि घातिया कर्मोंका नाश हो गया है। मिथ्यात्वका कारण था मोहनीय कर्म वह न रहा। अज्ञानका कारण था ज्ञानावरण वह भी नष्ट हो गया। अदर्शनका कारण था दर्शनावरण वह भी नष्ट हो गया। अशक्तिका कारण था अंतराय कर्म वह भी नष्ट हो गया। तो चार घातिया कर्मोंके विनाश होनेसे वह निर्दोष है और निर्दोष अरहंतका ज्ञान सर्व पदार्थोंको एक साथ जान सकने वाला है। और निर्दोष ज्ञान नहीं होता वह कर्मरहित भी नहीं होता। जैसे हम लोगोंका प्रत्यक्ष निर्दोष नहीं है तो कर्मरहित भी नहीं कह सकते, लेकिन अरहंत प्रत्यक्ष तो मोहादिक कर्मोंसे अत्यन्त परे है, इस कारण वह समस्त पदार्थोंको एक साथ जान लेता है। अरहंत भगवानके मोह आदिक चार कर्म नष्ट हो गये हैं, इसकी सिद्धि इस प्रकार है कि अरहंतके मोह आदिक चार कर्मोंके कारणभूत जो मिथ्यात्व आदिक हैं उनके प्रतिपक्षीमें प्रकर्षता देखी जा रही है। तब यह सिद्ध होता है कि मोहनीय आदिक चार कर्म किसी आत्मामें बिल्कुल नहीं रह सके हैं क्योंकि उनके कारणोंके प्रतिपक्षी प्रकृष्ट हो गए हैं। जहाँ जिसके कारणोंके प्रतिपक्षी प्रबल हो जायें वहाँ उसका सर्वथा नाश देखा जाता है। तो मोहनीय आदिक चार कर्मोंके कारण हैं ये मिथ्यात्व आदिक और उनके प्रतिपक्षी हैं सम्यग्दर्शन आदिक। तो जहाँ सम्यग्दर्शन आदिक उत्कृष्ट पाये जाते हैं उनके मिथ्यात्व आदिक और उनके कारण रंच भी नहीं रहते। यों चार कर्मोंका वहाँ अभाव हो गया है। चार कर्मोंके कारण हैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र। क्योंकि ये मिथ्यात्व आदिक हों तब ही वे कर्म रहते हैं। तो जिसके होनेपर जो हो वह उसका कारण कहलाता है। जैसे आँखपर अंधेरा छा जाय तो उसका कारण कीचड़ है। तो जब मिथ्यात्व आदिक होनेपर मोहादिक चार कर्म रहते हैं तो इससे सिद्ध है कि मिथ्यादर्शन आदिक मोहनीय आदिक कर्मोंके कारण हैं तो अब मिथ्यात्वके प्रतिपक्षीका जब प्रकर्ष हो गया याने सम्यक्त्व आदिक जब उत्कृष्ट बन गए तो मिथ्यात्व आदिककी हानि हो गई। जिसका प्रकर्ष होनेपर, जिसका विनाश देखा जाय उसको प्रतिपक्षी कहते हैं। जैसे कण्ठका प्रतिपक्षी है अग्नि। तो इसी तरह जब सम्यक्त्व आदिक उत्कृष्ट बन जाते हैं तो मिथ्यात्व आदिक नष्ट हो जाते हैं। तो यों जब सम्यक्त्व आदिक बन गए, मिथ्यात्व आदिक दूर हो गए तो उनके कारणभूत मोहनीय आदिक चार कर्म भी दूर हो गए हैं, स्वयं सिद्ध हो जाता है। तो यों अरहंत भगवानका प्रत्यक्षज्ञान निर्दोष है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसलिए वह क्रमसे नहीं जानता है किन्तु सब पदार्थोंको एक साथ जानता है । इस कारणसे अरहत प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष है और उस ही प्रत्यक्षको बात कही जा रही है कि सबको जानने वाला है । यों जो सर्वज्ञ होगा तो कर्मपहाड़ोंका भेदनहार है और वही मोक्षमार्गका प्रणेता हो सकता है और वही वंदनीय होता है ।

प्रभुके सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्रकी परम प्रकर्षता व सर्वथा निर्दोषता– अब यहाँ सिद्ध करते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र ये तीन उत्कृष्ट तत्त्व कहीं उत्कृष्टताको प्राप्त हो जाते हैं ये ही तीन मिथ्यात्व, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्रके प्रतिपक्षी हैं । अतः सम्यक्त्व आदिक तीनोंकी उत्कृष्टता हो जानेपर मिथ्या-त्व आदिक तीनों सर्वथा नष्ट हो जाते हैं । तो यहाँ कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र परम उत्कृष्टताको कैसे प्राप्त हो जाते हैं ? इसकी सिद्धि में यह अनुमान प्रयोग किया जाता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र कहीं परम उत्कृष्टताको प्राप्त हैं अर्थात् जो अन्तिम प्रकर्ष है उसको प्राप्त है, क्योंकि ये बढने वाले हैं जो जो बढ़ने वाले हैं, जो जो बढने वाले होते हैं वे कहीं परम प्रकर्षको प्राप्त हो जाते हैं, जैसे कि परिमाण । परमाणुमें परिमाण सर्व जघन्य है और परि-माण यह बढ़ जाता है अनेक प्रकारके स्कंधोंमें तो यह कहीं बढ–बढकर सर्व आकाश के अनन्त परिमाण वाला हो जाता है । ये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र, ये बढने वाले हैं प्रकृष्यमान हैं इसलिए ये कहीं अन्तिम प्रकर्षको प्राप्त होते ही हैं । इस तरह कोई स्थिति ऐसी होती है जहाँ सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र पूर्ण हो जाते हैं और जहाँ ये पूर्ण हुए वहाँ उसके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं । जहाँ मिथ्यात्व आदिकका नाश हो जाता है वहाँ उनके कार्यभूत मोहनीय आदिक चार कर्म नहीं रहते हैं । यह बात स्पष्टतया सिद्ध हो जाती है । जहाँ मोहनीय आदिक चार कर्मोंका अभाव है वहाँ उनका कार्य मिथ्यादर्शन, अज्ञान अदर्शन व अवीर्यका भी अभाव है ।

प्रभुप्रत्यक्षज्ञानकी युगपत् निरपेक्षतया विश्वतत्त्वज्ञता – जब चार दोष नहीं रहे याने मिथ्यात्व, अज्ञान अविरति और अशक्ति ये चार दोष नहीं रहे तो समस्त दोषरहितपनाकी अरहंतके सिद्धि हो गयी और प्रभुके निर्दोषता सिद्ध होनेसे यह सिद्ध हो जाता है कि अरहंत भगवानका प्रत्यक्षज्ञान मन और इन्द्रियकी अपेक्षासे उत्पन्न नहीं होता, किन्तु वह निरपेक्ष ज्ञान है, और यह अरहंत भगवानका निरपेक्ष प्रत्यक्षज्ञान यह सिद्ध करता है कि तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंको यह प्रत्यक्षज्ञान क्रमरहित एक साथ सबको जान लेता है तो इस तरह अरहंत भगवानका ज्ञान निरपेक्ष ज्ञान है और तीन काल तीन लोकके समस्त द्रव्य पर्यायोंको एक साथ जानता है इस कारण अरसंतका प्रत्यक्षज्ञान मुख्य प्रत्यक्षज्ञान है । शङ्काकारका यह कहना कि प्रत्यक्ष शब्दके द्वारा वाच्य है इस कारण प्रभुका प्रत्यक्ष भी समस्त पदार्थों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को नहीं जान सकता। यह शङ्का सङ्गत नहीं है अरहंत देवका प्रत्यक्ष मुख्य प्रत्यक्ष है, निर्दोष है निरपेक्ष है और एक साथ सबका जाननहार है। हाँ सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष इन्द्रिय सापेक्ष है और मनः सापेक्ष है। मन और इन्द्रियकी सहायतासे ही यह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान पाता है उसे प्रत्यक्ष क्यों कहते कि वह एक देशसे स्पष्ट है यह सिद्धान्त इस प्रकार जानना चाहिए कि 'प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकारका है—एक मुख्य प्रत्यक्ष, दूसरा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। मुख्य प्रत्यक्ष जो वह कहलाता है जो इंद्रिय और मनकी अपेक्षासे रहित है। केवल आत्म शक्तिसे समस्त पदार्थोंक ज्ञान करता है। सो यह मुख्य प्रत्यक्ष ३ प्रकारका है अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। इनमेंसे अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान तो विकल प्रत्यक्ष कहलाते क्योंकि इनका विषय समस्त द्रव्य पर्याय नहीं है किन्तु ये कुछ सीमाको लेकर जान रहे हैं, लेकिन हैं ये इन्द्रिय और मनकी अपेक्षासे रहित और स्पष्ट जानने वाले इस कारण इन्हें भी प्रत्यक्षज्ञान कहा है। सो ये दो ज्ञान अवधिज्ञान एवं मनः पर्ययज्ञान विशिष्ट योगियों के होते हैं। अवधिज्ञान तीन प्रकारका है १ देशावधि, २ परमावधि और सर्वावधि, जिनमें देशावधि तो चारों गतियोंमें हो सकता है, किन्तु परमावधि ज्ञान और सर्वावधि ज्ञान मनुष्यके ही हो सकते हैं। और मनुष्योंमें भी योगियोंके हो सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष कहलाता है। केवलज्ञानीके द्वारा समस्त लोकालोक जान लिया जाता है। तो यह केवलज्ञान अरहंत भगवानके पाया जाता है और वह प्रत्यक्षज्ञान विश्वतत्त्वका जाननहार है। दूसरा जो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष बताया गया है वह इंद्रिय और मनकी अपेक्षा लेकर उत्पन्न होता है इस कारण वह पूर्ण निर्मल नहीं है, किन्तु एक देश स्पष्ट है। तो प्रत्यक्ष दो तरहके हैं—तब यह शङ्काकारका कहना उचित नहीं है कि जो प्रत्यक्ष शब्द द्वारा वाच्य हो वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्षकी तरह ही होगा। प्रत्यक्ष दो प्रकारके हैं और उनकी अपने आपमें विशेषता है। तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो हम लोगोंके होता है और उन प्राणियोंके भी होता है, किन्तु मुख्य प्रत्यक्ष केवलज्ञान अरहंतदेवके ही होता है, सिद्ध प्रभुके होता है। तो यों प्रत्यक्ष दो प्रकारके हैं तब यह न कहना चाहिए कि प्रत्यक्ष शब्द द्वारा वाच्य है इस कारणसे अरहंतका भी प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक प्रत्यक्षकी तरह स्थूल पदार्थोंको ही जान सकेगा। तो जब यह सिद्ध हो गया कि अरहंत भगवानका प्रत्यक्ष ज्ञान समस्त तत्त्वोंका जाननहार है तब इस अनुमानको न तो अनुमान बाधित कह सकते और न कालात्ययापदिष्ट कह सकते। उक्त प्रकारसे निर्दोष हेतुसे यह सिद्ध हो गया कि विश्व तत्त्वका ज्ञाता याने सर्वज्ञ अरहंत भगवान है। क्योंकि अरहंतकी सर्वज्ञताको सिद्ध करनेवाला प्रमाण है और उसमें कोई बाधक प्रमाण भी नहीं आता।

प्रत्यक्षमपरिच्छिन्दत् त्रिकालं भुवनत्रयम्।
रहितं विश्वतत्त्वज्ञैर्न हि तद्बाधकं भवेत् ॥ ९७ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सकल प्रत्यक्ष विश्वतत्त्वज्ञ केवलज्ञानकी सिद्धिमें प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा बाधाका अभाव—अरहंतका प्रत्यक्ष ज्ञान समस्त तत्त्वोंका जाननहार है, इस अनुमानमें बाधा देने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान तो हो नहीं सकता, क्योंकि हम लोगोंका प्रत्यक्ष सर्वज्ञसे रहित तीन काल और तीन लोकको जान नहीं सकता। तो जब तीन लोक, तीन कालका जाननहार हम लोगोंका सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष नहीं है तो उसके द्वारा सर्वज्ञताका कैसे निषेध कर सकते हैं। तो यों प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वज्ञताका बाधक नहीं है। यदि कल्पना करो कि कोई प्रत्यक्ष तीन लोक और तीन कालको जान सकता है तो वही तो बता सकेगा कि तीनों लोक और तीनों कालोंमें सर्वज्ञ नहीं है और यहां मान लिया प्रत्यक्षको यों कि वह तीन लोक, तीन कालका जाननहार नहीं है। तो वह सर्वज्ञका कैसे निषेध कर सकेगा? और जो प्रत्यक्ष तीन लोक तीन कालका जाननहार है वही सर्वज्ञ हो जायगा, फिर सर्वज्ञका वह निषेध ही कैसे कर सकेगा? जैसे सर्वज्ञ भगवान अरहंत देवके धर्मादिक सूक्ष्म पदार्थ प्रत्यक्ष सिद्ध हैं, ज्ञात हैं ऐसे अनुमान बलसे सिद्ध किया था। उसमें बाधक प्रमाणकी कल्पना कोई करे तो बता सकेगा कि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, अर्थापत्ति, उपमान, अभाव, इनमेंसे कौन बाधक बनेंगे। उनपर क्रमसे विचार कर लीजिये। सर्वज्ञताका बाधक प्रत्यक्षज्ञान तो हो नहीं सकता, क्योंकि हम लोगोंका प्रत्यक्ष तीन काल और तीन जगतको सर्वज्ञसे रहित देख सकता होता तो कह सकते थे कि हमारा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष सर्वज्ञताका बाधक है, लेकिन सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तीन काल और तीन लोकको जान ही नहीं सकता। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो परिमित क्षेत्रमें और परिमितकालमें सम्बन्धित वर्तमान पदार्थोंको जान सकेगा। तब फिर सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष यह कैसे जान सकेगा कि तीन काल और तीन लोकमें सर्वज्ञ नहीं है। यदि यह जानते हैं कि तीन काल और तीन लोक ये हैं तो इतने मात्रसे ही वह सर्वज्ञ खुद कहलायगा। तब सर्वज्ञका निषेध भी कैसे हो? तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञका बाधक है नहीं। अब पारमार्थिक प्रत्यक्षकी बात देखो! मुख्य योगि प्रत्यक्ष यह भी सर्वज्ञका बाधक नहीं है। वह तो सर्वज्ञपनेका बाधक तो क्या होगा वह तो सर्वज्ञत्वका साधक ही है। दूसरे यह बात है कि सर्वज्ञका अभाव मानने वाले लोग योगि प्रत्यक्षको पारमार्थिक प्रत्यक्षको मानते तक भी नहीं हैं, तो उसे सर्वज्ञताका बाधक कैसे कहा जाय?

नानुमानोपमानार्थापत्त्याऽऽगमबलादपि।
विश्वज्ञाभावसंसिद्धिस्तेषां सद्विषयत्वतः॥ ९८॥

नार्हन्निःशेषतत्त्वज्ञो वक्तृत्व-पुरुषत्वतः।
ब्रह्मादिवदिति प्रोक्तमनुमानं न बाधकम्॥ ९९॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हेतोरस्य विपक्षेण विरोधाभाव निश्चयात् ।
वक्तृत्वादेः प्रकर्षेऽपि ज्ञाननिर्ह्रासासिद्धितः ॥ १०० ॥

अनुमानादि प्रमाणोंसे भी सर्वज्ञत्व सिद्धिमें बाधाका अभाव—उक्त कारिकामें यह बताया गया है कि प्रत्यक्षज्ञान सर्वज्ञताका बाधक नहीं है। अब यह बतला रहे हैं कि अनुमान ज्ञान भी सर्वज्ञताका निषेध नहीं कर सकता। प्रत्यक्षके अतिरिक्त प्रमाण हैं अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति आगम और अभाव। उनमें भी इसी तरह जाना अनुमान अर्थापत्ति व आगम ये तो सत् पदार्थको विषय करते हैं। इनका विषय अभाव तो है नहीं। तब फिर उन प्रमाणोंके द्वारा सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि कैसे की जा सकती है ?

सर्वज्ञत्वसिद्धिमें अनुमानद्वारा बाधा आनेका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन—यहाँ कोई यह कहे कि देखिये सर्वज्ञका निषेध इस प्रमाणसे बन जायगा कि अरहंत समस्त तत्त्वोंका ज्ञाता नहीं है, क्योंकि वह वक्ता है और पुरुष है। जैसे कि ब्रह्मा। इस तरहका कहा हुआ अनुमान भी बाधक नहीं है क्योंकि इस अनुमानमें दिया गया हेतु व्यभिचारी हेतु है। शङ्काकार यह समर्थन कर रहा है कि अरहंत सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वह वक्ता है अथवा पुरुष है। इस अनुमानमें शङ्काकार यह स्पष्ट कर रहा है कि जो वक्ता होता है या पुरुष होता है वह सर्वज्ञ नहीं होता। सर्वज्ञका प्रतिपक्षी है अल्पज्ञ और अल्पज्ञका कार्य है वचन। सो वचन जब स्वीकार कर लिया तो वचन अल्पज्ञताको सिद्ध करते हैं और जब अल्पज्ञता सिद्ध हो गई तो सर्वज्ञताका अभाव बन जायगा, इसे कहेंगे विरुद्धकार्योपलब्धि। याने साध्यमें विरुद्धका कार्य पाया जाय उस हेतुसे इष्टका अभाव सिद्ध करना इस अनुमानका कार्य है। जैसे कोई सीपका अभाव सिद्ध करना चाहता है तो धूम देख करके यह सीपका अभाव सिद्ध कर देगा, क्योंकि सीपका प्रतिपक्षी है उष्ण अग्नि और उसका कार्य है धूम तो इस विरुद्ध कार्योपलब्धि हेतुके द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि जगतमें कोई सर्वज्ञ नहीं है। तो वक्तापन सर्वज्ञताके साथ व्याप्त है इसलिए वक्ता होनेके कारण कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता। इसी तरह पुरुषपनेकी उपलब्धि असर्वज्ञताके साथ व्याप्त है इस कारण पुरुषपनाका पाया जाना भी विरुद्ध व्याप्तोपलब्धि है। इस कारण सर्वज्ञको यदि वक्ता और पुरुष स्वीकार करते हैं तो वक्तापन और पुरुषपना होनेके कारण उसमें सर्वज्ञता नहीं रहती।

सर्वज्ञत्वसिद्धिमें अनुमान द्वारा बाधा आनेकी असंभवता बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—शङ्काकारकी उक्त शङ्काका समाधान करते हैं कि शङ्काकारने जो ये दो अनुमान दिये हैं और सर्वज्ञका निषेध करनेके लिए दिये हैं वे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सर्वज्ञके बाधक नहीं है, क्योंकि उन हेतुवोंमें अविनाभावरूप व्याप्ति नहीं पायी जाती, जो हेतु विपक्षसे व्यावृत्त हो वही हेतु साध्यको सिद्ध करनेमें समर्थ होता है। तो यहाँ साध्य बताया जा रहा है असर्वज्ञ, तो हेतु असर्वज्ञके प्रतिपक्षी सर्वज्ञमें न जाय तब तो हेतु सही कहलाता है लेकिन सर्वज्ञमें हेतु पहुंचता है, क्योंकि सर्वज्ञता और वक्तापनका विरोध नहीं है। यदि शंकाकार यह कहे कि सर्वज्ञताका और वक्तापनका तो परस्पर विरोध है तो वे यह बतलायें कि सर्वज्ञताका वक्तापनके साथ विरोध क्या सामान्य रूप से है या विशेषरूपसे ? सामान्यतया तो सर्वज्ञताका वक्तापनके साथ अविरोध है क्योंकि यदि सर्वज्ञताका और वक्तापनका विरोध मान लिया जाय तब ज्ञानके बढ़नेपर वक्तापनकी हानि हो बैठेगी, लेकिन देखा यह जाता है कि जिस पुरुषके जितना ऊँचा ज्ञान है वह उतना ही ऊंचा वक्ता हुआ करता है। जिसका जिसके साथ विरोध होता है उसकी बढ़ोतरी होनेपर दूसरेकी हानि देखी गई है। जैसे अग्निका ठंडसे विरोध है तो अग्निके बढ़नेपर उसके विरुद्ध ठंढेपनका विनाश देखा जाता है लेकिन ज्ञानके बढने पर वक्तापनमें हानि तो देखी नहीं जा रही इस कारण वक्तापन सर्वज्ञताका विरोधी नहीं है इस कारण वक्ता भी हो और सर्वज्ञ भी हो, इसमें कोई विरोध नहीं आता। तो वक्तापन हेतु विपक्षसे व्यावृत्त नहीं है याने विपक्षसे उसकी व्यावृत्ति संदिग्ध है। है भी, नहीं भी, यों संदिग्ध है। तो संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्ति होनेसे यह हेतु सिद्ध नहीं होता। वक्ता भी हो कोई और सर्वज्ञ भी हो। इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। तो वक्तापन हेतु सर्वज्ञताका अभाव सिद्ध नहीं कर सकता। तो वक्तापनका सर्वज्ञताके साथ सामान्यतया विरोध तो रहा नहीं। अब यदि यह कहें कि विशेष वक्तापनके साथ सर्वज्ञताका विरोध है तो हेतु असिद्ध है क्योंकि सर्वज्ञके विशेषवक्तृत्व याने जो युक्तिशास्त्रका विरोधी हो यह वक्तृत्व सम्भव नहीं है। और जैसा वक्तापन सर्वज्ञत का विरोधी हो याने जो युक्ति और शास्त्रका अविरुद्ध वक्तापन नहीं है ऐसा वक्तृत्व सर्वज्ञके नहीं है। हाँ जो युक्ति और शास्त्रका विरोध न रखता हो वह वचन विशिष्ट ज्ञानके बिना नहीं पाया जाता। तो जो वक्तापन समस्त पदार्थोंका विषय करने वाला है वह तो सर्वज्ञके ही सम्भव हो सकता। जो युक्ति शास्त्रके अविरुद्ध वचन है, समस्त पदार्थोंका विषय करने वाला वचन है वह तो सर्वज्ञको ही सिद्ध करेगा। तो इस तरह वक्तापनका सर्वज्ञताके साथ विरोध सिद्ध नहीं होता। अब "पुरुषपना" इस हेतुपर विचार कर लीजिए। पुरुषपना हेतुमें भी सामान्यके पुरुषपने के साथ सर्वज्ञत्वका विरोध रखनेकी बात जो कह रहे हो वहाँ भी संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक हेतु है। अर्थात् इस हेतुका विपक्षमें पाया जाना सम्भव है इस लिए हेतु विपक्षमें नहीं रहता इस निर्णयमें संदेह बन गया है और ऐसा हेतु साध्यको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है। जो हेतु सपक्षमें भी रह सके और विपक्षमें भी रह जाय तो उस हेतुसे साध्यका नियम तो नहीं बन सकता। कोई पुरुष भी हो और सर्वज्ञ भी हो उसमें दोनों बातें सम्भव हैं। किसीमें सातिशय ज्ञान हो। सम्पूर्ण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान हो और वह पुरुष हो इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है। बड़े बड़े सातिशय ज्ञानी महापुरुष यहाँ प्रसिद्ध ही हैं। तो पुरुषपना सर्वज्ञताका विरोधी नहीं है। यदि कहो कि हम विशेष पुरुषपनाको सर्वज्ञताका विरोधक मानते हैं तो विशेष पुरुषपनाका यही तो अर्थ कर रहे हो कि जो अज्ञान आदिक दोषसे दूषित है तो ऐसा विशेष पुरुषपना हेतु असिद्ध है, क्योंकि सर्वज्ञ अरहंतमें दूषित पुरुषपना सम्भव नहीं है। अगर यहाँ विशेष पुरुषपना निर्दोषको बताते हो तो उसके साथ कोई विरोध नहीं है, ऐसा निर्दोष पुरुषपना तो सर्वज्ञको ही सिद्ध करेगा तब आपका हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है याने निर्दोषपना होनेसे असर्वज्ञकी सिद्धि करना चाहते हो और होती है सर्वज्ञकी सिद्धि जो अज्ञान आदिक दोषोंसे रहित है ऐसा पुरुष सर्वज्ञ ही होगा। तो इस प्रकार निर्दोष पुरुषमें सर्वज्ञत्वकी सिद्धि है तब यह सिद्ध हो गया कि यह सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र कहीं परम प्रकर्षको प्राप्त होता है, इस बातका कोई अनुमान सर्वज्ञका बाधक न हो सका।

नोपमानमशेषाणां नृणामनुपलम्भतः ।
उपमानोपमेयानां तद्बाधकमसम्भवात् ॥ १०१ ॥

सर्वज्ञत्व सिद्धिमें उपमान द्वारा बाधा आनेकी असंभवता—अब सर्वज्ञ का बाधक उपमान प्रमाण भी नहीं है, इसका भी निर्णय कर लीजिए। उपमान सर्वज्ञका बाधक नहीं है, क्योंकि उपमान प्रमाण तब प्रवृत्त होता है जब उपमानभूत और उपमेयभूत पदार्थोंका ग्रहण उपमा देना हो व जिसकी उपमा देना हो उसका हो जाय याने जिसकी परिज्ञान हो तब ही तो उपमान प्रमाण बनता है। जैसे कहा जाय कि यह रोझ गायके समान है तो उपमान तो हुआ गाय और उपमेय हुआ रोझ तो जब इन दोनोंकी सदृशता प्रसिद्ध होती है तब ही तो यह ज्ञान होता है कि रोझ गायके समान है। तो उपमान प्रमाण उपमान और उपमेय दोनों पदार्थोंका ग्रहण होनेपर होता है, लेकिन यहाँ उपमानभूत हम लोगोंका और उपमेयभूत असर्वज्ञ सिद्ध किए जाने वाले पुरुष विशेषका प्रत्यक्ष ज्ञान तो हो नहीं सकता याने हम लोगोंका प्रत्यक्ष अल्पज्ञ है सो वह न हम सबका ज्ञान कर सकता है। और न असर्वज्ञका ज्ञानकर सकता है। यह उपमान प्रमाण तब बनता जब असर्वज्ञ पुरुष विशेषका और सारे हम लोगों का प्रत्यक्ष होता, लेकिन न तो हमें हम सबका प्रत्यक्ष हो सकता है और जिस पुरुष विशेषको विवादापन्न बताते हैं न उसका प्रत्यक्ष हो सकता। तो जब दोनोंका प्रत्यक्ष ज्ञान न हो सका तो उनकी सदृशता तो नहीं बतायी जा सकती और जब सदृशता प्रसिद्ध नहीं है तो ऐसा उपमान प्रमाण नहीं लगाया जा सकता कि अन्य काल और अन्य देश वाले भी सभी पुरुष असर्वज्ञ हैं, जैसे कि हम लोग। जिसने उपमान और उपमेय दोनोंको नहीं समझा वह उपमान प्रमाण कैसे बना सकता है?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टान्त पूर्वक उपमानको सर्वज्ञत्व सिद्धिका अबाधक बताते हुए प्रत्यक्ष अनुमान व अर्थापत्ति द्वारा सर्वज्ञत्व सिद्धिकी अबाधाका समर्थन— जैसे कोई जन्मका अन्धा पुरुष है उसने न कभी दूध देखा और न बगला देखा दूध भी सफेद है और बगला भी सफेद है। कोई उस अन्धे पुरुषसे कहे कि देखो दूध बगलेके समान सफेद है या बगला दूधके समान सफेद है, तो क्या इस तरह उसको ज्ञान कराया जा सकता? नहीं कराया जा सकता। इसी प्रकार सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेका प्रयास करने वाले लोग न तो सर्वदेश, सर्वकालके पुरुषोंका ज्ञान कर पाते जिसे कि असर्वज्ञ बताते हैं और न तीन लोक तीन कालके हम जैसे लोगोंका प्रत्यक्ष हो सकता है तब फिर उपमानसे कैसे असर्वज्ञ सिद्ध किया जा सकता है? तो उपमान और उपमेय दोनोंका परिचय न करने वाले पुरुष यह सिद्ध न कर सकेंगे कि अन्य काल और अन्य देशके सभी पुरुष असर्वज्ञ हैं। जैसे कि इस काल और इस देशमें रहने वाले हम लोग असर्वज्ञ हैं। यों उपमान प्रमाण सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं कर सकता। यदि कोई यह कहे कि लो, तीन लोक तीन कालके सबका प्रत्यक्ष कर लिया और जब उपमान प्रमाण लिया जायगा तो तीन लोक तीन कालके सब पुरुषोंको जान लिया तो ऐसा जानने वाला ही सर्वज्ञ बन गया। फिर उस दिशामें उपमान प्रमाण सर्वज्ञका अभाव कैसे सिद्ध कर सकता है? सारांश यह है कि सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि प्रत्यक्षसे नहीं होती, क्योंकि जहाँ सर्वका अभाव बताते हैं ऐसा तीन लोक तीन कालका ज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे नहीं बनता। परमार्थ प्रत्यक्षसे तो सर्वज्ञकी ही सिद्धि बनेगी। अनुमान प्रमाण भी सर्वज्ञताकी सिद्धिका बाधक नहीं है, क्योंकि उसके लिए जो हेतु दिये जायेंगे वे विपक्षमें भी पाये जा सकते हैं। इसी प्रकार उपमानकी प्रवृत्ति होती है उपमान और उपमेय दोनों पदार्थोंका परिज्ञान करनेपर, सो यदि दोनों पदार्थोंका परिज्ञान कर लिया अर्थात् समस्त लोक कालके पुरुषोंका ज्ञान कर लिया तो वही सर्वज्ञ हो गया, और यदि ज्ञान नहीं कर सकते, जैसे कि हम लोगोंमें बात पायी ही जाती। हम लोगोंका ज्ञान समस्त लोक समस्त कालके पुरुषोंको नहीं जान पाता तो उपमान प्रमाणसे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि अन्य काल और अन्य देश वाले सभी पुरुष असर्वज्ञ हैं। जैसे कि इस काल और इस देशमें रहने वाले ये हम कुछ लोग असर्वज्ञ हैं यों प्रत्यक्ष अनुमान और उपमान द्वारा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध न हो सका। अब अर्थापत्ति प्रमाण पर विचार करो, उससे भी सर्वज्ञका अभाव सिद्ध न हो सकेगा।

नार्थापत्तिरसर्वज्ञं जगत्साधयितुं क्षमा।
क्षीणत्वादन्यथाभावाभावात्तत्तद्बाधिका ॥ १०२ ॥

Version 1

सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेमें अर्थापत्तिकी अक्षमता—अर्थापत्ति प्रमाण

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी इस जगतको सर्वज्ञ सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है क्योंकि अर्थापत्ति प्रमाण सर्वज्ञका अभाव करनेमें अशक्त है। जो भी अर्थापत्तिमें युक्ति बतावेंगे उसका साध्यके साथ अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है इसलिए अर्थापत्ति भी सर्वज्ञका बाधक नहीं हो सकती। "संसार सर्वज्ञसे रहित है, क्योंकि यदि सर्वज्ञ हो तो सर्वज्ञकृत धर्मादिकके उपदेशका अभाव नहीं हो सकता" इस तरह बनाया गया अर्थापत्ति भी सर्वज्ञके अभावका साधक नहीं है, क्योंकि सर्वज्ञकृत धर्मादिकके उपदेशका अभाव जिसे कि अर्थापत्तिको उत्पन्न करने वाला बताया है वह प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे किसी भी प्रमाणसे जाना नहीं जा सकता। याने किसी भी प्रमाणसे यह प्रतीत न हो सकेगा कि सर्वज्ञकृत अतीन्द्रिय धर्मादिक पदार्थोंका उपदेश नहीं है। यदि यह सिद्ध हो सकता तो कि अतीन्द्रिय सूक्ष्म धर्मादिक पदार्थोंका उपदेश नहीं है तब तो कहा जा सकता था कि अर्थापत्ति बन गई लेकिन अतीन्द्रिय धर्मादिक पदार्थोंका बताना सर्वज्ञ परम्परासे बराबर चला आ रहा है, इसलिए अर्थापत्ति भी सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं है।

रागयुक्त पुरुष द्वारा व्याख्यात अपौरुषेय आगमसे धर्मादिके उपदेश की असिद्धि—यहाँ शङ्काकार कहता है कि धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका उपदेश सर्वज्ञ द्वारा सम्भव नहीं है, वह उपदेश तो अपौरुषेय वेदसे ही प्रसिद्ध हो सकता है। कहा भी है कि धर्मके विषयमें वेद ही प्रमाण है तो जब वेद ही समर्थ है अतीन्द्रिय पदार्थका उपदेश करनेमें तो कोई पुरुष धर्मादिकका प्रत्यक्षद्रष्टा सम्भव न हो सका। जिससे कि वह धर्मादिकका उपदेश करने वाला बन सके। और यों सर्वज्ञकृत धर्मादिक के उपदेशका अभाव सिद्ध ही है। यों सर्वज्ञका अभाव सिद्ध हो जाता है। उक्त शङ्का के समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह कथन यों सङ्गत नहीं कि धर्मादिकके उपदेशका निश्चय अपौरुषेय वेदसे सम्भव नहीं होता। वेदसे शास्त्रसे और वह भी अपौरुषेय हो अथवा किसी भी प्रकारका हो धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंका उससे उपदेश नहीं बन सकता। यदि इसका विवरण चाहते हो तो सुनो! यहाँ यह पूछा जाने योग्य है कि वह वेद किसीके द्वारा व्याख्यान किया गया होकर धर्मका उपदेशक है या व्याख्यान किया गया न होकर धर्मका उपदेशक है? यदि कहो कि व्याख्यान किया गया होकर ही धर्मका उपदेशक है आगम तो यह बताओ कि उस आगमका व्याख्याता जिसने कि व्याख्यान किया है, जिसके द्वारा वह व्याख्यान हुआ है वह वक्ता क्या रागादिक दोषों से युक्त है या रागादिक दोषोंसे रहित है? यदि आगम वक्ता, वेदका व्याख्याता रागादिक दोषोंसे सम्पन्न है तो उसके व्याख्यानसे वेदार्थका निर्णय नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसमें असत्यपना सम्भव है, आखिर उसका व्याख्याता रागादिक दोषोंसे सहित तो हुआ। व्याख्याता जब रागद्वेषसे सम्पन्न है तो रागसे, द्वेषसे अथवा अज्ञानसे मिथ्या अर्थका भी तो व्याख्यान करने वाला हो सकता है इसलिए वह रागी द्वेषी वक्ता वेदार्थ का मिथ्या व्याख्यान भी कर सकता है तो नियम तो कुछ न रहा कि रागादिमान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

व्याख्याता वेदार्थका सही ही व्याख्यान करेगा, मिथ्या नही। तो जब रागादिक दोषों से युक्त व्याख्याता है तो कैसे उसका सत्य उपदेश बन सकता है? यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये गुरु परम्परासे क्रमसे चले आये वेदके अर्थको जानने वाले बड़े विशिष्ट पुरुष वेदार्थके व्याख्यान सही कर देंगे ऐसा नियम बन जायगा याने यद्यपि वेदार्थके व्याख्याता रागी पुरुष हैं लेकिन वे सब गुरु परम्पराके क्रमसे चले आये वेदार्थ के जानने वाले हैं। इस तरह वेदार्थका सम्यक व्याख्यान कर देंगे उनसे मिथ्या व्याख्यान न बनेगा तो इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि भला यह भी बतलाओ कि वे महाजन भी जो गुरु परम्पराके क्रमसे चले आये वेदार्थके व्याख्याता बताये जा रहे हैं क्या वे रागादिक दोषसे युक्त हैं? है ही तो वे वेदार्थके यथार्थ जानने वाले हैं यह ही निर्णय न बन सकेगा, क्योंकि परम्पराके क्रमसे चला आया व्याख्यान भी तो मिथ्या सम्भव हो सकता है। जैसे उपनिषद वाक्योंका अर्थ लो कोई ब्रह्मत्व कर रहा है तो कोई ईश्वर स्तुति अर्थ लगा रहा है। यहाँ ही देख लीजिए उपनिषद वाक्य, वेद वाक्य ही तो हैं, लेकिन ब्रह्माद्वैतवादी तो उसका अर्थ ब्रह्म लगायेंगे और नैयायिक वैशेषिक आदिक उसका अर्थ स्तुति लगायेंगे। ईश्वर आदिक कहेंगे तो देखो गुरु परम्पराके क्रम से वह वेदार्थ चला आ रहा है। पर उसके सम्बन्धमें ही विवाद है। उसे मीमांसक सही नहीं बताते। मीमांसक वेद वाक्यका अर्थ कोई नियोग बताते कोई भावना कहते तो जिसके व्याख्याता रागादिक दोषसे युक्त पुरुष हैं और वे ही पुरुष उस परम्परासे चले आये व्याख्याता हैं तो वहाँ कैसे निर्णय किया जा सकता है कि यह व्याख्याता निर्दोष है। अब दूसरा पक्ष लीजिए। यदि वेदका व्याख्याता रागद्वेष और अज्ञानसे रहित पुरुष है तो उसी पुरुषको ही सर्वज्ञ क्यों नहीं मान लिया जाता? जो रागद्वेष रहित हैं और यथार्थ व्याख्याता है और वेद द्वारा ही सही जान लिया सबको तो उसी को ही सर्वज्ञ क्यों नहीं समझ लिया जाता?

व्याख्याताके प्रस्तुत विषयमें ही अज्ञानरहितपनेका व रागादि रहितपनेका अनिर्णय—शङ्काकार कहता है कि देखिये वेदार्थके अनुष्ठानमें जो पुरुष प्रवीण है उनको ही हम रागद्वेष रहित मानते हैं क्योंकि वेदार्थके करनेमें ही तो वे रागद्वेष रहित हैं। सर्व विषयोंमें रागद्वेष रहित नहीं हैं। कोई किसी विषयमें रागद्वेष नहीं रख रहा है और दूसरे विषयमें रागद्वेष रख रहा है ऐसा भी तो देखा जाता है तो यों ही यहाँ समझ लीजिए कि वेदार्थका व्याख्यान करने वाला पुरुष वेदार्थके विषयमें ही वह मोहरहित है, सम्पूर्ण विषयोंमें मोहरहित नहीं है, क्योंकि कोई पुरुष किसी विषयमें बड़ा विशिष्ट ज्ञान रख रहा हो तो भी दूसरे विषयमें उसका अज्ञान देखा जाता है। दूसरी बात यह है कि वेदार्थका व्याख्यान करने वालेके लिए सभी विषयोंका रागद्वेष न होना और सभी विषयोंका पूर्ण ज्ञान होना यह आवश्यक नहीं है। जो जिसका व्याख्याता है उसके उस विषयका अज्ञान नहीं है, रागद्वेष नहीं है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ऐसा मान करके यहाँ काम बनाना चाहिए, क्योंकि वह पुरुष यदि उसी विषयमें रागादिक युक्त होगा तो ठगाई करने वाला हो सकेगा याने अन्यथा प्रतिपादक बन सकेगा। तो बुद्धिमान पुरुष उस पुरुषको उसका व्याख्यान करनेमें रागी नहीं मानते। स्वय अन्य विषयोंमें रागद्वेष उसके सम्भव है। तो सब विषयोंमें रागादिक रहित तो न बना। कोई व्यक्ति किसी एक शास्त्रका यथार्थ व्याख्यान करता है तो उसके उसी विषयमें अज्ञानका अभाव है अन्य विषयोंमें अज्ञानका अभाव नहीं है। यदि कोई पुरुष जो कि केवल एक शास्त्रका व्याख्यान करे और उसे मान लिया जाय कि उसके सब विषयोंमें रागादिकका अभाव है तब तो सर्वज्ञ वीतराग ही सब शास्त्रोंका व्याख्याता मान लेना चाहिए। और ऐसा मान लेनेपर फिर असर्वज्ञकृत शास्त्र व्याख्यानका लोक व्यवहार भी न बन सकेगा फिर तो यों कहो कि जितने व्याख्याता हैं वे सभी सर्वज्ञ हैं अथवा असर्वज्ञ ? और सर्वज्ञता भी अन्य कहाँसे लावोगे ? इस कारण यह मान लेना चाहिए कि किसीको कुछ विषयोंका शास्त्रार्थ ज्ञान है और कुछ विषयों में रागद्वेष रहितपना है तो बस इस ज्ञान और विरागताको ही यथार्थ व्याख्यानका कारण समझ लीजिए क्योंकि यथार्थ व्याख्यानका कारण तो ये दोनों ही बातें हैं कि उस विषयमें अज्ञान न हो और रागद्वेष भी न हो। तो इन दोनोंका अभाव वेदार्थका व्याख्यान करने वाले ऋषी संतोंके मौजूद हैं क्योंकि उनके वेदार्थके विषयका अज्ञान और रागद्वेषादिक नहीं है और यह बात प्रसिद्ध ही है जो बड़े बड़े प्रजापति मनु आदिक सन्त हुए हैं वे आगम अर्थके विषयमें अज्ञानी न थे, रागी द्वेषी न थे, यदि ऐसा न होता अर्थात् वे ऋषी सन्त उस शास्त्रार्थ ज्ञानके विषयमें अज्ञानी होते और रागी-द्वेषी होते तो उनका व्याख्यान कोई ·म्य पुरुष ग्रहण नहीं कर सकता है। लेकिन आज व्याख्यान बड़े बड़े शिष्ट पुरुषों द्वारा ग्रहण किया जा रहा है और यह परम्परा चल रही है इस कारण समझ लेना चाहिए कि जो आगम अर्थका ही व्याख्याता है वह आगम अर्थके सम्बन्धमें ही ज्ञानी है वह सर्वज्ञ नहीं है और उस शास्त्रार्थके विषय में ही रागद्वेष रहित है, सर्व विषयोंमें रागद्वेष रहित नहीं है तब सर्वज्ञ वीतराग पुरुष विशेष कोई सर्वथा ही स्वीकार किया जाय ऐसा नहीं है। उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्काकार विचारशील नहीं है, क्योंकि यदि ऐसी व्याप्ति लगायी जाय कि जो जिसका व्याख्यान कर रहे हैं वे उसके व्याख्यानके सम्बन्धमें ज्ञानी हैं और रागी नहीं है तो इस तरह सभी मतोंका व्याख्यान यथार्थ हो जायगा, क्योंकि सभी मतानुयायी अपने अपने शास्त्रार्थ व्याख्यानको अज्ञानी व रागी द्वारा नहीं मानते वे भी सभी अपने शब्दार्थके व्याख्याताको ज्ञानी और रागद्वेष रहित समझते हैं। तब कथन मात्रसे तो प्रमाण न बन जायगा। यदि कहने मात्रसे बात प्रमाणभूत हो जाय तो विरुद्ध कहने वाले सभी मतावलम्बियोंकी बात प्रमाणभूत हो जायगी। यहाँ शङ्काकार कहता है कि अन्य मतावलम्बियोंका व्याख्यान यथार्थ नहीं है, क्योंकि उन व्याख्यानोंमें बाधक प्रमाण मौजूद है। जैसे कि लोक प्रसिद्ध मिथ्या उपदेशके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्याख्यान सही नहीं है क्योंकि उनका बाधक प्रमाण देखा जाता है । इसी तरह अन्य मतान्तरोंकी व्याख्या भी यथार्थ नहीं है । इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह तो कोई वेदार्थके सम्बन्धमें भी कह सकता कि वेदार्थ व्याख्यानमें भी बाधक प्रमाण मौजूद है जैसे कि वेदार्थवादी कहते कि सुगत आदिक मतोंके व्याख्यानोंमें परस्पर विरोधका अर्थ भरा है तो उसका प्रतिपादन जो किया जाता है वह ही बाधक प्रमाण है जो यह सिद्ध करता है कि उनका अभिमत यथार्थ नहीं है । तो इसी प्रकार यहाँ भी तो देखिये ! वेदार्थ व्याख्यानोंमें भी अनेक परस्पर विरोधी अभिमत आये हुए हैं । कोई कहता है कि इसका अर्थ भावना है तो कोई कहता है कि इस वाक्यका अर्थ नियोग है । तो कोई कहता है कि इसका अर्थ विधिरूप है । यों परस्पर विरोधी अर्थका प्रतिपादन यहाँ भी हो रहा है इसलिए वह प्रतिपादन भी मिथ्या हो जायगा । इन व्याख्यानोंका केवल भावना ही अर्थ है, केवल नियोग ही अर्थ है या विधि ही अर्थ है, अन्य अर्थ नहीं, ऐसा दूसरेके माने गए अर्थका निराकरण तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये तीनों ही पुरुष जो कुछ कह रहे हैं उनमें परस्पर कुछ विशेषता नहीं है । जो जिस अर्थका मानने वाला है वह दूसरे अर्थका निराकरण करनेके लिए जो आक्षेप करेगा या कुछ समाधान देगा तो ये दोनों दूसरी जगह भी लग सकेंगे । अर्थात् जो आपत्ति बतायी जाय और जो उनका परिहार किया जाय ऐसी बात अन्य अर्थ वाला भी कर सकता है । तब किसी भी पुरुष द्वारा व्याख्यान किया गया वेद-वाक्यमें धर्मादिकका उपदेश व्यवस्थित न बन सकेगा तो यह पक्ष तो न रहा कि व्याख्याता यथार्थ उपदेशक है ।

अव्याख्यात आगमसे उपदेशकी असिद्धि—अब दूसरा पक्ष देखिये ! यदि यह कहे कोई कि व्याख्यान न किए गए वेदसे याने अव्याख्यात वेदसे उपदेश बन जायगा तो यह बात तो सम्भव ही नहीं है । जिसका कुछ व्याख्यान ही नहीं किया जा रहा । केवल पुस्तकमें ही लिखे अक्षर हैं उनसे तो उपदेश नहीं बनता और बिना व्याख्यान किया गया आगम यदि स्वयं अपने अर्थका उत्पादन करने लगे तो यह बतलावो कि उसके अर्थमें फिर विवाद उठ क्यों रहे हैं ? वहाँ विवाद न रहना चाहिए । यदि बिना व्याख्यान किए गए ही वेद वाक्य अर्थको बताने लगेगा तो एक ही अर्थ बताया जाना चाहिए । पर वेदार्थ बताने वालोंके उसके अर्थमें विवाद देखा जाता है । कोई वाक्यका अर्थ भावना करता है तो कोई विधि करता है, तो कोई नियोग बताता है, तो ये तीनों अर्थ परस्परमें विरोधी हैं इस लिए वेदको ही धर्मादिकका उपदेशक बताना नहीं बनता, किन्तु उपदेश सर्वज्ञ और वीतराग पुरुष विशेषसे ही सम्भव हो सकता है । हाँ सर्वज्ञ वीतराग पुरुषकी परम्परासे चले आये हुए जो वेद हों वे प्रमाण-भूत हैं, क्योंकि सर्वज्ञ वीतराग उनके मूल व्याख्याता हैं । अथवा उपदेशक हैं अतएव सर्वज्ञकी सिद्धिमें अर्थापत्तिसे बाधा नहीं आ सकती । जो इस तरहकी अर्थापत्ति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बताया है कि सर्वज्ञकृत धर्मादिकका उपदेश असम्भव है इसलिए सर्वज्ञ नहीं है, यह अर्थापत्ति प्रमाणभूत नहीं है। सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें बाधक नहीं हो सकती।

नागमोऽपौरुषेयोऽस्ति सर्वज्ञाभावसाधनः।
तस्य कार्ये प्रमाणत्वादन्यथाऽनिष्टसिद्धतः॥ १०३ ॥

पौरुषेयोऽप्यसर्वज्ञ प्रणीतो नास्य बाधकः।
तत्र तस्याप्रमाणत्वाद्धर्मादाविव तत्त्वतः॥ १०४ ॥

सर्वज्ञत्व सिद्धिमें आगम प्रमाणकी अबाधकता—उक्त प्रकरणमें यह बता दिया गया है कि सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और अर्थापत्तिमें बाधा नहीं आती। इसी प्रकार अब यहाँ बतला रहे हैं कि आगम भी सर्वज्ञके अभावको सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि उस सम्बन्धमें दो विकल्प उत्पन्न होते हैं कि जो सर्वज्ञ के अभावको सिद्ध करने वाला आगम है वह क्या अपौरुषेय है या पौरुषेय है? यदि यह कहा जाय कि अपौरुषेय आगम सर्वज्ञके अभावको सिद्ध करता है तो यह कथन युक्त नहीं है क्योंकि अपौरुषेय आगम तो यज्ञादिक कार्योंमें ही प्रमाणभूत है और वही उसके मानने वाले मीमांसकोंको ही इष्ट है। यदि ऐसा न माना जायगा तो अनिष्ट प्रसङ्ग आयगा। तब अपौरुषेय आगम तो सर्वज्ञके अभावको करनेका विषय ही नहीं रख रहा है। यदि कहो कि पौरुषेय आगम सर्वज्ञके अभावको सिद्ध कर सकता तो यह बतलाओ कि सर्वज्ञत्वके अभावको सिद्ध करनेके लिए बताये जाने वाला जो पौरुषेय आगम है वह आगम क्या असर्वज्ञ प्रणीत है या सर्वज्ञ प्रणीत है? यदि कहो कि वह आगम असर्वज्ञ याने अल्पज्ञ पुरुष द्वारा रचित है तो वह सर्वज्ञका बाधक नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो असर्वज्ञ पुरुषका बनाया है। जो सबको नहीं जानता वह सब देश सब कालमें सर्वज्ञ नहीं है, इसको कैसे बता सकते हैं? तो सर्वज्ञ सिद्धिमें असर्वज्ञ रचित आगम तो बाधक हो नहीं सकता। अब यदि कहोगे कि सर्वज्ञ पुरुष द्वारा रचित पौरुषेय आगम सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करे तो यह बात तो सर्वज्ञके अभावको सिद्ध करने वाली न बनी। पहिले ही मूलमें सर्वज्ञ मान लिया सो यह बात मीमांसकोंको मान्य नहीं है और उसे सर्वज्ञका बाधक भी नहीं कहा जा सकता है। जब आगम सर्वज्ञ द्वारा रचित है ऐसा स्वीकार कर लिया तो सर्वज्ञकी सिद्धि तो अपने आप हो ही गई है।

अभावोऽपि प्रमाणं ते निषेध्याधारवेदने।
Report any errors at vikasnd@gmail.com
निषेध्यस्मरणे च स्यान्नास्तिताज्ञानमञ्जसा॥ १०५ ॥

http://www.jainkosh.org

न चाशेष जगज्ज्ञानं कुतश्चिदुपपद्यते ।
नापि सर्वज्ञसंवित्तिः पूर्वतत्स्मरणं कुतः ॥ १०६ ॥

येनाशेषजगत्यस्य सर्वज्ञस्य निषेधनम् ।
परोपगमतस्य निषेधे स्वेष्टबाधनम् ॥ १०७ ॥

मिथ्यैकान्तनिषेधस्तु युक्तोऽनेकान्तसिद्धितः ।
नासर्वज्ञजगत्सिद्धेः सर्वज्ञप्रतिषेधनम् ॥ १०८ ॥

सर्वज्ञताका अभाव सिद्ध करनेमें अभाव प्रमाणकी अक्षमता—यहाँ तक यह सिद्ध किया गया कि प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति और आगम ये सर्वज्ञकी सिद्धिमें बाधक नहीं हैं । अब अभाव प्रमाणके सम्बन्धमें विचार किया जा रहा है । जो लोग अभाव प्रमाण मानते हैं और यह बात रखना चाहते हैं कि सर्वज्ञ नहीं दीखता इस कारण सर्वज्ञका अभाव है, ऐसा कहने वाले पुरुष भी अभाव प्रमाण द्वारा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध न कर सकेंगे । अभाव प्रमाण तो वहाँ घटित किया जा सकता है कि जिसका अभाव करना है और जहाँ अभाव करना है तो निषेध किए जाने वाली वस्तुके उस आधारका पता तो हो, और फिर जिसका निषेध करते हो उसका स्मरण हो तब अभावका ज्ञान बनता है जैसे कोई पुरुष कहता है कि इस कमरेमें घड़ा नहीं है तो उस पुरुषके चित्तमें दो बातें आयी—एक तो जिस आधारमें घड़ेका निषेध किया जा रहा है उस सारे कमरेका उसे ज्ञान होता है और घड़ेका स्मरण किया है जिसका कि निषेध किया जाता है ? तो निषेध्यका स्मरण हो और निषेध्यके आधारका परिचय हो तब उसे नास्तित्वका ज्ञान हो सकता है । लेकिन किसी तरहसे समस्त जगत का ज्ञान बन नहीं रहा है और न सर्वज्ञका स्मरण हो रहा है यह बात वही तो कह सकेगा जिसने तीन लोक तीन कालको पहिले जान लिया हो । जहाँ कि सर्वज्ञका अभाव बताते हैं और फिर सर्वज्ञका स्मरण भी हो जिसका कि अभाव बताते हैं तब ही तो अभाव प्रमाण बन पावेगा सो न तो तीन लोक तीन कालका ज्ञान है और न सर्वज्ञका स्मरण है, सर्वज्ञका पहिले कभी ज्ञान ही नहीं हो सका तो स्मरण कहाँसे बने । तो जब ये दोनों नहीं हो रहे हैं तो सारे संसारमें सर्वज्ञका निषेध करनेकी बात कैसे बन सकती है ? और यदि कोई यह कहे कि दूसरेने सर्वज्ञ माना है तो उसके माने हुए सर्वज्ञको मानकर उसका निषेध करेंगे तो इसमें स्वयंके इष्टमें बाधा आती है । और, यदि कोई यह कहे कि फिर स्याद्वादी लोग मिथ्या एकान्तका निषेध कैसे करते हैं ? तो वह निषेध युक्त है । क्योंकि अनेकान्तकी सिद्धि प्रमाणभूत हो रही है । तो अभाव प्रमाणसे किसी भी तरह सर्वज्ञका प्रतिषेध नहीं किया जा सकता है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अदृश्यानुपलब्धिरूप अभावसे सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि— कुछ लोग अभावको भी प्रमाण मानते हैं और अभाव प्रमाण वहाँ है जहाँ पाँचों प्रमाण न रहते हों याने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति और आगम ये ५ प्रमाण सद्भावके साधक हैं। इनका विषय सत्ता है। तो अस्तित्वको सिद्ध करने वाले ५ प्रमाणोंकी जहाँ निवृत्ति है वहाँ अभाव प्रमाण रहता है। तो अर्थ यह हुआ कि सर्वज्ञ का विषय करने वाले अस्तित्वको सिद्ध करने वाले ५ प्रमाण जहाँ न रहते हों वहाँ अभाव प्रमाण हुआ करता है। तो यहाँ पहिले यह ही निर्णय कर लीजिये कि क्या अभावका इतना ही अर्थ है कि जहाँ पाँचों प्रमाणकी निवृत्ति हो। या अभावका अर्थ यह है कि अन्य वस्तुका परिज्ञान किया जाय उसे अभाव कहते हैं। यदि यह कहा जाय कि सर्वज्ञ विषयक प्रत्यक्ष यदि परमाणु रूपसे आत्माका परिणाम न होना यह ही अभाव है तो यह तो सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि सर्वज्ञके सद्भावमें भी आत्माका ऐसा अपरिणाम बन सकता है। कोई यह नहीं जान सकता कि यह पुरुष सर्वज्ञ है, क्योंकि वह अतीन्द्रिय है, इन्द्रिय द्वारा विषयभूत नहीं है। तो जैसे कोई दूसरेके मनकी विशेष बातको नहीं जान सकते हैं उसी तरहसे कोई पुरुष सर्वज्ञ तकको भी सीधा प्रत्यक्ष प्रमाणसे समझ नहीं सकता है कि यह है सर्वज्ञ। तो जिस प्रकार दूसरेके मनकी विशेष बात जाननेमें नहीं आती फिर भी उसका सद्भाव माना ही जाता है। तो दूसरेके मनकी बातका अभाव तो नहीं किया जा सकता। इसी तरह यहाँ भी यह समझें कि किसी भी सर्वज्ञका प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे ज्ञान नहीं होता याने उसकी अजानकारी हो तो उससे सर्वज्ञका अभाव नहीं बताया जा सकता, क्योंकि आत्मामें सर्वज्ञविषयक अज्ञान रहनेपर भी उसका सद्भाव बना रह सकता है। याने कोई पुरुष प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सर्वज्ञकी जानकारी न कर सके तो यह उसके लिए ही तो बात हुई। पर इसका यह अर्थ तो न होगा कि सर्वज्ञ कहीं भी नहीं है। तो आत्मामें सर्वज्ञविषयक अज्ञान परिणाम बना रहे फिर भी सर्वज्ञका सद्भाव हो सकता है। सारांश यह हुआ कि अदृश्यकी अनुपलब्धि अभावकी साधक नहीं बन सकती। याने जो पदार्थ अदृश्य है और वह यदि इसको नहीं दीख रहा है तो इतने मात्रसे यह अभाव नहीं कहा जा सकता। बतलाइये परमाणुकी उपलब्धि कैसे हो रही है? लेकिन परमाणुकी उपलब्धि नहीं हो रही है इतने मात्रसे परमाणु का अभाव तो नहीं बताया जा सकता। तो इसमें अदृश्यानुपलब्धि अभावके साधक नहीं हैं क्योंकि दृश्यमान अभावके साधक हैं याने जो पदार्थ दृश्य हो सकते हैं उनकी अगर अनुपलब्धि हो रही, वे नहीं पाये जा रहे तो अभाव सिद्ध हो सकता। जैसे—घड़ा दृश्य है और वह न दीखे तो कह सकते हैं कि घड़ेका अभाव है। लेकिन सर्वज्ञ तो अदृश्य है, उसके नहीं पाया जाता अर्थात् वह जानकारीमें न आये तो इससे कहीं सर्वज्ञका अभाव न बन जायगा। जो पाया जाने योग्य हो और फिर न पाया जाय तो उसका अभाव बता दिया जाय, पर जो पाया जाने योग्य नहीं है उसका अभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कैसे कहा जा सकता ? तो सर्वज्ञ उपलब्धिके अयोग्य है इसलिए उसके अभाव प्रमाण से अभाव नहीं सिद्ध किया जा सकता है। अतः अदृश्यानुपलब्धिरूप अभाव सर्वज्ञत्वके अभावका साधक नहीं है।

निषेध्याधारवेदनरूप अभाव प्रमाणकी भी सर्वज्ञत्वकी असिद्धिमें अक्षमता—वस्तुके अभावकी प्रसिद्धि दो विधियोंसे की गई है—एक तो जो पदार्थ दृश्य हो सकता है फिर उसकी अनुपलब्धि हो तो उससे अभाव जाना जाता है। जैसे घट दृश्य है और फिर वह घट पाया न जाय तो घटका अभाव कहा जाता है। दूसरी विधि यों है कि जिसका निषेध किया जाता है उससे भिन्न अन्य पदार्थकी उपलब्धि पाई जा रही हो। तो पहिली विधिका तो नाम है अदृश्यानुपलब्धि। उसके सम्बन्धमें तो वर्णन किया जा चुका है कि अदृश्यानुपलब्धिसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। अब देखिये निषेध्यान्यवेदनकी बात अर्थात् जो निषेध किये जानेके योग्य है उससे भिन्न अन्य पदार्थका बोध होना अभावको सिद्ध करता है, इसकी बात सुनो! निषेध्यान्यवेदन तब ही तो सम्भव है जब कि जिस ज्ञानसे निषेध्य जाना जा सकता है उस ही ज्ञान से उसके बजाय अन्य पदार्थ जाना जाता हो याने एकज्ञानसंसर्गी वस्तुमें यह अभाव प्रमाण घटित होता है। जैसे जब कहा कि इस कमरेमें घट नहीं है तो उसका अर्थ यह है कि घटका भी ज्ञान आँखसे होता था और घटको छोड़कर अन्य पदार्थ याने एक वह कमरा उसका भी ज्ञान आँखसे होता है। तो एक ज्ञानका जिसमें संसर्ग हो वहाँ तो निषेध्यान्यवेदन रूप अभाव बनता है। निषेध्यान्यवेदनका अर्थ है कि जो पदार्थ निषेध्य हो रहा है उसके बजाय अन्य चीजका ज्ञान होना। तो यह अभाव प्रमाण वहाँ ही तो लगेगा कि जहाँ एक ही ज्ञानसे निषेध्यका ज्ञान होता हो और उस ही ज्ञानसे अन्यका ज्ञान हो सकता हो। जैसे कि घटके एक ज्ञानसे संसर्गी भूतलका ज्ञान हुआ तो केवल भूतलको देखकर घटका अभाव बताया जाता है। इसका सारांश यह है कि जैसे घट और कमरा ये एक चक्षुइन्द्रियके ज्ञानसे संसर्गी हैं अब ऐसी स्थिति में कि चाक्षुषज्ञान संसर्गसे घटशून्य भूतलमें यह देखा गया कि जिसका अभाव बताना है ऐसे घटके अतिरिक्त अन्य वस्तुका ज्ञान बना तब उस ज्ञानसे यह कहा जा सकता कि इस कमरेमें घड़ा नहीं है। भावार्थ यह है कि आंखसे ही तो घड़ा देखा जाता है और आँखसे ही कमरा देखा जाता है। अब उस समय आँखसे घटसंसर्गरहित कमरा देखा गया तो उससे घटका अभाव जाना गया। ऐसे ही जिस एक ज्ञानसे सर्वज्ञ जाना जाता हो फिर उस ही ज्ञानसे सर्वज्ञरहित दुनिया जानी गई हो तब तो कह सकते हो कि सर्वज्ञरहित दुनिया है। प्रतिषेध्य तो यहाँ सर्वज्ञ है और उसको छोड़कर उसके बजाय अन्य वस्तुमें ज्ञान हो तब ही तो सर्वज्ञका अभाव हो। लेकिन सर्वज्ञके एक ज्ञानसे संसर्गी जगत नहीं दीख रहा है याने सर्वज्ञ जिस ज्ञानसे जाना जाय उस ही ज्ञानका संसर्ग बने सर्वज्ञशून्य दुनियाका, तब तो सर्वज्ञका अभाव बन सकता था,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लेकिन सर्वज्ञके एक ज्ञानसे संसर्गी हम लोगोंका प्रत्यक्षभूत कोई वस्तु स्वीकार नहीं है अतएव निषेधान्यवेदनरूप अभाव प्रमाणके द्वारा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता।

निषेध्य सर्वज्ञके एक अनुमानादिज्ञानसे संसर्गी जगतका ज्ञान बताकर भी सर्वज्ञके अभावकी असिद्धि—यहाँ शङ्काकार यदि यह कहे कि हम अनुमान आदिक किसी भी एक ज्ञानसे सर्वज्ञ और सर्वज्ञसे भिन्न वस्तुका संसर्ग बना लेंगे और इस बल-बूतेपर सर्वज्ञके एक ज्ञानसे संसर्गी किसी अनुमेय पदार्थमें अनुमान ज्ञान सिद्ध करने लगेंगे। इस तरह तो सर्वज्ञका अभाव सिद्ध हो जायगा। इसके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस तरह एकज्ञान संसर्गीपना बनाओगे तो कहीं कभी किसीके सर्वज्ञताकी सिद्धि हो जायगी याने एक ज्ञान संसर्गीका अर्थ यह है कि जिस ज्ञानके द्वारा सर्वज्ञको समझा उस ही ज्ञानसे संसर्गी होवे सर्वज्ञके बजाय अन्यको समझा तो इस विधिमें सर्वज्ञको तो पहिले ही मान लिया तब सब जगह सब कालमें सबके सर्वज्ञका अभाव माननेपर किसी वस्तुका उसके साथ एक ज्ञान संसर्ग नहीं हो सकता। तब सर्वज्ञान्यवेदनरूप अभाव प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। जैसे कि घड़ा और कमरा ये एक चाक्षुष ज्ञान द्वारा जाने जाते हैं तब इस स्थितिमें जिस समय घटरहित केवल कमरे का ग्रहण हो तब वहाँ यह बात निभेगी कि इस कमरेमें घड़ा नहीं है, क्योंकि जिस एक ज्ञानसे उपलब्धि योग्य हो सकती थी घड़ा, वह अब उपलब्ध नहीं है। तो जिस निषेध किए जाने वाले पदार्थ और जहां निषेध किया जाना है ऐसी जगह इन दोनों का ग्रहण हो सकता हो तब तो अभाव प्रमाणकी बात लगाई जाय। लेकिन यहां निषेध्यसर्वज्ञका किसी एक ज्ञानसे ग्रहण नहीं है और उस ही एक ज्ञानसे निषेधस्थान तीन लोकका भी तीन कालका भी ग्रहण नहीं है। तो निषेध्यान्यवेदनरूप अभाव प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव कैसे सिद्ध किया जा सकता है? सर्वज्ञ तो अतीन्द्रिय हैं और सारा निषेध स्थान याने तीन लोक और तीन काल रूप वस्तु ये इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें आते नहीं हैं। इस कारण निषेध्यसे अन्य वस्तुके ज्ञान होनेरूप अभाव प्रमाण यहां बनता नहीं है। और भी सोचिये! अनुमान आदिक ज्ञानसे सर्वज्ञ और सर्वज्ञसे भिन्न वस्तुका ग्रहण माना जाय तो ऐसा माननेमें सर्वज्ञको तो पहिले मान लिया गया, फिर सर्वज्ञका अभाव कैसे सिद्ध हो सकता है।

असर्वज्ञवादियोंके यहाँ निषेध्याधारग्रहण व प्रतियोगीस्मरणकी असंभवता होनेसे सर्वज्ञके अभावकी सिद्धिकी असंभवता--यहाँ प्रकरण यह चल रहा है कि सर्वज्ञपनेका अभाव सिद्ध करनेमें अभाव प्रमाण समर्थ नहीं है। इस सम्बन्धमें दो बातों पर प्रकाश डाला है। एक तो अदृश्यानुपलब्धिसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। दूसरे निषेध्यान्यस्वसम्वेदनसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं किया जा सकता। अब तीसरी बात और भी देखिये ! अभाव प्रमाणकी प्रवृत्ति इस प्रकार बतायी गई है कि जहाँ निषेध किया जाना हो उसके सद्भावका तो ग्रहण करें और उसके प्रतियोगीका स्मरण हो, फिर "नहीं है" इस प्रकारका इन्द्रिय निरपेक्ष मानसिक नास्तिकता ज्ञात हो तब अभाव प्रमाण प्रवृत्त होता है। तो अब इस विधिके अनुसार इस प्रकरणमें जरा घटित तो कीजिए, कैसे घटित होगा ? निषेध्याधारका पहिले ग्रहण होना चाहिए। निषेध्य है यहाँ सर्वज्ञ सर्वज्ञका निषेध किया जा रहा है तो सर्वज्ञका आधारभूत तीन लोक तीन कालको किसी प्रकारसे पहिले ग्रहण किया जाना चाहिए क्योंकि तीन लोक तीन कालमें सर्वज्ञका अभाव सिद्ध किया जा रहा है, तो इसकी सिद्धिके लिए पहिले तीन लोक तीन कालका ज्ञान होना चाहिए और फिर उसका प्रतियोगी है प्रतिषेध्य सर्वज्ञ, उसका स्मरण होना चाहिए। पर ये सब कुछ हो नहीं रहे हैं इसी कारण सर्वज्ञका अभावरूप मानसिक अभाव भी नहीं बन सकता है। देखिये ! न तो निषेध्यके आधारभूत तीन लोक तीन कालके सद्भावका ग्रहण सर्वज्ञके अभाव मानने वालोंके यहाँ हो सकता। और न ही उसको प्रतिषेध्य सर्वज्ञका स्मरण बन रहा है. क्योंकि उसने सर्वज्ञपनेका कभी अनुभव ही नहीं किया, सर्वज्ञका ज्ञान ही नहीं किया। तो जिसका पहिले कभी ज्ञान न हुआ हो उसका स्मरण कैसे बन सकता है ? तो यों सब जगह सब कालमें सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता।

सर्वज्ञवादियोंकी स्वीकृत सर्वज्ञको स्थापित कर निषेध्याधार ग्रहण व प्रतियोगी स्मरण माननेपर सर्वज्ञके अभावकी असिद्धि व सर्वज्ञकी सिद्धिकी प्रसिद्धि— यहाँ शङ्काकार कहता है कि हम तो सर्वज्ञ नहीं मानते लेकिन सर्वज्ञवादी तो सर्वज्ञ मानते हैं। तो सर्वज्ञवादियोंके स्वीकारसे सर्वज्ञ सिद्ध है और इस तरह हम सर्वज्ञका स्मरण करने लगेंगे। अभाव करनेके लिए और सर्वज्ञवादियोंके स्वीकार किए गए सर्वज्ञके आधारभूत तीन काल और तीन जगत भी सिद्ध है, इस तरह सुने गए सर्वज्ञका स्मरण कर लिया और सुने गए सर्वज्ञके आधारभूत तीन काल तीन लोकका ग्रहण कर लिया और इस तरह फिर सर्वज्ञके सम्बन्धमें इसका इन्द्रिय निरपेक्ष मानसिक नास्तित्व ज्ञान बन जाता है कि सब जगह और सब कालमें सर्वज्ञ है नहीं। इस तरह अभाव प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव बन जायगा। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह सर्वज्ञका स्मरण और सर्वज्ञके आधारभूत तीन लोक तीन कालका परिचय मान लेनेपर शङ्काकारके इष्ट मतका ही विघात हो जाता है। शङ्काकारने यहाँ सर्वज्ञवादियोंकी स्वीकारताके बलपर सर्वज्ञको सिद्ध माना है तो वे वह बतायें कि सर्वज्ञवादियोंका यह स्वीकार प्रमाणभूत है शङ्काकारको या अप्रमाण है ? यदि सर्वज्ञवादियों द्वारा स्वीकार किये गये सर्वज्ञका सद्भाव शङ्काकारको प्रमाणभूत है तो उससे सर्वज्ञ सिद्ध हो ही गया। सर्वज्ञका निषेध करने वाले अभाव प्रमाणका वहाँ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दखल ही क्या रहा ? अब तो अभाव प्रमाण भी बाधित हो गया। यदि शङ्काकार कहे कि सर्वज्ञवादियों द्वारा स्वीकार किया गया सर्वज्ञ हमें अप्रमाण है तो जब सर्वज्ञवादियोंका सर्वज्ञ असर्वज्ञवादियोंको अप्रमाण है, प्रमाणभूत ही नहीं है तब समस्या वहीकी वही सामने खड़ी रही। उससे न तो निषेध्यका स्मरण हो सकता और न निषेध्यके आधारभूत वस्तुका ग्रहण प्रमाण हो सकता, क्योंकि वह सब शङ्काकारको अप्रमाण है, तब उससे न तो सर्वज्ञका स्मरण प्रमाण बना और न सर्वज्ञका आधारभूत तीन लोक तीन काल प्रमाण बना। सारांश यह है कि जब सर्वज्ञवादियोंका माना हुआ सर्वज्ञ उसकी स्वीकारता मीमांसकोंके लिए प्रमाण नहीं है तब फिर निषेध्य स्मरण और निषेध्यके आधारभूत पदार्थका ज्ञान कैसे प्रमाण बन सकता है ? और जब तीन लोक तीन काल और सर्वज्ञ ये नहीं माने गए तो सर्वज्ञके अभावको सिद्ध करनेमें अभाव प्रमाणकी उत्पत्ति हो ही नहीं सकती।

अनेकान्तसिद्धिसे स्वयं सर्वथैकान्तप्रतिषेधकी संभवता होनेसे असर्वज्ञवादियोंके उलाहनेकी अशक्यता—शङ्काकार कहता है कि इस तरहकी युक्तियाँ चलाकर अभाव प्रमाणको जो खण्डित किया जा रहा है तो इस तरह तो हम यह भी कह सकते हैं कि फिर स्याद्वादी जन मिथ्या एकान्तका निषेध कैसे कर सकते ? क्योंकि मिथ्या एकान्तका स्मरण हो और मिथ्या एकान्तका जहाँ निषेध किया जाता हो उसके आधारभूतका ज्ञान हो तब ही तो मिथ्या एकान्तका निषेध किया जा सकेगा सो मिथ्या एकान्तका स्मरण कर लिया तो मिथ्या एकान्त सिद्ध हो ही गया। फिर निषेध कैसे ? तो जब मिथ्या एकान्त स्याद्वादियोंको स्वीकार नहीं है तो उसका किसी प्रकार ज्ञान ही न हो सकेगा और स्मरण भी न बन सकेगा। और मिथ्या एकान्तका स्मरण किए बिना मिथ्या एकान्तका निषेध नहीं किया जा सकता है। यदि कहीं कोई मिथ्या एकान्तका अनुभव स्वीकार कर लिया तब फिर मिथ्या एकान्त है ही नहीं। इस तरह सर्वथा उसका प्रतिषेध नहीं बन सकता। शङ्काकार ही कह रहे हैं कि स्याद्वादी यदि यह कहें कि हम तो मिथ्या एकान्तको स्वीकार नहीं करते, किन्तु एकान्तवादी लोग मिथ्या एकान्तको स्वीकार करते हैं, इस तरह उनके स्वीकारसे प्रसिद्ध और स्मरण किया गया मिथ्या एकान्तका हम निषेध करते हैं तो इसपर स्याद्वादी यह बतायें कि एकान्तवादियोंके द्वारा जो मिथ्या एकान्तका स्वीकार होता है तो उनका स्वीकार स्याद्वादियोंको प्रमाणभूत है या अप्रमाण ? यदि मिथ्या एकान्तवादियोंका स्वीकृत मिथ्या एकान्त प्रमाणभूत है तो उससे तो मिथ्या एकान्त ही सिद्ध होता। उसका अभाव सिद्ध करनेके लिए जो भी प्रमाण दिया जाता हो वह स्वयं खण्डित हो गया और यों स्याद्वादियोंके इष्टका विघात हो गया। तो पहिली बात तो नहीं बनी। अब यदि स्याद्वादी यह कहें कि हमको एकान्तवादियोंका स्वीकार अप्रमाण है याने मिथ्या एकान्तका स्वीकार मिथ्या एकान्तवादियोंने किया है वह हमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाणभूत नहीं है। तो सुनो ! जब कि मिथ्या एकान्तवादियोंका स्वीकृत मिथ्या एकान्त स्याद्वादियोंको प्रमाणभूत नहीं है तो अब इस हालतमें स्मरण कैसे बनेगा ? और जब मिथ्या एकान्तका स्मरण न बना तो 'मिथ्या एकान्त नहीं है' इस तरहका परिचय मिथ्या ही कहलायगा। तो सर्वज्ञके अभावमें बाधा देनेके लिए जो स्याद्वादियोंने युक्ति बताई है उससे तो फिर मिथ्या एकान्तका भी अभाव न कहा जा सकेगा। उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि उक्त उलाहना देना ठीक नहीं है। हम एकान्तका निषेध एकान्तवादियोंकी स्वीकारताके बलपर नहीं कर रहे हैं, किन्तु अनेकान्तकी सिद्धि हो जानेसे मिथ्या एकान्तका प्रतिषेध स्वयं हो जाता है। तो अनेकान्तकी सिद्धिसे मिथ्या एकान्तके निषेधकी व्यवस्था है। निश्चयतः बाह्य और अन्तरङ्ग वस्तु प्रमाणसे अनेकान्तस्वरूप ही सिद्ध है। तो प्रमाणसे सिद्ध है समग्र वस्तु अनेकान्तात्मक, अब प्रमाणसिद्ध अनेकान्तात्मक वस्तुमें कोई मिथ्या एकान्तका अध्यारोप करेगा तो याने वहाँ कोई मिथ्या एकान्तकी कल्पना करेगा तो ऐसी कल्पनाका यहाँ निषेध किया गया है। जो पुरुष मिथ्याके उदयसे व्याकुलचित्त हैं और उनकी बुद्धिमें एक विपरीत अभिप्रायका निषेध किया जा रहा है। मिथ्या एकान्त कोई वस्तु नहीं जिसका निषेध किया जा रहा हो, किन्तु अनेकान्तात्मक वस्तुके विषयमें मिथ्या एकान्तकी कोई कल्पना करे तो उस अज्ञानीकी कल्पनाका निषेध किया जाता है। याने जिस दुराग्रहसे मिथ्यादृष्टि जीव अनेकान्तात्मक वस्तुमें एकान्तकी कल्पना करते हैं उन्हें समझाया जाता है कि देखो ! वस्तु अनेक धर्मात्मक है। जो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सत् है वही वस्तु परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे असत् है। जो ही वस्तु द्रव्यकी अपेक्षासे नित्य है वही वस्तु पर्यायकी अपेक्षासे अनित्य है। जो ही वस्तु स्वभावदृष्टिसे एक है वही वस्तु परिणमनकी दृष्टिसे अनेक है। यों वस्तु अनेकान्तरूप है। उसको हम किसी एकान्तरूप न मानें। केवल नित्य ही है, केवल अनित्य ही है आदिक रूपसे पदार्थको मत मानें, इस तरह अनेकान्तात्मकताकी प्रसिद्धि करके एकान्तका प्रतिषेध किया जा रहा है। यों मिथ्या एकान्तका निषेध करनेमें स्याद्वादियोंके यहाँ किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं हो सकती।

असर्वज्ञसिद्धिसे सर्वज्ञनिषेधकी कल्पना करनेकी अशक्यता—इस प्रसङ्गमें शङ्काकार यह कहता है कि इसी तरह हमारा सर्वज्ञ प्रतिषेध मान लीजिए। याने असर्वज्ञ जगतकी सिद्धि होनेसे ही सर्वज्ञका प्रतिषेध हो जाता है। यहाँ हम यह कह सकते हैं कि प्रमाणसे सर्वज्ञरहित जगत सिद्ध है। और सर्वज्ञवादी यहाँ सर्वज्ञकी कल्पना कर रहे हैं। तो सर्वज्ञ कोई वस्तु नहीं है जिसका कि तुम निषेध करते हो। किन्तु सर्वज्ञवादियोंकी कल्पनाका हम निषेध करते हैं और इस तरह सर्वज्ञका निषेध बन जाता है। यहाँ भी कोई दोष न आयगा। इसके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह असर्वज्ञ जगतकी सिद्धि नहीं की जा सकती, क्योंकि किसी भी प्रमाणसे सर्वज्ञ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शून्यकी सिद्धि नहीं बनती। अनेकान्तात्मकताकी तो यही बात है कि प्रत्यक्ष अनुमान आदिक प्रमाणसे वस्तु अनेकान्तात्मक सिद्ध हो जाती है। भली प्रकार अनुभव बन रहा है सबका कि वही वस्तु पहिले भी थी अब भी है, लेकिन उस वस्तुकी स्थिति बदल गई है तो लो यों नित्य और अनित्यपना दोनों ही प्रत्यक्षज्ञानसे ज्ञात हो रहे तो अनेक ज्ञान इस बातको सिद्ध करते हैं कि वस्तु अनेकान्तात्मक है। तो यों जब अनेकान्तात्मक वस्तुकी सिद्धि हो गयी तो वहाँ सर्वथा एकान्तका निषेध बन जाता है। तो जिस तरह प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे वस्तुमें अनेकांतपना सिद्ध है उसी प्रकार प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे असर्वज्ञ जगत सिद्ध नहीं है।

सर्वज्ञ सिद्धिमें बाधक प्रमाणकी असम्भवता होनेसे सर्वज्ञसिद्धिकी निर्बाधता—इस सम्बन्धमें तो पहिले बहुत विवरणके साथ कहा जा चुका है कि सर्वज्ञशून्य जगतकी सिद्धि न प्रत्यक्ष प्रमाणसे है न अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति और आगमसे है। तो जब सर्वज्ञ रहित जगतकी प्रसिद्धि ही नहीं है तो असर्वज्ञ जगतकी सिद्धि बताकर सर्वज्ञका निषेध कैसे किया जा सकता है ? तो जब इस तरह भी निषेध न बन सका तो अभाव प्रमाण द्वारा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेमें वे सभी बाधायें दोषरूप सिद्ध होती ही हैं याने तीनों ही विधियोंसे अभाव प्रमाणकी गति सर्वज्ञ का अभाव सिद्ध करनेमें घटित नहीं होती है। न तो अदृश्यानुपलब्धिसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर सकते और न निषेध्यान्यवेदनसे सर्वज्ञका अभाव सिद्धकर सकते और न तीसरी विधिसे सर्वज्ञका अभाव बन सकेगा याने न तो निषेध्य सर्वज्ञका स्मरण है, और न निषेध्य सर्वज्ञाधारभूत ३ लोक ३ कालका परिचय है। तो इस स्थितिमें भी सर्वज्ञके अभावको सिद्ध करनेकी बात नहीं बन सकती है। इस तरह कुछ दार्शनिकोंके द्वारा माने गए ये ६ के ६ प्रमाण सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं। वे ६ प्रमाण ये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, आगम और अभाव। तो जब कोई प्रमाण सर्वज्ञका अभाव सिद्ध न कर सका तो इससे यह बात निर्बाध सिद्ध है कि वीतराग निर्दोष कोई परम पुरुष सर्वज्ञ होता है।

बाधक प्रमाणका अभाव सुनिर्णीत होनेसे सर्वज्ञकी सिद्धिका निर्णय—असर्वज्ञवादियोंने ६ प्रमाण माने हैं जिनमें ५ प्रमाण तो सत्ताके साधक हैं और अभाव प्रमाण अभावका साधक है। तो ये ६ प्रमाण सर्वज्ञकी सिद्धिमें बाधा नहीं दे सके हैं। सत्ता साधक प्रमाणका तो अभाव विषय ही नहीं है और अभाव प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध हो नहीं सका कोई यह कहे कि न सही कहीं सर्वज्ञका अभाव तो दूसरे देश काल और दूसरे पुरुषकी अपेक्षासे अभाव बन जायगा, यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा कहनेपर किसी अन्य देश काल और पुरुषकी अपेक्षासे सर्वज्ञका सद्भाव तो मानना ही पड़ेगा। किसी देश कालमें सर्वज्ञ नहीं है, इतना कहनेसे यह तो सिद्ध न होगा कि सर्वत्र सर्व कालमें सर्वज्ञ नहीं है। देशादिक विशेषकी अपेक्षासे अभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रमाणको सर्वज्ञका बाधक कहा जाय तो उसका अर्थ ही यह निकला कि किसी देशादिक विशेषमें उसका अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया है। तो इस तरह भी सब जगह सर्व समय सर्व पुरुषोंमें सर्वज्ञका अभाव है, यह सिद्ध नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें यह भी जान लेना चाहिए कि किसी देशमें किसी कालमें कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं है यह कथन सर्वथा निषेध करनेका साधक नहीं है। ऐसा तो है ही। जैसे इस भरत क्षेत्रमें पंचम कालमें कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं है, ठीक ही बात है लेकिन यह बात कहना कि सभी जगह सभी कालोंमें सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता। यह कथन युक्त नहीं है। तो इन सब प्रकरणोंसे यह निर्णय कर लेना चाहिए कि बाधक प्रमाणका भले प्रकार अभाव निश्चित होनेसे सर्वज्ञ सिद्ध हो जाता है। जैसे हम आप लोगोंका सुख इस सुखमें कोई बाधक प्रमाण नहीं आता। देखो सुख परिणतिमें कोई सन्देह तो नहीं करता। सुख है ऐसा सबको अनुभव हो रहा है, क्योंकि सुखकी सत्तामें कोई बाधक प्रमाण नहीं आ रहा। तो जिस किसी भी वस्तुकी सत्ताकी सिद्धि करना होता है वहाँ यह युक्ति देखी जाती है कि इसमें कोई बाधक प्रमाण तो नहीं है। बाधकका अभाव सुनिर्णीत हो, इस विषयको छोड़कर अन्य कोई उपाय वस्तु स्थितिका साधक नहीं है अर्थात् प्रमाण कर सकने वाला नहीं है।

सर्वज्ञ परमपुरुषके कर्मभूभृद्भेत्तृत्वकी सिद्धि—उक्त विवेचनोंसे यों सिद्ध हुआ कि कोई परम पुरुष सर्वज्ञ होता है और वह सर्वज्ञ अरहंत ही भले प्रकार सुनिश्चित है क्योंकि अरहंतमें ही ऐसा स्वरूप पाया जाता है कि वह रागद्वेष रहित है, कर्मभूभृतका भेदनहार है, ज्ञानके बाधक घातिया कर्मका अभाव है इसलिए वही सर्वज्ञ है। इस स्वरूपसे यदि कोई अपने अभिमत देवको सर्वज्ञ कहे तो कोई बाधा नहीं, पर स्वरूप कोई निराला माने कि कोई कर्मसे सदा अछूता है वह सर्वज्ञ है या कोई आत्मा ज्ञानरहित है वह सर्वज्ञ है आदिक सो वे बातें निराकृत हैं। इससे सिद्ध है कि अरहंत ही सर्वज्ञ है और वह अरहन्त कर्मरूपी पहाड़का भेदनहार है यदि वह कर्मरूपी पहाड़का भेदनहार न होता तो वह सर्वज्ञ भी न बन सकता था। चूंकि समस्त ज्ञान विकास है, अरहंतके तीन लोक तीन कालकी समस्त वस्तुओंका बोध है। उससे यह निश्चित है कि कर्मकलंक वहाँ जरा भी नहीं है। कर्मकलंक यदि होता तो वह सर्वज्ञता प्रकट न हो सकती थी।

अनादिप्रवाह होनेपर भी कर्मकलङ्कके प्रक्षयकी संभवता—यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये कर्म कार्यकारण प्रवाहसे अनादितः चला आया है, ऐसा तो न था कि पहिले इस जीवके कर्म न लगे हों और किसी समय कर्म लग गए हों। तो जो अनादिकालसे चले आये हों उनका विनाश करने वाला कोई कारण नहीं बन सकता। तो जब अनादिसे चले आये हुए कर्मका विनाश सम्भव ही नहीं है तो कर्म पर्वतका कोई सर्वज्ञ भेदक है यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है? कोई सर्वज्ञ हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी तो ऐसा यह तो सिद्ध न किया जा सकेगा कि वह कर्म पर्वतोंका नाश करनहार है क्योंकि कर्म अनादिसिद्ध हैं और अनादिसिद्धका विनाश करने वाला कारण कुछ बन नहीं सकता। तो कर्म पर्वतका नाश करने वाला तो न बन सकेगा कोई ? इस शंका के उत्तरमें कहते हैं कि यह ख्याल करना गलत है कि जो अनादि हो उसका नाश नहीं होता। अरहंत भगवानके कर्मके विपक्षका जब प्रकर्ष पाया जा रहा है तो कर्मोंका नाश सिद्ध होता ही है। भले ही वे कर्म प्रवाहरूपसे अनादिसे चले आये हों, फिर भी कर्मके विपक्षी जो सम्यकदर्शन, ज्ञानचारित्र हैं उनका जब प्रकर्ष पाया जाता है, वे उत्कृष्ट अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं तब कर्मोंका सर्वथा नाश हो गया है, यह सिद्ध होता ही है। यह शंका न रखें कि कर्म अनादि प्रवाहसे चले आये हैं तो उनका नाश नहीं होता। देखिये ! संतानकी अपेक्षासे अनादिसे ठंड स्पर्श भी चला आया है लेकिन ठंड स्पर्शका विपक्षी उष्ण स्पर्श जब प्रकर्षको प्राप्त होता है तो ठंड समूल नष्ट हो जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अनादि होकर भी बात सर्वथा नष्ट हो सकती है। यहाँ एक और स्पष्ट दृष्टान्त लीजिये ! बीज और अंकुर ये कार्यकारणरूपसे अनादिसे चले आये हैं। जो आज बीज है वह पेड़से ही हुआ और वह पेड़ पहिले बीजसे हुआ वह बीज पहिले पेड़से हुआ। इस तरहसे बीज और वृक्ष ये अनादि संतानसे चले आये हैं। उनमें कोई क्या यह बता सकता है कि बीज सबसे पहिले था या वृक्ष सबसे पहिले था ? तो अनादि संतानसे चला आ रहा है बीज और अंकुरका प्रवाह, फिर भी बीजको अगर अग्निसे जला दिया जाय तो क्या उसका सर्वथा नाश नहीं हो गया ? तो जैसे कार्य कारणरूपसे प्रवृत्त बीज अंकुरकी अनादि संतानको प्रतिपक्षी अग्निसे सर्वथा नष्ट कर दिया गया याने दोनों अनादि हैं फिर भी जलकर खाक हो गए तो इसी तरह समझना चाहिए कि कर्मका प्रवाह अनादिसे चला आया है फिर भी कर्मोंका प्रतिपक्षी है सम्वर निर्जरा शुद्ध परिणाम, तो उन शुद्ध परिणामों के कारण किसी आत्मविशेषमें जब वह प्रतिपक्षी आत्मीय भाव पूर्णताको प्राप्त होता है तो कर्म संतान भी नष्ट हो जाता है। तो समझ लेना चाहिए कि जिस तरह उष्ण स्पर्शकी उत्कृष्टता होनेसे शीतस्पर्श नष्ट हो जाता है उसी प्रकार सम्वर निर्जराका प्रकर्ष होनेसे, सम्यक्त्व आदिक गुणोंकी उत्कृष्टता होनेसे कर्मपर्वत भी सदाकालको नष्ट हो जाता है इस तरह यहाँ कोई आपत्तिकी बात नहीं आती। कर्म संतान अनादि प्रवाहसे चले आये हैं फिर भी कर्मपर्वतोंका नाश हो सकता है। यह बात स्याद्वादियों के यहाँ सम्भव है। इसकी चिन्ता तो उनको ही होना चाहिए जो पुरुष अनादि कर्मों का नाश असम्भव मानते हैं। शङ्काकार असर्वज्ञवादी पुरुष कर्मोंको अनादि मानते और उनका नाश होना वे नहीं मानते तो उन्हें यह आपत्ति आयी, पर स्याद्वादियोंके यहाँ यह आपत्ति नहीं आ सकती कि कर्मप्रवाह अनादि संतानसे चले आये हैं तो उनका नाश कैसे होगा ? बीजांकुर दृष्टान्तकी तरह समझ लेना चाहिए कि कर्मपर्वत अनादि होकर भी उसका किसी आत्मविशेषमें सर्वथा नाश हो जाता है। अब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शङ्काकार कहता है कि जो यह बताया गया है कि विपक्षके प्रकर्षसे कर्मपर्वतोंका नाश हो जाता है तो वे विपक्षी कौन कौनसे हैं कर्म पर्वतोंके? तो अब कर्म पर्वतोंके विपक्षी बतानेके लिए कारिका कही जा रही है।

तेषामागामिनां तावद्विपक्षः संवरो मतः।
तपसा सञ्चितानां तु निर्जरा कर्मभूभृताम् ॥ ११२ ॥

आगामी कर्मोंका प्रतिपक्षी संवर—आगामी कर्मोंका विपक्ष तो है सम्बर और संचित कर्मपर्वतोंका विपक्ष है तपसे होने वाली निर्जरा इस तरह कर्मभूभृतोंके विपक्ष ये सम्बर और निर्जरा तत्त्व हैं। कर्म पर्वत दो प्रकारके होते हैं—एक तो आगामी कर्म, दूसरे संचित कर्म, याने जो कर्म आगे आ सकते हों ऐसे कर्म कहलाते हैं आगामी कर्म और जो पूर्वपर्याय परम्परासे सञ्चित हुए हैं, वर्तमानमें जिनका सत्त्व है वे कहलाते हैं संचित कर्म। तो उन दो प्रकारके कर्मोंमेंसे आगामी कर्मपर्वतोंका विपक्ष तो हैं सम्बर, क्योंकि सम्बरके होनेपर वे आगामी कर्मपर्वत उत्पन्न नहीं होते हैं। सम्बर नाम है कर्मोंके आश्रवके निरोध हो जानेका। कर्मोंके आनेके जो द्वार हैं उन्हें आश्रव कहते हैं। तो आश्रव ५ प्रकारके हैं--मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। इनके होनेपर कर्म आते हैं इसलिए इन्हें आश्रव कहते हैं। आश्रव शब्द का ही अर्थ यह है कि—

"कर्माण्यास्रवन्ति आच्छन्ति यस्मादात्मनि स आस्रवः"

अर्थात् जिस कारणसे आत्मामें कर्म आते हैं उसे आस्रव कहते हैं। तो उन द्वारोंका नाम आस्रव हुआ जिन द्वारोंसे कर्म आते हैं। वे भी आत्माकी ही परिणतियाँ हैं। जिन उपायोंसे कर्म आते हैं इन्हीं पाँचोंको बंधके हेतु भी कहा गया है। इन पाँचोंमें मिथ्याज्ञान यह शब्द तो नहीं बताया गया लेकिन मिथ्याज्ञानका मिथ्या दर्शन में अन्तर्भाव हो जाता है इस लिए मिथ्याज्ञानका नाम आश्रवमें नहीं कहा गया। तो यों आश्रव ५ प्रकारके हैं और इन आश्रवों के निरोध हो जानेका नाम सम्बर है। जहाँ सम्बरकी प्रकर्षता हो जाती है वहाँ कर्मपर्वतोंका समूल नाश हो जाता है। आश्रवका निरोध जिसे कि सम्बर कहा है यह आश्रव निरोध कहीं तो पूर्णरूपसे होता है और कहीं एक देशसे होता है। सम्पूर्ण रूपसे आश्रव निरोध गुप्तियों द्वारा होता है। गुप्ति कहते हैं मन वचन कायके योगको भले प्रकार रोक देना अर्थात् मन, वचन, कायकी क्रियावोंका अभाव होना, इससे तो आश्रवका सम्पूर्णतया निरोध होता है और आश्रवका एक देशसे निरोध होनेके उपाय हैं समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र। तो जो परम प्रकर्षरूपसे स्वभाव निरोध है वह अन्तिम समयवर्ती अयोगकेवलीके बताया गया है याने योगका सर्वथा अभाव जहाँ हो वहाँ ही सम्बरका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परम प्रकर्ष है और वहाँ ही समस्त कर्मपर्वतोंका निरोध है याने किसी भी प्रकारका आश्रव वहाँ नहीं पाया जाता, यही कारण है कि अन्तिम समयवर्ती सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्रको साक्षात् मोक्षका कारण कहा गया है। उमास्वामीने सूत्रजीमें कहा है—

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।"

इस सूत्रमें विशेषण तो बहुवचनमें बताया है और विशेष्य एक वचनमें कहा है। यह वचन भेद इस तत्त्वका समर्थक है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्र की पूर्ण एकता मोक्षका मार्ग है। पूर्वके गुणस्थानमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी पूर्ण एकता नहीं इसलिए उन्हें परम सम्बर नहीं कहा जाता।

एकदेश सम्बरकी स्थितियोंका संक्षिप्त विवरण—देखिये! परम सम्बर न होनेका कारण क्या? किसी न किसी प्रकारका आश्रव पाया जाना। आश्रव बताये गए हैं ५—१ मिथ्यादर्शन, २ अविरति, ३ प्रमाद, ४ कषाय और ५ योग। इनमेंसे अयोग केवलीके तो एक भी द्वार नहीं है, किन्तु उससे पहिले संयोग केवली, क्षीण कषाय और उपशान्त मोह याने ११ वें, १२ वें, १३ वें गुण स्थानमें योगका सद्भाव है इससे परम सम्बर नहीं और इससे पहिले सूक्ष्म साम्पराय, अनिवृत्ति बादर साम्पराय, अपूर्वकरण और अप्रमत्त याने ७ वें, ८ वें ९ वें, १० वें, गुण स्थानमें कषाय सहित योग विद्यमान याने यहाँ योग भी है और कषाय भी है। तो यहाँ सम्बरकी परम प्रकर्षता नहीं है। आश्रवके दो द्वार पाये जा रहे हैं और इससे पहिले के प्रमत्त गुणस्थानमें याने छठे गुणस्थानमें प्रमाद और कषायसे विशिष्ट योग है याने तीन आश्रव द्वार हैं—प्रमाद, कषाय और योग। इससे पहिले संयतासंयत और असंयत सम्यग्दृष्टि याने चौथे व पांचवें गुणस्थानमें प्रमाद कषाय और अविरति इन तीन द्वारोंसे विशिष्ट योग द्वार पाया जाता है अर्थात् यहाँ चार आश्रवद्वार हैं—प्रमाद कषाय अविरति और योग। इससे पहिले मिश्र सासादन और मिथ्यात्व याने १, २, ३, गुणस्थानोंमें कषाय, प्रमाद अविरति और मिथ्यादर्शन इनसे सहित योगका सद्भाव है याने इस गुणस्थानमें पांचों ही आश्रव पाये जाते हैं। मिथ्यात्वमें तो स्पष्ट ही मिथ्यात्वप्रकृति है। सासादन और मिश्रमें भी चूंकि सम्यक्त्वका अभाव है इसलिए मिथ्यादर्शनका किसी न किसी रूपमें सद्भाव है। इस तरह पहिले गुणस्थानसे लेकर १३ वें गुणस्थान तक किसी न किसी प्रकारसे आश्रवद्वार है। तो वहाँ सम्बरका परम प्रकर्ष नहीं है, सम्बरका परम प्रकर्ष १४ वें गुणस्थानमें कहा गया है तो जहाँ यह कहा गया हो कि योगका नाम आश्रव है और मन, वचन, कायकी क्रियाको योग कहते हैं तो योगको आश्रव कह देनेसे कहीं कोई यह शङ्का न रखें कि फिर मिथ्या-दर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय इन्हें आश्रव न कहना चाहिए। यह शङ्का यों न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रखना चाहिए कि योग तो मिथ्यादर्शन आदिक समस्त आश्रवोंमें व्यापक है। मिथ्या-दर्शनके बिना योग तो हो सकता—अविरति कषाय, प्रमादके बिना योग तो हो सकता। लेकिन योगके बिना मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषाय नहीं हो सकते। तो जब योगको आश्रव कहा है तो उससे यह ग्रहण हो जाता है कि मिथ्या-दर्शन आदिक सभी ये आश्रव कहलाते हैं। एक यह भी बात समझ लीजिए कि योग का निरोध होनेपर तो सभी आश्रवोंका निरोध हो जाता है, क्योंकि अयोग केवलीमें योग नहीं है तो देखो सभीके सभी नहीं हैं, अयोग केवलीसे पहिले क्षीण कषायमें कषाय नहीं रही तो कषायसे पहिलेके आश्रव यहाँ नहीं है। मगर योग तो सम्भव है, क्षीणकषाय एक ऐसा शब्द है कि जिसकी कषायें क्षीण हो गयी उन सबको ग्रहण कर लिया जाय। तो यहाँ इस बातका दिग्दर्शन करना चाहिए कि योगको प्रधानतया आश्रव कह दिया। उसका कारण यह है कि जहाँ योग नहीं रहता वहाँ कोई भी आश्रव नहीं रहता इसलिए योगकी प्रधानतासे आश्रवका वर्णन चलता है।

उत्तरोत्तर आस्रवोंका निरोध होनेपर पूर्व पूर्व आस्रवोंके निरोधकी अवश्यंभाविता—इन आश्रवोंमें निरोधकी ऐसी प्रक्रिया देखी जा रही है कि जिस आश्रवका निरोध हुआ उससे पहिलेके आश्रवका निरोध तो अवश्य ही होता है। अयोग केवलीमें योगका अभाव है, तो सभी आश्रवोंका अभाव है क्षीण कषायमें कषायका निग्रह है तो मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद इनका भी निग्रह है। प्रमत्तसे क्षीणकषाय उपशान्त कषायसे पहिले पहिले तक प्रमादका निग्रह है। प्रमाद नहीं पाया जाता है तो वहाँ मिथ्यादर्शन और अविरतिका अभाव है। छट्ठवें और पाँचवें गुण-स्थानमें तो सम्पूर्णतया अविरतिका अभाव है और ५ वें गुणस्थानमें एक देशपनेसे अविरतिका अभाव है तो वहाँ मिथ्यादर्शन नहीं है। सासादन आदिकमें मिथ्यादर्शन का अभाव है तो उसके पूर्ववर्ती आश्रवका अभाव है। तो पहिले पहिलेके आश्रवके अभाव होनेपर आगे आगेके आश्रवका अभाव हो या न हो लेकिन उत्तर आश्रवका निरोध होनेपर पूर्व आश्रवका निरोध अवश्य है। तो जैसे आश्रवके ५ द्वारोंमें यह क्रम बताया है ऐसा ही क्रम योगके सम्बन्धमें भी समझना। योग होते हैं तीन—१ मनोयोग २ वचनयोग, ३ काययोग, उनमेंसे जिनका काययोगका निरोध हो चुका, सर्वथा अभाव हो गया उसके मनोयोग वचनयोगका अभाव निश्चित है और जिस जीवके वचन योगका अभाव हो गया उसके मनोयोगका अभाव तो निश्चित है। काय योग का अभाव भजनीय है। तो इस तरह समस्त योगका जहाँ पूर्णतया निरोध हो जाता है, परम गुप्ति हो जाती है वहाँ समस्त आश्रवोंका निरोध है याने परम सम्वर है। सम्वर यहाँ दो प्रकारके कहे जा रहे हैं—१ परम सम्बर और २ अपर सम्बर। परम सम्बर तो १४ वें गुणस्थानमें पाया जाता है और अपर सम्बर जो कि समिति अनु-प्रेक्षाओं द्वारा होता है वह यथायोग्य नीचेके गुणस्थानोंमें पाया जाता है। एक देशसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आश्रवके निरोध होनेको अपर सम्बर कहते हैं और सम्पूर्णतया आश्रवके निरोध हो जानेको परम सम्बर कहते हैं। तो इन सब विवेचनों से यह ज्ञात कर लेना चाहिए कि जहाँ आश्रवका पूर्णतया निरोध हो जाता है, परम सम्बर होता है वहाँ समग्र कर्मों का अभाव सिद्ध हो जाता है।

कर्मोंका सहेतुकना व हेतुके अभावमें कर्मोंका सवर एवं प्रक्षय—कर्मों के कारणभूत हैं आश्रव। उनका जब विनाश हो जाता है तो आगामी कर्मोंकी उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। यदि ऐसा न हो अर्थात् आगामी कर्मोंकी उत्पत्तिका अभाव न बने तो कर्म अहेतुक सिद्ध हो जायेंगे। लो आश्रव तो नष्ट हो गए और कर्मोंका आना बना रहा तो इसका स्पष्ट ही यह अर्थ हुआ कि कर्म अहेतुक हैं। उनका कोई कारण नहीं, स्वयं आते हैं। तब तो सभी जीवोंके समस्त कर्मोंका आगमन बनता ही रहे ऐसा प्रसङ्ग आ जायगा। यदि कर्म अपने कारणभूत आश्रवके न होनेपर भी आते रहें तो वे अहेतुक बन जायेंगे और जब कर्म अहेतुक हैं तो सभी प्राणियोंके सभी कर्म आने चाहिएं। और जब सभी प्राणियोंके सभी तरहके कर्म रहें तब फिर अमीर गरीब रोगी निरोग चतुर मूर्ख आदिक विषमतायें न पायी जानी चाहिये, क्योंकि कर्म तो अहेतुक हैं और सभी जीवोंके सभी कर्म आ बैठे हैं तो ऐसी हालतमें यह भेद कैसे सिद्ध होगा कि कोई अमीर होता है और कोई गरीब होता है। जब कर्म सहेतुक माने जाते हैं तो वहाँ यह व्यवस्था बनती है कि जिस प्राणीके जिस प्रकारके आश्रव भाव द्वारा जैसे कर्म आये हैं उस प्रकार के कर्मोंका उदय होनेपर वैसी स्थिति बनती है। तो कर्म सहेतुक माने जानेपर तो व्यवस्था बनती है। कर्म अहेतुक होनेपर व्यवस्था नहीं बनती है। इससे जानना चाहिए कि कर्म आश्रव हेतुक हैं अतएव जहाँ आश्रवका निरोध हो जाता है वहाँ समस्त कर्मोंका निरोध हो जाता है और जहाँ आगामी समस्त कर्मोंका निरोध हो गया, परम सम्बर हो गया वहाँ सभी प्रकारके कर्मोंका अभाव हो जाता है। इस तरह कोई परम पुरुष समस्त कर्म पहाड़ोंका भेदनहार है, यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है।

संचित कर्मका प्रतिपक्षभूत निर्जरातत्त्व—संचित कर्मोंका प्रतिपक्षी निर्जरा तत्त्व है याने निर्जरा तत्त्वमें होनेसे संचित कर्मोंका क्षय हो जाता है वह निर्जरा दो प्रकारकी है, १ अनुपक्रमा २ औपक्रमिकी। अनुपक्रमा निर्जरा तो अपना समय पाकर सभी संसारी जीवोंमें होती है। इस ही को उदय कहा करते हैं। कर्मका बन्ध होनेपर उसकी स्थिति बँधी थी तो जब स्थिति पूर्ण होती है तो उसकी निर्जरा होगी, इस ही निर्जराका नाम उदय है। तो अनुपक्रमा निर्जरासे मोक्षमार्गमें कोई सहायता नहीं होती। औपक्रमिकी निर्जरा तपश्चरण समाधि आदिकसे सिद्ध होती है। जैसे कि सम्बर तपश्चरण आदिक उपायोंसे बनता था इसी तरह औपक्रमिकी निर्जरा भी तपश्चरण संयम आदिक उपायोंसे बनती है। तो इस तरह संचित कर्मोंका विपक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्जराको कहा गया है। जहाँ निर्जराका परम प्रकर्ष है वहाँ कर्म पर्वतोंका विनाश है। शङ्काकार कहता है कि कर्मोंके विपक्षी जो सम्वर और निर्जरा हैं उनका परम प्रकर्ष होता है। यह ही बात कैसे सिद्ध की जा सकती है ? जिस कारणसे कि उनका आत्यंतिक अभाव न बताया जाय। समाधानमें कहते हैं कि—

तत्प्रकर्षः पुनः सिद्धः परमः परमात्मनि ।
तारतम्यविशेषस्य सिद्धेरुष्णप्रकर्षवत् ॥ ११२ ॥

परमात्मामें संवर निर्जराके परमप्रकर्षकी सिद्धि—कर्मोंके विपक्षका परम प्रकर्ष परमात्मामें सिद्ध होता है क्योंकि उसकी तर्तमता न्यूनाधिकता विशेष पाई जाती है। जैसे उष्ण स्पर्श प्रकर्ष तब समझा जा रहा है जब कि उष्ण स्पर्शकी तर्तमता पायी जा रही है। याने कहीं उष्णस्पर्श कम हैं कहीं ज्यादह वहाँ पर उष्ण स्पर्शकी प्रकर्षता सिद्ध होती है। जहाँ तार्तम्य पाया जाता है, कम और अधिकका प्रकर्ष होता है याने न्यून हुआ अब और न्यून हुआ तो कहीं न्यूनताकी उत्कृष्टता भी देखी जाती है जहाँ आधिक्यका प्रकर्ष होता है कि यह अधिक है और अधिक है वहाँ अधिकताका परम प्रकर्ष होता है तो सम्वर और निर्जरा जो कि कर्मके प्रतिपक्षी हैं अथवा सम्वर और निर्जराका तार्तम्य देखा जा रहा है तो उसकी उत्कृष्टता गुणस्थान विशेषोंमें प्रमाणसे निश्चित हो जाती है इस कारण परमात्मामें सम्वर और निर्जरा का परम प्रकर्ष सिद्ध है, ऐसा निश्चयसे जाना जाता है।

दुःखाधिक, व कषायाधिक्यके प्रकर्षकी सिद्धि होनेसे हेतुकी अव्यभिचारिता—यहाँ शङ्काकार कहता है कि दुःख आदिकके प्रकर्षके साथ यह हेतु व्यभिचरित हो जायगा, याने यहाँ अनुमान यह बनाया है कि जिसकी न्यूनाधिकताका प्रकर्ष देखा जाय वही कहीं इसका परम प्रकर्ष भी सम्भव है। तो देखिये आत्माका प्रकर्ष तो देखा जा रहा है। कोई जीव कम दुःखी है कोई अधिक, लेकिन कहीं दुःखका परम प्रकर्ष होता हो यह बात नहीं जानी जाती। इससे तार्तम्यता प्रकर्ष परम प्रकर्षको सिद्ध कर सके सो बात नहीं रही। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का उचित नहीं है, क्योंकि दुःखका परम प्रकर्ष भी तो सिद्ध है। ७ वीं नरक पृथ्वीमें जो नारकी जीव रह रहे हैं उनमें दुःखका परम प्रकर्ष सिद्ध है जैसे कि सर्वार्थ सिद्धिमें जो देव हैं उन्हें सांसारिक सुखका परम प्रकर्ष सिद्ध है उसी प्रकार ७ वें नरकके नारकियोंमें दुःख की उत्कृष्टता सिद्ध है। ७ वें नरकके दुःखोंका वर्णन ग्रन्थोंमें बताया ही गया है। वहाँ शीत वेदनाका परम प्रकर्ष है और ऊष्ण लेश्याका परम प्रकर्ष है, ऐसी अनेक बातें वहाँ हैं जिससे दुःखका परम प्रकर्ष सिद्ध है। तो तार्तम्यका प्रकर्ष परम प्रकर्षको सिद्ध करता है, इसमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं है। कोई ऐसा भी सन्देह न करे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि क्रोध, मान, माया, लोभका तारतम्य देखा जाता है। किसीमें ये कषायें कम हैं, किसीमें अधिक, तो उनके साथ इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा सो शङ्का न करें। क्रोध, मान, माया, लोभका भी कहीं परम प्रकर्ष पाया जाता है। देखो जो अभव्य और मिथ्यादृष्टि जन हैं उनमें क्रोध, मान, माया, लोभका परम प्रकर्ष सिद्ध है याने अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ वहाँ उत्कृष्टतासे पाया जाता है और वह उन अभव्यों और मिथ्या दृष्टियोंमें मौजूद है, क्योंकि उनमें अनन्तानुबन्धी क्रोधादिक कषायें पायी जाती है,

क्षायोपशमिकज्ञानकी हानिकी परम पुरुषमें प्रकर्षता प्राप्त होनेसे हेतु की ज्ञानहानिके साथ अव्यभिचारिता—यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये! ज्ञान हानिके प्रकर्षके साथ हेतुकी अनेकांतिकता दूर कैसे की जा सकती है? संसारी जीवोंमें यह देखा जाता है कि किसीमें ज्ञान कम है किसीमें और भी कम है इस तरह जब ज्ञानकी हानि देखी जा रही है तो कोई जीव ऐसा सो नहीं है जिसके ज्ञानकी हानि पूरे रूपसे देखी जाय। तो ज्ञान हानिके प्रकर्षके साथ हेतु अनेकांतिक दोषसे दूषित हो जाता है। समाधानमें कहते हैं कि देखिये! जिस ज्ञानकी हानि देखी जा रही है वह ज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है। कहीं ज्ञान स्वभावकी बात नहीं है। तो क्षायोपशमिकरूप ज्ञान जब घटनेका प्रकर्ष रखता है याने किसीमें कम है और भी कम है इस तरह जब घटनेरूप प्रकर्षको रख रहा है तो केवली भगवानमें देखो! क्षायोपशमिक ज्ञानका अप्रकर्ष याने हानि पूर्ण रूपसे है याने वहाँ क्षायोपशमिक ज्ञान का सर्वथा अभाव हो गया है इसलिए क्षायोपशमिक ज्ञानकी हानिका भी परम प्रकर्ष होता है यह बात भली भाँति सिद्ध है, इस कारण हेतुमें अनेकांतिक दोष नहीं आता। क्षायिक ज्ञानकी तो हानि हो ही नहीं सकती। जब क्षायिक ज्ञानमें सामान्य प्रकर्ष नहीं पाया जाता तो उसमें तो सोचना ही नहीं है कि उसकी हानिका कहीं परम प्रकर्ष हो। क्षायिक ज्ञान एक बार हो जाय याने केवलज्ञानके हो जानेपर वह सदा बना रहता है। उसकी हानि है ही नहीं। तब यह अनुमान सिद्ध हो गया कि कहीं सम्वर और निर्जराका परम प्रकर्ष है क्योंकि उसके तारतम्यका प्रकर्ष देखा जाता है। अनुमानमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं आती। अब शङ्काकार कहता है कि अच्छा यह बतलाओ कि कर्मपर्वत कहलाता क्या है? जो कि भेदे जा रहे हैं, जिसके विपक्षी परम प्रकर्ष वाले सिद्ध करते है। इसके उत्तरमें कारिकायें कह रहे हैं।

कर्माणि द्विविधान्यत्र द्रव्यभावविकल्पतः।

द्रव्यकर्माणि जीवस्य पुद्गलात्मान्यनेकधा॥ ११३॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावकर्माणि चैतन्यविवर्त्तात्मानि भान्ति नुः ।
क्रोधादीनि स्ववेद्यानि कथञ्चिचिदभेदतः ॥ ११४ ॥

तत्स्कंधराशयः प्रोक्ता भूभृतोऽत्र समाधितः ।
जीवाद्विश्लेषणं भेदः सतो नात्यन्तसंत्तयः ॥ ११५ ॥

द्रव्यकर्म और भावकर्म तथा उनका प्रथककरणरूप भेदन—यहाँ कर्म दो प्रकारके कहे गए हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म । तो उन-से जो द्रव्यकर्म है वह तो पौद्गलिक है और अनेक भेद वाले हैं । तथा जो भावकर्म है वह आत्माके चैतन्य परिणाम स्वरूप है, क्योंकि वे क्रोधादिक भाव आत्मासे कथञ्चित् अभिन्न रूपसे अपने आप ही जान रहे हैं, ऐसे ये दो प्रकारके कर्म कहे गए हैं । इन दोनों कर्मोंकी जो स्कंध राशि हैं उनका ही नाम कर्मपर्वत कहा है । उन कर्मपर्वतोंकी जीवसे अलग कर देनेका नाम कर्मपर्वतका भेदन है । भेदनका अर्थ यहाँ पूर्ण विनाश न समझना, क्यों कि जो वह कर्म है पौद्गलिक वह पुद्गल द्रव्य है, सद्भूत हैं उनका बिल्कुल नाश नहीं हो सकता । कर्मके भेदनका अर्थ यह है कि कर्म अब आत्मामें नहीं रहे, आत्मासे बिल्कुल पृथक हो गए । कर्मका अर्थ है जो जीवको परतंत्र करे, अथवा जिसके कारण से यह जीव परतंत्र किया जाय उनको कर्म कहते हैं । वे कर्म दो प्रकारके कहे गए हैं—१ द्रव्यकर्म २ भावकर्म उनमेंसे द्रव्यकर्म तो ज्ञानावरण आदिक ८ कर्म हैं । ये तो मूल प्रकृतियाँ कहलाती हैं । तथा उत्तर प्रकृतियाँ हैं १४८ । ये सभी कर्म जीवकी परतंत्रताके निमित्त कारण हैं इसलिए इन्हें कर्म कहा जाता है । शङ्काकार कहता है कि यह व्याप्ति बनाना कि जो जीवकी परतंत्रतामें कारण है वह कर्म कहलाता है । इस व्याप्तिमें तो दोष दिख रहा है । देखो क्रोध जीवकी परतंत्रताका कारण बन रहा मगर क्रोध तो कर्म नहीं कहलाता । याने क्रोधादिक कषायें पौद्गलिक कर्म नहीं हैं । ये तो जीवके विभाव हैं लेकिन जो यह व्याप्ति बनाया है कि कर्म जीवकी परतंत्रताके कारण होते हैं या जीवकी परतन्त्रतामें जो कारण हों उन्हें कर्म कहते हैं । तो क्रोधादिक कषायोंसे जीव कितना परतन्त्र है ? सो प्रायः सभी लोग जान रहे हैं लेकिन वे पौद्गलिक कर्म तो नहीं कहलाते । इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि देखिये ! क्रोधादिक जीवकी परतन्त्रताके कारणभूत नहीं बताये गए किन्तु क्रोधादिक स्वयं परतन्त्रतारूप भाव हैं याने क्रोधादिक होना यही तो परतन्त्रता कहलाती है । जीवका क्रोधादिक परिणाम स्वयं परतन्त्रता है वह परतन्त्रताका कारण नहीं है इस कारण यह हेतु क्रोधादिकके साथ व्यभिचारी नहीं बनता । सो यह भली भाँति सिद्ध होता है कि जो जीवको परतन्त्र करते हैं उन्हें कर्म कहते हैं ।

Version 1

ज्ञानावरणादिक आठ कर्म व उनमें घातिया व अघातिया कर्मकी व्यवस्था

http://sahjanandvarnishastra.org/

शङ्काकार कहता है कि कर्म ८ प्रकारके बताये गए हैं—१ ज्ञानावरण २ दर्शनावरण ३ मोहनीय ४ अंतराय ५ वेदनीय ६ आयु ७ नाम और ८ गोत्र। इनमें पहिले चार कर्म तो घातिया कर्म कहलाते हैं और शेष चार कर्म अघातिया कर्म कहलाते हैं। तो इनमेंसे जीवकी परतन्त्रताके कारणभूत चार घातिया कर्म ही हो सकते हैं। कारण कि ज्ञानावरण अनन्त ज्ञानस्वरूपको घातता है। दर्शनावरण अनन्त दर्शनका घात करता है। मोहनीय कर्म अनन्त सुखका घातक है और अन्तराय कर्म वीर्यका घातक है। तो जीवके जो ये चार स्वरूप हैं—ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य, इनका घातक होनेसे चार घातिया कर्मोंको ही परतन्त्रताका कारण कहा जाना चाहिए। नाम, गोत्र वेदनीय और आयु इन कर्मोंको परतन्त्रताका कारण न कहा जाना चाहिए, क्योंकि वे जीवके स्वरूपके घातक नहीं हैं। अतः उनकी परतन्त्रताकी कारणता असिद्ध है। और इस कारण हेतु पक्षाव्यापक है याने समस्त पक्षोंमें नहीं पाया गया। जैसे कि वन॰स्पतिमें चेतन सिद्ध करनेके लिए कोई यह कहे कि वनस्पतिमें चेतन है, क्योंकि वह सोता है। तो सोता कहाँ है? यह हेतु पक्षमें कहाँ गया? इसी तरह यह कहना कि ये ज्ञानावरण आदिक ८ कर्म हैं क्योंकि परतन्त्रताके कारण हैं। तो चार अघातिया कर्म परतन्त्रताके कारण तो नहीं हैं। फिर यह हेतु सही कैसे रहेगा? इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि देखिये! नाम गोत्र आदिक जो अघातिया कर्म हैं वे भी जीवके स्वरूपके प्रतिबन्धक हैं। आखिर जीवका स्वरूप तो उत्कृष्ट सिद्धपना ही है लेकिन अघातिया कर्म जब तक रहते हैं तब तक सिद्ध अवस्था नहीं प्रकट होती। इसलिए सिद्ध अवस्थाके घातक होनेसे अघातिया कर्म भी परतन्त्रताके कारण सिद्ध हो जाते हैं। शङ्काकार कहता है कि यदि अघातिया कर्म भी जीवके सिद्धपनेके प्रतिबन्धक हैं और वे परतन्त्रताके कारणभूत बन गए तब फिर इन कर्मोंको अघातिया ही क्यों कहा जा रहा है? किन्तु जीवके शुद्ध चैतन्य स्वरूपको इन कर्मोंने घात लिया तो ये भी घातिया ही कहे जाना चाहिए? इसके समाधानमें कहते हैं कि वेदनीय, नाम, गोत्र और अन्तराय इन चार कर्मोंको घातिया यों कहा जाता है कि ये चार कर्म जीवनमुक्तिके घातक नहीं हैं याने अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य जो कि आर्हंत्य लक्ष्मी कहलाती है इस परम विभूतिके घातक नहीं है इस कारण इन कर्मोंको अघातिया कर्म कहा जाता है और इस दृष्टिसे यह हेतु पक्षाव्यापक भी नहीं है और साथ ही अविनाभावरूप व्याप्तिमें भी सन्देह नहीं है। देखिये! "पुद्गल परिणामरूप" साध्यके बिना 'परतन्त्रताके कारणरूप होना" यह साधन नहीं बन रहा। यहाँ प्रकृतमें जो अनुमान किया गया है उसकी मुद्रा यह है कि कर्म परतंत्रतामें कारण है, क्योंकि वह पुद्गल परिणामरूप है। जीवकी परतन्त्रतामें जो भी कारण होगा वह जीवके स्वभावसे विपरीत ही होगा। स्वभावकी सदृशता वाला पदार्थ जीवकी परतन्त्रताका कारण नहीं बन सकता। तो पुद्गल परिणामरूप साध्य न हो तो जीवकी परतन्त्रता नहीं बन सकती। तो यह साध्य साधनका अविनाभावी नियम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी भली भांति निर्णीत है तथा जिसका जो नाम है उस नामसे उनके कार्यकी प्रतीति भी हो रही है। जैसे ज्ञानावरण कर्म है तो उसका कार्य है ज्ञानका आवरण करना, दर्शनावरण कर्मका कार्य है दर्शनको न होने देना। तो इस तरह नामके द्वारा भी यह विदित होता है कि यह उनका कार्य है। अर्थात् पुद्गल कर्मके उदयका निमित्त पाकर जीवमें ऐसी–ऐसी दशायें बनती हैं। तो जब ये कार्य देखे जा रहे हैं तो उनसे यह सिद्ध है कि ये कारणके बिना नहीं हो सकते। तो चूंकि जीवमें अज्ञान देखा जारहा है तो इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। तो जो उनके कारण हैं वे ही कहलाते हैं ज्ञानावरादिक कर्म। इस तरह ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म सिद्ध होते हैं जिनका प्रक्षय बताया जा रहा है, जिनका प्रतिपक्ष है सम्बर और निर्जरा तत्त्व।

भावकम और द्रव्यकर्म विश्लेषण—अब भावकर्मकी बात सुनो! भावकर्म चैतन्य परिणामरूप है अर्थात् जीवकी परिणति विशेष है और वह यद्यपि औदयिक है, क्रोधादिक कषायोंके उदयसे होने वाले भाव हैं। जैसे द्रव्य क्रोधप्रकृतिका उदय हुआ तो जीवमें भावक्रोधपरिणाम होता है। इस तरह क्रोधादिक आत्मपरिणाम औदयिक हैं, फिर भी वे कथञ्चित् आत्मासे अभिन्न हैं। याने आत्माकी ही तो उस समय की परिणति विशेष है। इस कारण उन क्रोधादिक भावोंको चेतन रूप कहनेमें कोई विरोध नहीं आता। सो यद्यपि उन क्रोधादिक भावोंको आत्मपरिणाम चेतनपरिणाम कह दिया है फिर भी इससे यह न समझना कि उन क्रोधादिक भावोंमें ज्ञानरूपता है। वे क्रोधादिक भाव जड़ हैं, स्वयं कुछ ज्ञान नहीं रखते। क्रोधादिक भाव औदयिक हैं। उसमें स्वयं ज्ञानरूपता नहीं है। ज्ञान कभी औदयिक नहीं कहलाता। बल्कि ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मोंमें जब हानि देखी जाती है, जहाँ क्षय देखा जाता है तो वहाँ ज्ञानका अभ्युदय पाया जाता है। कहीं कर्मके उदयसे ज्ञान नहीं हुआ करता। तो यों क्रोधादिक आत्मपरिणाम आत्मासे अथञ्चित् अभिन्न हैं, उस काल आत्माकी वह परिणति विशेष है इस कारण उन्हें चैतन्य परिणामरूप कहा गया है। शङ्काकार कहता है कि कर्म तो धर्म अधर्म रूप हैं, जिनका दूसरा नाम पुण्य पाप है। तो ये धर्म अधर्म तो आत्माके गुण कहलाते हैं। इन्हें औदयिक न कहना चाहिए और न पुद्गलपरिणाम स्वरूप कहना चाहिए। धर्म अधर्म आत्माके गुण हैं. ऐसी प्राय: लोकमें तन्मयता देखी जा रही है। तो जब धर्म अधर्म आत्माके गुण हैं तो वे औदयिक कैसे और पुद्गल परिणामरूप कैसे कहे गए? तो धर्म अधर्मका तो नाम अदृष्ट कर्म कहा गया है। वे तो अदृष्ट आत्माके ही गुण हैं, उन्हें औदयिक और पुद्गल परिणामरूप स्वीकार करना उचित नहीं है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह कथन भी युक्तिपूर्ण नहीं है क्योंकि यदि कर्म आत्माके गुण न हों तो वे आत्माकी परतंत्रता के कारण नहीं हो सकते। जो जिस वस्तुका गुण होता है वह उस वस्तुकी परतन्त्रता में कारण नहीं बनता। तो जब आत्माकी परतन्त्रतामें धर्म अधर्म पुण्य पाप कारण न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनेगा तो आत्माके कभी भी बंध न होगा। जब आत्मा परतन्त्र ही नहीं है तो उसका बंध कैसे बन सकेगा ? और जब आत्माके कभी भी बंध सिद्ध न हो सकेगा। तो उसकी मुक्तिका प्रसङ्ग आ जायगा। इससे यह बात प्रकट है कि जो जिसका गुण है वह उसकी परतंत्रताका कारण नहीं होता। जैसे पृथ्वी आदिकके रूप आदिक गुण हैं तो वे पृथ्वीकी परतन्त्रताके कारण तो नहीं हैं। आत्माका गुण धर्म अधर्म नामका कुछ दार्शनिकोंने स्वीकार किया है, जिसे अदृष्टरूप कर्म कहते हैं। तो ऐसा सिद्धान्त मानने वाले नैयायिक और वैशेषिकोंके यहाँ वह धर्म अधर्म नामका अदृष्ट कर्म आत्मा की परतंत्रताका कारण तो न हो सकेगा। इस तरह यह स्वीकार करना चाहिए कि पुण्य पाप नामके पौद्गलिक कर्म है और उनके उदयकालमें आत्मामें पुण्य पापरूप परिणाम होते हैं। तो जो पुण्य पापरूप आत्माकी परिणति विशेष है वह तो है आत्मा का परिणमन फिर भी यह आत्माका गुण नहीं है, किन्तु विकार है. वह आत्मासे उस कालमें अभिन्न और जो पौदगलिक पुण्य पाप है वह तो वस्तुतः भिन्न है।

कर्मकी मान्यताका अप्रतिषेध और कर्मभूभृत्वका अप्रतिषेध--जो दार्शनिक ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि प्रधानका परिणाम शुक्ल और कृष्ण दो प्रकारका होता है और वही कर्म कहलाता है याने पुण्य पाप धर्म अधर्म यह प्रधानका परिणाम है, यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रधानका वह परिणाम है, तो रहे। वह आत्मा की परतन्त्रताका कारण तो नहीं हो सकता, इस कारण उसे कर्म न कह सकेंगे। यदि कर्म प्रधानका परिणाम माना जाता है तो वह आत्माको परतन्त्र कैसे कर सकता है ? और, जब वह प्रधान आत्माको पराधीन नहीं कर सकता तो उसे कर्म नहीं कहा जा सकता। कर्म वही कहलायगा जो आत्माको पराधीन बनाये। यदि आत्माको पराधीन न बनाये फिर भी उसे कर्म माना जाता है तो कोई भी पदार्थ कर्म बन जायगा। दुनियाँमें जितने पदार्थ पड़े हैं वे आत्माको परतन्त्र नहीं बना रहे फिर भी सबका नाम कर्म रख दिया जाय। यदि यह कहा जाय कि प्रधानकी परतन्त्रताका कारण तो है वह शुक्ल कृष्ण कर्म और इसीलिए प्रधान परिणाम कर्म है तो यह कथन यों ठीक नहीं कि जब प्रधानका परिणाम प्रधानकी परतन्त्रताका कारण है तो प्रधानका ही बन्ध हो और प्रधानका ही मोक्ष हो फिर आत्माकी कल्पना क्यों की जा रही है ? यदि ऐसा कोई सोचे कि बन्ध और मोक्षके फलका अनुभव पुरुषमें होता है इस कारण पुरुषकी याने आत्माकी कल्पना करना ठीक है। तो यह कहना यों ठीक नहीं कि प्रधानका जब बन्ध मोक्ष माना और पुरुषको बन्ध मोक्षके फलका भोक्ता माना तो इसमें दो दोष आते हैं—१ कृतनाश और २ अकृत स्वीकार। देखो प्रधानने तो बन्ध मोक्ष किया, उसको तो फल मिला नहीं। नाश हो गया। क्योंकि प्रधानने बन्ध मोक्ष किया और उसका फल न पाया तो यह कहलाया कृतनाश और पुरुषने बंध मोक्ष किया ही नहीं और उसका फल भोगना पड़ा। तो इसका अर्थ हुआ अकृत्व

Report any errors at vikashd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

स्वीकार। तो यह महान दोष कि जो न करे वह बिगड़ जाय, जो करे वह फल न पावे यह तो बड़ा दोष आया। यदि कहो कि पुरुष चेतन है इसलिए वह फल भोगता है, और प्रधान अचेतन है, वह फल नहीं भोग सकता। तो यह कहना यों सम्भव नहीं कि प्रधानके द्वारा किये गए कर्मका आत्मा फल भोगे, ऐसा नियम बना दिया जाय तो मुक्त आत्माको भी कर्मफल भोग लेना चाहिए, क्योंकि वह भी चेतन है। यदि कहो कि मुक्त आत्माके साथ प्रधानका संसर्ग नहीं है इसलिए प्रधानके किए गए कर्म का फल मुक्त आत्माको नहीं भोगना पड़ता। संसारी जीवके प्रधानका सम्बन्ध है इस लिए उसको ही बन्धका फल भोगना होता है तो ऐसा माननेपर सही बात आ गयी कि लो पुरुषमें बन्ध सिद्ध हो गया। बन्धका ही नाम संसर्ग है। चाहे यह कहो कि बन्ध है। तो इस तरह आत्माका बन्ध कारणके बिना सम्भव नहीं है। इसी कारण पुरुषका जो मिथ्यादर्शन आदिक परिणाम है उसे बन्धका कारण मानना चाहिए। इस तरह जीवके बन्ध भी सिद्ध हुआ, मोक्ष भी सिद्ध हुआ, सम्बर निर्जरा भी सिद्ध हुये, कर्म भी सिद्ध हुए और यह सर्वज्ञ उन कर्म पर्वतोंका भेदनहार है, यह भली भांति सिद्ध हो जाता है।

प्रधानकी पुद्गलकर्मरूपता—भगवान आप्तको कर्मपर्वतका भेदनहार कहा गया है। जब वहां यह शङ्का की थी किसीने कि कोई कर्म पर्वत ही नहीं होते फिर उनका भेदनहार ही क्या कहा जाय? और इस पुष्टिमें यह मंतव्य रखा था कि दो ही तत्त्व हैं—प्रधान और पुरुष प्रधानके संसर्गसे बन्धके फलका अनुभव आत्माको करना पड़ता है। तो इस तरह कहने वालेके समाधानमें बहुत विस्तारसे वर्णन किया जा चुका। अब यहाँ यह निश्कर्ष निकला कि प्रधानका संसर्ग मुक्त आत्माओंके नहीं होता और संसारी आत्माओंके होता, इसमें कोई कारण न दिखनेसे प्रधानकी सिद्धि नहीं होती। यदि शङ्काकार यह कहे कि प्रधानके संसर्गका कारण तो प्रधानका परिणाम ही है तो सुनो! प्रधानका ही परिणमन यदि प्रधानका संसारी आत्मासे संसर्ग का कारण बने तब तो मुक्त आत्माके भी वह प्रधानपरिणाम प्रधानसंसर्ग करानेमें कारण बन जायगा, क्योंकि प्रधानका परिणाम प्रधानमें है, तो प्रधानमें परिणमन हो रहा और वह होता है आत्माके साथ संसर्गका कारण। तब सभी आत्माओंके साथ संसर्ग बन जाना चाहिए, किन्तु ऐसा शङ्काकारने भी नहीं माना, इस कारण यह ही बात मान लेना चाहिए कि जो मिथ्यादर्शन आदिक भावकर्म हैं वे तो हैं पुरुषके परिणाम और जो द्रव्यकर्म हैं वे हैं पुद्गलके परिणाम। चूंकि पुरुष परिणामी है, उसका परिणमन ही है इसलिए कर्म संसर्गकी स्थितिमें विभावरूप परिणम रहा है तो यह पुरुष परिणम रहा है। जो भी सत् होता है वह अपरिणामी नहीं होता। परिणमन-शील होता। तो यों मिथ्यात्व आदिक भावकर्म तो पुरुषके परिणाम हैं, क्योंकि पुरुष अपरिणामी नहीं है। अपरिणामी तो कोई पदार्थ ही नहीं होता। जैसे शङ्काकारकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृष्टिमें क्षणिकवादियों द्वारा माना गया क्षणिक चित्त नहीं है क्योंकि वह एक क्षणको हुआ फिर न रहा। उसमें परिणमनकी बात ही नहीं आ पाती। दूसरे क्षण रहे तो परिणमनकी बात वहाँ चलायी जाय। तो जैसे अपरिणामी क्षणिक चित्त वस्तु नहीं मानी गई उसी प्रकार अपरिणामी पुरुष भी वस्तु नहीं हो सकता। तो जो मिथ्यात्व आदिक भावकर्म हैं वे पुरुषके परिणाम हैं और जो द्रव्यकर्म हैं ज्ञानावरण आदिक वे सब पुद्गलपरिणामात्मक हैं तब प्रधान कहो या पुद्गल कहो नामका ही भेद रहा। जैसे कोई दार्शनिक प्रधान कहकर बंधमोक्षकी व्यवस्था बनाते हैं वह भी कर्म जैसी ही स्थिति प्रधानकी मानकर बना सकते हैं। तो जिसको पुदगल कहते हैं उसे ही कोई प्रधान बतलाते हैं। तो पुद्गलका ही तो एक नाम बना दिया। स्वरूपमें अन्तर नहीं डाल सकते। जो स्वरूप कर्म पुद्गलका है उसी तरहका स्वरूप प्रधानका माना जाय तो व्यवस्था बनती है। तब नामभेद हुआ लक्षणभेद न रहा।

बुद्ध्यादि परिणामोंकी पुरुषपरिणामात्मकता—यदि शङ्काकार यहां यह सोचे कि कैसे कह दिया कि प्रधान पुद्गलका परिणाम है तो वह सुने ! देखो, प्रधान पृथ्वी आदिकका परिणाम है यह तो माना ही गया है। शङ्काकार द्वारा तो वह पृथ्वी आदिकका परिणाम पुरुषके तो नहीं माना गया। इससे सिद्ध है कि पुरुषका परिणाम पुरुषके ढङ्गसे होगा और प्रधानका परिणाम पुद्गलके ढङ्गसे होगा। तो पुरुष पुद्गल द्रव्य नहीं तो उसका परिणाम पृथ्वी आदिक भी नहीं। पुरुषके तो बुद्धि अहङ्कार आदिक परिणाम हो सकते हैं। जिसमें प्रतिभासका सम्बन्ध है वह ही परिणाम पुरुष के हो सकता है। प्रधानमें बुद्धि आदिक परिणाम नहीं बन सकते। शङ्काकारने भले ही माना है यह कि प्रधानमें बुद्धि अहङ्कार आदिक परिणमन होते हैं और इसके अतिरिक्त शरीर इन्द्रिय आदिक भी परिणमन माने हैं। तो शरीर आदिक तो प्रधानके परिणमन बन जाते, पर बुद्धि अहंकार आदिक प्रधानके परिणमन नहीं बन सकते। प्रधान और पुद्गल एक ही बात है। तो शरीर तो पुद्गलका परिणमन है और बुद्धि अहङ्कार ये पुरुषके परिणमन हैं। अनुमानसे भी यह बात सिद्ध होती है कि प्रधान बुद्धि आदिक परिणामरूप नहीं है, प्रधान पृथ्वी आदिकके परिणामरूप है। जो बुद्धि आदिक परिणामरूप होता है वह पृथ्वी आदिकके परिणामरूप नहीं देखा गया है। जैसे पुरुष, आत्मा, चेतन, ये पृथ्वी आदिकके परिणामरूप नहीं हैं। तो बुद्धि आदिक परिणाम तो उसके ही सिद्ध होते हैं। और, पृथ्वी आदिकके परिणामरूप प्रधानसिद्ध होता है। इस कारण बुद्धि अहङ्कार जैसे विभावको प्रधानके परिणाम नहीं कहा जा सकता, वह पुरुष विभावरूप परिणाम है। अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि यदि पुरुषमें बुद्धि आदिक परिणाम मान लिए जायें तब तो दृष्टान्त सही बताया जा सकता था, लेकिन पुरुषमें बुद्धि आदिक परिणाम सिद्ध ही नहीं होते। तब पुरुषका यह दृष्टान्त देना कि चूंकि पुरुष बुद्धि आदिक परिणामरूप है अतएव प्रधानका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणाम नहीं है, यह कहना सङ्गत नहीं हो सकता। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि पुरुषमें बुद्धि आदिक परिणाम हैं, इनको सिद्ध करने वाला अनुमान प्रयोग है और वह अनुमान इस प्रकार है कि पुरुष बुद्धिआदिक परिणामस्वरूप है, क्योंकि वह चेतन है। जो बुद्धिआदिक परिणामरूप नहीं होता वह चेतन नहीं देखा गया। जैसे घटादि, ये बुद्धिआदिक परिणामरूप नहीं हैं तो ये चेतन भी नहीं है और चेतन पुरुष है, इससे यह सिद्ध होता है कि पुरुष बुद्धि आदिक परिणामात्मक है। इस तरह प्रधान और पुद्गल ये तो एक ही बात हुए। बुद्धि अहङ्कार आदिक ये पुरुषके क्षणिक परिणमन हैं तथा विभावरूप परिणमन हैं।

प्रधानमें आकाशपरिणामात्मककी असिद्धि—अब शङ्काकारके दूसरे मंतव्यके सम्बन्धमें विचार किया जा रहा है कि शङ्काकारने प्रधानको आकाशपरिणामात्मक माना है। जैसे कि प्रधानसे महान् अहङ्कार, गण, शरीर, इन्द्रिय आदिक तत्त्व प्रकट होते हैं, ऐसा कहा है तो उसमें आकाश तत्त्व भी माना है। तो प्रधानको जो आकाशपरिणामात्मक कहा है वह सिद्ध नहीं होता, क्योंकि जो-जो मूर्तिमान पृथ्वी आदिकका परिणामरूप होगा वह-वह अमूर्तिक आकाशका परिणाम नहीं बन सकता। पृथ्वी आदिक मूर्तिमान हैं और इससे जो परिणाम देखा जाता है वह सर्वविदित है, तो जो परिणमन पृथ्वी आदिक मूर्तिक पदार्थोंमें देखा जाय वह परिणमन अमूर्तिक आकाशमें नहीं बन सकता, क्योंकि पृथ्वीके परिणमन और आकाशका परिणमन ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं और आकाशको प्रधानका परिणाम सिद्ध करनेके लिए जो शङ्काकारने शब्दको शब्दादिक ५ तन्मात्रायें कहा है वे तो पुद्गलके द्रव्यके परिणाम ही हैं, आकाशके नहीं हैं। जैसे द्रव्यमन पुद्गल द्रव्यका परिणमन है, शरीर वचन रसना आदिक इन्द्रिय पुद्गल द्रव्यके परिणमन हैं उसी प्रकार रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द ये ५ मात्रायें भी पुद्गल द्रव्यके ही परिणमन हैं। हाँ, भावमन और ज्ञानात्मक इन्द्रियाँ ये पुरुषके परिणाम सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार भली प्रकार समझमें आ सकने वाले ये दो द्रव्य हैं—जीव और पुद्गल। जीवकी बात भी अनुभवमें आ जाती है और पुद्गल तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे भी सिद्ध हो जाता है। तो मुख्य तो ये दो द्रव्य हैं—जीव और पुद्गल। इनके सिवाय कोई भी द्रव्य हो सकता है तो वह धर्म, अधर्म, आकाश और काल हो सकेगा। इन ६ द्रव्योंको छोड़कर अन्य कोई द्रव्य सिद्ध नहीं होता। प्रधानका कोई स्वरूप व्यवस्थित नहीं है। प्रधान कोई अलग तत्त्व नहीं है। प्रधानका स्वरूप सिद्ध करनेके लिए जो सत्त्व, रज और तमकी बात कही गई है सो यह सत्त्व, रज और तम ये तीन द्रव्यरूप हैं और भावरूप हैं। जो भावरूप सत्त्व, रज, तम हैं वे तो पुरुषके परिणमन होंगे और जो द्रव्यरूप सत्त्व, रज, तम हैं वे पुद्गल द्रव्यके परिणमन होंगे अथवा सामान्यतया सत्त्व, रज और तम द्रव्यरूप हों, भावरूप हों ये पुद्गल और जीवके परिणाम हो सकते हैं। यदि सत्त्व, रज, तमको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव, पुद्गल इन दोनोंके परिणाम न माना जाय तो सत्त्व, रज, तमकी सिद्धि ही नहीं हो सकती। शङ्काकारका सिद्धान्त यह है कि सत्त्व, रज और तम इन तीनकी साम्य अवस्थाका नाम प्रधान है सो ये तीन जीव और पुद्गलके ही परिणमन हैं। जीव और पुद्गलके आधारको छोड़कर अन्य किसी सत्त्व, रज और तमकी व्यवस्था नहीं पायेंगे। इस कारण यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि प्रधान कोई अलग तत्त्व नहीं है क्योंकि प्रधानका स्वरूप जो सत्त्व, रज, तम कहा है वह जीव और पुदगलको छोड़कर अन्यत्र कहीं पाया नहीं जाता। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकला कि द्रव्यकर्म तो पुदगल परिणामरूप है और भावकर्म जीवके परिणामरूप है।

कर्मोंकी विशालता व दुर्भेद्यताकी दृष्टिसे पर्वतरूपताका प्रतिपादन—अब और सुनिये ! द्रव्यकर्म पुदगल स्कंध है, क्योंकि केवल परमाणु परमाणुरूप द्रव्यकर्म होवे सो उसमें कर्मत्व नहीं आ सकता, कर्मत्व नहीं होता भिन्न भिन्न अणुओंमें, इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न अणु जीव स्वभावके प्रतिबन्धक नहीं बन सकते। वे कर्म अणु जब स्कंध रूपमें होते हैं तो ऐसे स्कंध ही जीव स्वरूपकी प्रतिबन्धकताको प्राप्त कर सकते हैं। यों कर्मस्कंध सिद्ध हुए और जो कर्मस्कंध हैं वे हैं बहुत इसलिए उन्हें तो कर्मस्कंधकी राशि कहना चाहिए। तो जब कर्मस्कंधकी राशि बन गयी तो वह पर्वतकी तरह विशाल सिद्ध होती है और दुर्भेद्य सिद्ध होती है। संसारी जीवोंपर जो कर्मोंका आवरण छाया है वह विकट और विशाल है और, उसे दूर किया जाना कठिनतासे बन सकता है, इस कारण कर्मपर्वत दुर्भेद्य है। ऐसे दुर्भेद्य कर्मपर्वतका जो भेदन कर देता है वही आप्त परमात्मा कहलाता है। इन कर्मपर्वतोंका भेदन करनेका अर्थ यह है कि उस कर्मोंमें कर्मत्वका विश्लेषण कर दिया जाय याने जुदा हो जानेका नाम कर्मभेदन है सो यों उन कर्मस्कंधोंमें कर्मत्व नहीं रहता। इस ही के मायने कर्मपर्वतका भेदन करना कहलाता है। कहीं कर्म सत्तासे नष्ट नहीं किये जा सकते। कर्म तो पुद्गल द्रव्य है जो सत् होता है उसका कभी नाश नहीं बन सकता। तो कर्मपर्वतोंका भेदन करनेका तात्पर्य है उनका जुदा कर देना। आत्मासे कर्म जुदा हो जायें, उन कर्मोंमें कर्मत्व न रहे यह ही कर्मपर्वतका भेदन कहलाता है क्योंकि जो सत्तास्वरूप द्रव्य है उसका तो विनाश नहीं होता यह बात सर्व लोकमें प्रसिद्ध है। आविष्कारक, वैज्ञानिक सभी यह जानते हैं कि जो भी अणु सद्भूत है उसका समूल नाश नहीं होता। तो कर्म भी सत् है और कर्मोंका समूह कर्मस्कंध है। कर्मस्कंध विशाल है अतः वह कर्म स्कंध पर्वतकी तरह कहा जाता है, यह दुर्भेद्य है। इस कर्मपर्वतका भेदन करने वाला आप्त परमात्मा कहलाता है। इस प्रकार जिस मंगलाचरणके आधारपर यह ग्रन्थ बनाया गया है उसमें जो तीन विशेषण दिए गए हैं कर्मपर्वतका भेदनहार, विश्वतत्त्वका ज्ञाता और मोक्षमार्गका नायक। उनमें दो विशेषण ठीक निर्दोष कहे गए हैं। आप्त भगवान कर्मपर्वतके भेदनहार हैं और समस्त तत्त्वोंके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाननहार हैं। जैसे कि मोक्षमार्गके नायक हैं प्रभ, यह बात निर्दोष सिद्ध होती है उसी प्रकार शेष दो विशेषण भी निर्दोषतया सिद्ध हो जाते हैं। अब यहाँ कोई जिज्ञासु यह जानना चाह रहा है कि मोक्षका स्वरूप क्या है ? कर्मपर्वतका भेदन हो जानेसे जो मुक्ति प्राप्त होती है उस मुक्तिका स्वरूप क्या है ? इसका उत्तर आचार्यदेव कारिका में करते हैं।

स्वात्मलाभस्ततो मोक्षः कृत्स्नकर्मक्षयान्मतः ।
निर्जरासंवराभ्यां तुः सर्वसद्वादिनामिह ॥ ११६ ॥

संवर और निर्जरा तत्त्वके द्वारा उद्भूत स्वात्मलाभकी मोक्षरूपता– निर्जरा और सम्वर तत्त्वके द्वारा जब समस्त कर्मोंका क्षय हो जाता है तो उन कर्मों के क्षयसे जो स्वात्मलाभ होता है, अपना सहज आत्मतत्त्व प्रकट होता है उसका नाम मोक्ष है। यह बात समस्त आस्तिक लोग मानते हैं। मोक्षके स्वरूपमें दार्शनिकोंकी गिनती नहीं है किन्तु मोक्षमार्गमें विवाद है इसी कारण तत्त्वार्थ सूत्रकारने मोक्षके स्वरूपको पहिले नहीं कहा किन्तु प्रथम सूत्रमें ही मोक्षमार्गका वर्णन किया है। जितने भी आस्तिक लोग हैं वे सभी यह मानते हैं कि कर्मोंका आवरण मल जब आत्मापर नहीं रहता है तो जो विशुद्ध आत्मलाभ होता है उसका नाम मोक्ष है। इस मोक्षके कारण हैं सम्वर और निर्जरा। आगामी कर्मोंका तो सम्वर होता अर्थात् कर्म न आ सकें इसका नाम सम्वर है। और, जो पहिले बाँधे हुए कर्म हैं उन कर्मोंका प्रलय होनेका नाम है निर्जरा। और सम्वर और निर्जरा इन दोनोंके प्रसादसे कर्मोंका क्षय होता है सो समस्त कर्मोंका प्रक्षय होना मोक्ष है। यदि संचित कर्मोंका विनाश तो किया जाय लेकिन आगामी कर्म आते रहें तो फिर मोक्ष कैसे होगा ? और, आगामी कर्मोंका सम्वर हो जाय और संचित कर्म बारी बारीसे आयें तो यह बात कैसे होगी? जहाँ सम्वर होता है वहाँ निर्जरा तत्त्व प्रकट होता है अन्यथा वहाँ सम्वर तत्त्व भी न बन सकेगा तो यों सम्वर और निर्जरा तत्त्व द्वारा आत्माके लाभ होनेका नाम मोक्ष है। इस कारिकामें जो 'सर्वसदवादीनाम्" यह प्रयोग किया है उससे यह बात प्रसिद्ध हो जाती है कि सभी आस्तिकोंको मोक्षके स्वरूपमें विवाद नहीं है। मोक्षका स्वरूप सभी यही समझते कि आत्माको छोड़कर बाकी तत्त्वोंका अभाव हो जाय और केवल आत्मा ही आत्मा रहे, इस हीका नाम है मोक्ष। तो ऐसा मोक्ष स्वरूप सभी दार्शनिक मानते हैं। देखा था आत्माके स्वरूपमें, कर्मके स्वरूपमें अथवा यह भी कह सकते कि मोक्षमार्गके स्वरूपमें विवाद सो आत्माका व कर्मका स्वरूप तथा मोक्षमार्ग क्या है ? यह भली भाँति सिद्ध कर दिया गया है, जो लोग आप्तके स्वरूपमें विवाद करते थे उनकी शङ्काओंका निराकरण किया जा चुका है, और जो कर्मके स्वरूपमें विवाद रखते थे उनको भी समाधान दिया जा चुका है। जब प्रतापसे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनन्तशक्ति और अनंत आनन्द यह चतुष्टय सिद्ध किया गया है और आत्माका सिद्धत्व स्वरूप है, यह सिद्ध किया गया है, उस प्रसंगमें जीव और कर्मकी वास्तविकता सिद्ध हो ही गई समझिये।

आत्माके चैतन्य स्वरूपपर विवादपरिहारी प्रकाश—यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि अचेतनपना आत्माका स्वरूप नहीं है। यदि अचेतनपना आत्माका स्वरूप होता तो आत्माके साथ ज्ञानका समवाय नहीं बन सकता था। इस प्रसङ्गमें मूल बात यह चल रही थी कि मोक्षमार्गका नेता वही हो सकता है जो विश्व तत्त्वका ज्ञाता हो। तब किसी शंकाकारका यह सिद्धान्त था कि विश्वतत्त्वका ज्ञाता न हो तब भी आप्त बन सकेगा। तो उसके निराकरणमें यह बात कही गई थी कि भला देखो तो सही कि जो विश्वतत्त्वके ज्ञाता नहीं हैं उनके द्वारा प्ररूपित द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय ये कुछ भी सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं। उसीसे संबंधित शंकाकारने यह बात रखी थी कि ज्ञानका और आत्माके साथ समवाय है और तब यह आत्मा ज्ञाता और सर्वज्ञ बन जाता है तो समवायकी सिद्धि भी तब तक न हो सकेगी जब तक आत्मामें ज्ञानस्वभाव न माना जाय। अगर अज्ञानमें, अचेतनमें, जड़ आत्मामें ज्ञानका समवाय कहा जाय तो वहाँ यह प्रश्न खड़ा रह जाता है कि ज्ञानका समवाय जड़ आत्मामें ही क्यों हुआ? जड़ आकाशमें क्यों नहीं बन जाता? यदि अदृष्ट विशेषको कारण कहा जाय तो ज्ञानका कारणभूत अदृष्टविशेष भी तो जैसे आकाश आदिक जड़में सम्भव नहीं हैं उसी प्रकार जड़ आत्मामें सम्भव नहीं हो सकते। तो अदृष्टविशेषकी बात कहकर भी कोई समाधान नहीं दिया जा सकता। यदि वे अन्तःकरणके संयोगकी बात कहकर आत्मामें ज्ञानका समवाय सिद्ध करने चलेंगे तो वह भी बात नहीं बन सकती। वहाँ भी प्रश्न होगा कि अंतःकरणका संयोग जड़ आत्मामें तो हुआ और जड़ आकाशमें नहीं हुआ। इस व्यवस्थाको कौन बनायगा? तो युक्तियोंसे भी आत्माकी अचेतनता सिद्ध नहीं होती और अनुमानसे विचारा जाय तो आत्मामें अचेतनता प्रतीत नहीं है किन्तु ज्ञान ही प्रतीत होता है। अतः आत्माका अचेतनपना स्वरूप नहीं कहा जा सकता। किसीने यह कहा था कि आत्मा क्या? तो कर्मपर्वतको भेदे, विश्वतत्त्वको जाने वह तो अचेतन है, उसके निराकरणमें यह प्रकरण चल रहा है कि आत्मा अचेतन नहीं किन्तु चेतन है।

शाश्वत ज्ञानस्वरूप आत्माकी प्रसिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि चेतनरूप ज्ञान तो अनित्य है। तो अनित्य ज्ञान नित्य आत्माका स्वरूप कैसे बन सकता है? आत्माको ज्ञानरहित इसी कारण माना गया है कि आत्मा तो नित्य है, और ज्ञान अनित्य है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारकी यहां भी भूल हो रही है। ज्ञान अनन्त और अनादि है, इस कारण ज्ञानको सर्वथा नित्य नहीं कह सकते। ज्ञान स्वरूपतः स्वभावतः नित्य है। यदि शंकाकार यहाँ यह कहे कि यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान नित्य है तब आत्माके कभी अज्ञान न बनना चाहिए, किन्तु संसार अवस्थामें, मोह अवस्थामें आत्माके अज्ञान माना गया है। इसके समाधानमें शंकाकार यह समझलें कि आत्मा अज्ञानरूप तो नहीं होता, किन्तु जब ज्ञानावरण कर्मका उदय होता तो उतने अंशमें वहाँ अज्ञान रहता है। इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती और जब ज्ञानावरण कर्मका उदय होता है तब सर्वज्ञान नहीं हो सकता। इस कथनसे यह भी शंका दूर कर लेना चाहिए कि आत्माका यदि ज्ञानस्वरूप है तो वह समस्त तत्त्वों का ज्ञाता क्यों नहीं कहा जाता? ज्ञानावरण कर्मका उदय है ऐसा समझ लेनेपर अज्ञान होनेकी बात, सर्व तत्त्वोंके ज्ञान न हो सकनेकी बात समझमें आ सकती है? और, साथ ही आत्मा ज्ञान स्वरूप है और वहाँ ज्ञान शाश्वत है, यह भी समझमें आ सकता है। देखो, समस्त पदार्थोंका ज्ञान हो उसका नाम है केवलज्ञान। उस केवलज्ञान को प्रकट न होने देना उसका नाम है ज्ञानावरणका उदय। तो ज्ञानको घातनेवाले घातियाकर्मका उदय होनेपर यह सम्भव नहीं है कि संसारी आत्मा समस्त तत्त्वोंको जान जाय। हाँ जब ज्ञानावरणका नाश हो जाता है तब यह आत्मा समस्त द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायोंको एक साथ स्पष्ट जान लेता है और तब वहाँ सर्वज्ञता प्रकट होती है। सारांश यह है कि आत्मामें जब तक घातिया कर्मोंका उदय रहता है तब तक समस्त पदार्थोंका बोध नहीं होता और जब घातिया कर्मोंका अभाव हो जाता है तो समस्त पदार्थ विषयक ज्ञान बन जाता है और तब कोई विशिष्ट आत्मा सर्वज्ञ है यह बात सिद्ध हो जाती है। अतः ज्ञान आत्माका स्वरूप है, आत्माको ज्ञानस्वरूप माननेपर इस दोषमें शङ्का न करें कोई कि संसारीको फिर सारा ज्ञान क्यों नहीं होता अथवा संसारीके अज्ञान क्यों रह जाता है। यह बात भली प्रकार युक्तियोंसे पहिले ही समझ दी गई है।

ज्ञानशून्य पदार्थमें चैतन्यकी असंभवता—कुछ लोग कहते हैं कि आत्मा का स्वरूप तो चेतनमात्र ही है, ज्ञान नहीं है। उनका यह कथन भी उक्त विवेचनसे खण्डित हो जाता है, क्योंकि जो कुछ भी वस्तु ज्ञान स्वभावसे रहित हो वह चेतन हो ही नहीं सकता। जैसे आकाश आदिक ज्ञानस्वभावसे रहित हैं तो वे चेतन नहीं हो सकते। तो जब आत्माका स्वरूप ज्ञानरहित माना तो वह चेतन हो ही नहीं सकता, फिर आत्माका चैतन्यमात्र स्वरूप कहना केवल प्रलाप है। कुछ लोग कहते हैं कि प्रकाश स्वरूप जो यह चित्त है इस हीके मायने आत्मा है याने आत्मा क्षणिकप्रतिभास स्वरूप है अर्थात् अपने ही सम्वेदनमें चित्तमें होता है, ऐसा स्वसम्वेदनमात्र चित्तका स्वरूप है। तो क्षणिकवादियोंका यह कथन भी यों खण्डित हो जाता है कि ज्ञान समस्त पदार्थोंका विषय करने वाला सिद्ध किया गया है। जो ज्ञान क्षणिक हो, स्वसम्वेदन मात्र हो वह समस्त पदार्थोंका विषय करने वाला नहीं हो सकता। और, चूँकि ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानता है यह भली भाँति बहुत विस्तारसे सिद्ध कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिया गया है। यदि ज्ञानको केवल स्वसम्वेदन मात्र माना जाय याने अपने आपका ही प्रकाश करता है ज्ञान ऐसा माना जाय तो वह ज्ञान समस्त पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला न हो सकेगा। और, माना भी है ज्ञानको सकलार्थ विषयक अन्य दार्शनिकोंने भी तो प्रतिभासस्वरूप यह क्षणिक चित्त है, वही आत्मा है, यह बात भी सही नहीं हो सकती। कुछ लोग कहते हैं कि आत्माके स्वरूप प्रमाणबाधित है, इस कारण आत्माके स्वरूपकी ऐसी बात कहना कि वह अनन्त आनन्दमय है, यह कथन व्यवस्थित नहीं रह सकता। उनका यह कहना भी सही नहीं है, क्योंकि जो आत्माका स्वरूप विपरीत मानते हों उनके यहाँ तो अव्यवस्था बन सकेगी। पर जहाँ स्याद्वाद शैली से आत्माका स्वरूप सिद्ध किया गया है वहाँ आत्मामें ज्ञानदर्शन आदिक स्वरूपकी प्राप्ति व्यवस्थित है। और, जहाँ अनन्त ज्ञानादिक स्वरूपका लाभ है उसका नाम मोक्ष है। कहीं आत्माके नाशका मोक्ष नहीं है, किन्तु आत्मामें अन्य कुछ न रहे और आत्मा का स्वरूप पूर्णतया विकसित हो उसे मोक्ष कहते हैं। इस प्रसङ्ग तक जो कर्मके मानने में विवाद करते थे, कर्मके स्वरूपमें विवाद करते थे उनका निराकरण किया गया है। और, कर्मभूभृत्को सिद्ध किया है, और जो कर्म पहाड़का भेदनहार है वह विश्वतत्त्वका ज्ञाता है। जो कर्मपहाड़का भेदनहार है, विश्वतत्त्वका ज्ञाता है वह मोक्षमार्गका नेता है, यह बात भली भाँति सिद्ध होती है।

संवर, निर्जरा और मोक्षके स्वरूपका विश्लेषण—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि अभी मोक्ष और मोक्षमार्गके प्रकरणमें जो सम्वर निर्जरा और मोक्षका विवरण दिया गया है तो इन तीनोंमें कुछ भेद ही तो नहीं मालूम होता। फिर तीनों के वर्णनका क्या मतलब? यों नहीं मालूम होता कि कर्मोंका अभाव तीनोंमें है। सम्वरके मायने क्या है? आगामी कर्मोंका नास्तित्व। निर्जराके मायने क्या है? कर्मों का एक देश दूर होना, मोक्षका अर्थ है कर्मोंका सर्वथा दूर हो जाना। इस तरह सम्वर निर्जरा और मोक्ष ये तीनों ही कर्मोंके अभावरूप हैं इस कारणसे इन तीनोंमें कुछ भेद प्रतीत नहीं होता। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि ३ तत्त्वोंके स्वरूप पर दृष्टि दो, भेद ज्ञात हो जाता है। सम्वरका स्वरूप कहा गया है आगामी कर्मोंकी उत्पत्ति न होना। आश्रवके निरोधको सम्वर कहते हैं। तो इन आगामी कर्मोंके अभाव की बात कही गई है, निर्जराका अर्थ है संचित कर्मोंका एक देश क्षय होना सो निर्जरा है। निर्जरामें कर्मोंके अभावकी बात कही गई है और मोक्ष नाम है समस्त कर्मोंका सर्वथा क्षीण हो जाना। सो यहाँ समस्त कर्मोंका अभाव है। तो सम्वरमें आगामी द्रव्य जो भावकर्मका अभाव है, वर्तमानमें भावकर्म नहीं है वही तो सम्वररूप है निश्चयसे और कर्म आ नहीं रहे हैं इसका नाम सम्वर है। निर्जरामें संचित द्रव्य और भावकर्मका एक देश अभाव है याने भूतकालीन तो संचित द्रव्यका नास्तित्व है और वर्तमानमें भावकर्मका एकदेश अभाव है और मोक्षमें आगामी भूतकालीन सब प्रकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के द्रव्यकर्म, भावकर्म, सबका अभाव है। तो यहाँ एकका स्वरूप दूसरेसे भिन्न है इस कारण इन तीन तत्त्वोंमें भेद पाया जाता है। यहाँ कोई शङ्काकार कहता है कि नास्तिक जीवोंके लिए तो मोक्षके स्वरूपमें भी विवाद रहता है, फिर मोक्षको अविवाद कैसे बताया है ? इसके समाधानमें देखिये।

नास्तिकानां च नैवास्ति प्रमाणं तन्निराकृतौ।
प्रलापमात्रकं तेषां नावधेयं महात्मनाम् ॥ ११७ ॥

मोक्षकी निर्विवाद सिद्धि—जो लोग मोक्षका अभाव बतलाते हैं अथवा नास्तिक लोग सभी तत्त्वोंका अभाव बतलाते हैं तो उनका यह केवल प्रलापमात्र है। जब पूछा जाय कि मोक्ष नहीं है यों कहकर नास्तिक लोग जो मोक्षका निराकरण करते हैं उसमें कोई प्रमाण है क्या ? तो प्रमाण तो वे बता न सकेंगे, क्योंकि नास्तिक लोग हैं। प्रमाण क्या बतावेंगे। जो इन्द्रिय प्रत्यक्ष है उसका मोक्ष विषय नहीं है तो मोक्षका निराकरण करनेमें कोई प्रमाण नहीं है, इस कारण नास्तिकोंका यह कहना कि मोक्ष कुछ नहीं है, यह सब प्रलापमात्र है, इसी कारण जो कल्याणार्थी जन हैं उनके ध्यान देने योग्य बात नहीं है नास्तिकोंका कथन। नास्तिक लोग केवल एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते हैं तो प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण मान रहे, याने इंद्रियसे जो कुछ विदित होता है वही ना प्रमाणभूत है नास्तिकोंकी दृष्टिमें सो इंद्रिय प्रत्यक्षका विषयभूत मोक्षका सद्भाव या मोक्षका अभाव नहीं है। तो वे मोक्षका निराकरण करनेके लिए अन्यको प्रमाण कैसे मान सकते हैं ? यदि वे मोक्षका निराकरण करनेके लिए कुछ अन्य प्रमाण मान लें तो इससे उन नास्तिकोंके इष्टकी हानिका प्रसङ्ग आता है। क्योंकि उनको इष्ट है केवल इंद्रिय प्रत्यक्ष, लेकिन अब मानना पड़ा कोई अन्य भी प्रमाण। यदि आस्तिक लोग यह कहें कि दूसरे लोगोंने जो और प्रमाण माने हैं उन प्रमाणोंके द्वारा मोक्षका अभाव सिद्ध कर देंगे तो सुनो—जब अन्य पुरुषों के द्वारा माने गए प्रमाणको कुछ ठीक समझते हैं नास्तिक जिनके द्वारा वे मोक्षका निराकरण करते हैं तो उन प्रमाणोंसे जो मोक्षतत्त्वकी सिद्धि होती है उसे क्यों न मान लिया जाय। व उनके माननेसे मोक्षको ही क्यों न मान लिया जाय ? नास्तिक लोग केवल एक प्रत्यक्ष प्रमाण माना करते हैं तो यह इंद्रिय प्रत्यक्ष केवल सद्भावका ही साधक है, उसके द्वारा मोक्षका निषेध तो कर नहीं सकते, तो मोक्षका निषेध करनेके लिए नास्तिकोंको कोई अन्य प्रमाण अनुमान आदिक मानने पड़ेंगे। तो जब अन्य लोगोंके द्वारा माने गए किसी प्रमाणान्तरसे ये नास्तिक लोग मान लेते हैं तो उससे अच्छा तो यह ही है कि उसी प्रमाणान्तरसे मोक्षका सद्भाव भी मान लो। क्योंकि अनुमान आदिक प्रमाणोंसे मोक्षका सद्भाव सिद्ध होता है। और, यदि नास्तिक लोग बिना ही प्रमाणके मोक्षका अभाव कहा करें तो उनका यह केवल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बकवाद है, और वह उपेक्षाके योग्य है। तब मोक्ष तत्त्वको तो निर्विवाद ही स्वीकार करना चाहिए। अब यहाँ शङ्काकार कहता हैं कि यदि मोक्ष अविवाद है तो रहा आवे। पर यह तो बतलाओ कि मोक्षका मार्ग क्या है ? इसका समाधान आचार्यदेव कारिकामें दे रहे हैं।

मार्गो मोक्षस्य वै सम्यग्दर्शनादित्रयात्मकः।
विशेषेण प्रपत्तव्यो नान्यथा तद्विरोधतः ॥ ११८ ॥

सम्यग्दर्शनादित्रयात्मक मोक्षमार्गका प्रतिपादन—मोक्षका मार्ग निश्चय से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप है अर्थात् सम्यग्ज्ञान आदिक तीनों रूप मोक्षका मार्ग बन सकता है अन्यथा नहीं। अर्थात् केवल सम्यग्दर्शन या अकेला सम्यक ज्ञान या अकेला सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग नहीं बन सकता, क्योंकि उसमें विरोध है, मोक्षप्राप्तिका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनकी एकता है। अकेला-अकेला कोई मोक्षप्राप्तिका उपाय नहीं है। क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे ऐसा प्रतीत नहीं होता अर्थात् तीनोंकी पूर्णता ही, एकता ही साक्षात् मोक्षमार्ग है। यहाँ मोक्षका मार्ग याने साक्षात् मोक्षकी प्राप्तिका उपाय विशेषरूपसे ज्ञातव्य है क्योंकि जो असाधारण कारण होता है वही विशेषरूपसे ज्ञातव्य होता है। जब यह प्रश्न हुआ कि मोक्षमार्गका साक्षात् उपाय क्या है ? याने ऐसा असाधारण कारण बताओ कि जिसके होनेपर नियमसे मोक्ष हो ? तो वह असाधारण कारण इस कारिकामें बताया गया है। असाधारण कारण ही विशेषरूपसे ज्ञातव्य हुआ करते हैं, सामान्यरूपसे नहीं। क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप साधारण कारण विद्यमान ही रहता है और इसी कारण वह विशेषरूपसे ज्ञातव्य नहीं है याने मोक्षप्राप्तिके जो साधारण कारण हैं वे प्राय: सदा विद्यमान हैं तब उनके जाननेके लिए विशेष कामना क्यों होगी ? जो मोक्षप्राप्तिका साक्षात् कारण है, जिसके होनेपर नियमसे मोक्षप्राप्ति हो, वह यहाँ ज्ञातव्य होता है। सो यह मोक्षमार्ग तीन रूप ही समझना चाहिए। एक या दो रूप नहीं। इसके लिए अनुमान प्रयोग भी कर सकते हैं कि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन आदिक तीन रूप हैं, क्योंकि वह साक्षात् मोक्षमार्ग है। जो सम्यग्दर्शन आदिक तीनरूप नहीं होता वह साक्षात् मोक्षमार्ग नहीं है। जैसे जब अकेला सम्यग्दर्शन है तो साक्षात् मोक्षमार्ग नहीं है। याने सम्यक्त्वके होते ही तुरन्त मोक्ष हो जाय यह बात नहीं बनती। तो जो साक्षात् मोक्षमार्ग होगा वह तीन रूप ही होगा, इस अनुमान प्रयोगमें साक्षात् मोक्षमार्ग तो विचारकोटिमें स्थित है याने विशेषरूपसे मोक्षमार्गकी बात कही जा रही है। तब ही तो साक्षात् विशेषण दिया गया है। साक्षात् मोक्ष मार्ग क्या है ? तो यहाँ पक्ष है साक्षात् मोक्षमार्ग। प्रतिज्ञा इसकी की जा रही है कि इस अनुमानमें धर्मी अप्रसिद्ध नहीं है याने धर्मी सिद्ध है। यहां मोक्षमार्ग सामान्यको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्मी बनाया गया है और साध्य बनाया गया है मोक्षमार्ग विशेषको। तो जो धर्मी है वह सदा प्रसिद्ध हुआ करता है। तो साधारण मोक्षमार्ग सभी मोक्षवादियोंको इष्ट है। प्रत्येक मोक्ष सिद्धान्त मानने वाले दार्शनिक मोक्षमार्गको सामान्यतया मानते ही हैं। हाँ, मोक्षमार्ग विशेषमें ही लोगोंको विवाद है। कैसे विवाद है कि कोई तो सिर्फ ज्ञानको ही मोक्षका मार्ग मानते। तत्त्वज्ञानसे ही मोक्ष होता है, कोई केवल श्रद्धा विशेषको ही मोक्षमार्ग मानते, और कोई केवल क्रियाकाण्ड आदिकको ही मोक्षमार्ग मानते। तो साक्षात् मोक्षमार्गमें विवाद है, पर मोक्ष है और कोई मोक्षमार्ग हुआ करता है। इस सम्बन्धमें कुछ भी विवाद नहीं है। तो मोक्षमार्ग सामान्यमें सब एक मत हैं। तो यही धर्मी है और वह प्रसिद्ध है। इसलिए मोक्षमार्ग सामान्यमें विवाद नहीं, किन्तु मोक्षमार्ग विशेषमें विवाद है।

सम्यग्दर्शनादित्रयात्मक मोक्षमार्गके साधक अनुमानमें पक्षकी असिद्धि—मोक्षमार्ग पक्ष है, वह तो विवादसे रहित है, इस कारण यहां यह नहीं कह सकता कोई कि इस अनुमान प्रयोगमें पक्ष अप्रसिद्ध विशेष्य है याने पक्ष बिल्कुल प्रसिद्ध है इसलिए कोई दोष नहीं दिया जा सकता और न कोई यह कह सकता कि पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है, क्योंकि सामान्य मोक्षमार्ग तो धर्मी है, पक्ष है और साक्षात् मोक्षमार्ग साध्य बनाया जा रहा है। सम्यग्दर्शन आदिककी तीन रूपता साक्षात् मोक्षमार्ग है। इसके लिए लोक दृष्टान्त भी देखिए कि रोगनिवृत्तिका मार्ग क्या है? श्रद्धान होना, ज्ञान होना और आचरण होना। रोग और औषधिका श्रद्धान हो, और उस औषधिका परिज्ञान हो, सेवनविधिका परिचय हो और फिर औषधिका सेवन हो तो रोगनिवृत्ति होगी। इसमें तो किसीको भी विवाद नहीं रहता। प्रत्येक रोगी रोगनिवृत्तिके ध्येयसे औषधि लेनेका प्रयत्न करता है, लेकिन विशेषमें विवाद है कौन सी औषधि उपयुक्त है, कौन सी नहीं? तो उस विशेषकी सिद्धि की जाती है। यह बात स्पष्ट है कि रसायनका सामान्य ज्ञान हो अथवा केवल श्रद्धान मात्र हो तो वह रोगनाश करनेमें समर्थ औषधिका केवल श्रद्धान अथवा मात्र ज्ञान अथवा केवल आचरण नहीं है। इसी प्रकार आत्मविषयक मात्र श्रद्धान या केवल मात्र ज्ञान या केवल कुछ भी आचरण ये साक्षात् मोक्षमार्ग नहीं बन सकते, किन्तु श्रद्धान, ज्ञान, आचरण तीनोंका एकत्र साक्षात् मोक्षमार्ग होता है। तो समस्त कर्मरूपी महाव्याधिका मोक्ष यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान और यथार्थ आचरण इन तीन उपायोंकी एकतासे ही प्रसिद्ध हो सकता है। इन तीनोंमेंसे किसी एकका भी अभाव हो तो निर्वाण नहीं बन सकता। इस प्रसङ्गमें सर्वसाधारण जनोंको यह समझ लेना चाहिए कि मोक्षमार्ग चाहे वह किसी प्रकारका क्यों न बताया जाय पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक आचरणण इन तीनोंकी एकता होना अनिवार्य है और इसी कारण प्रकृत अनुमान प्रयोगमें पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण भी नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्यग्दर्शनादि त्रयात्मक मोक्षमार्गकी सिद्धिमें प्रयुक्त मोक्षमार्गत्व हेतुकी सिद्धि—अब यहां शङ्काकार कहता है कि पक्ष अप्रसिद्ध विशेष्य नहीं और अप्रसिद्ध विशेषण भी नहीं, सो रहा आये, लेकिन इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है वह तो एक देशसे असिद्ध है, इसे कहते हैं प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्ध। जैसे कि शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमें कोई शब्दत्वको ही हेतु बना दे तो वह शब्दत्वहेतु प्रतिज्ञार्थक-देशासिद्ध है याने वही तो प्रतिज्ञामें बात कही जा रही थी और उस ही बातको हेतुमें रख दिया तो वह हेतु इस तरह एक देशसे असिद्ध है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि इस अनुमान प्रयोगमें हेतु प्रतिज्ञार्थैकदेश रूपसे भी असिद्ध नहीं है। प्रतिज्ञा नाम किसका है? धर्म और धर्मीके समुदायको प्रतिज्ञा कहते हैं। तब प्रतिज्ञाका एक देश क्या कहलाया? धर्म अथवा धर्मी। तो इन दोनोंमेंसे कोई एक असिद्ध हो तब हीं तो यह दोष दिया जा सकता है प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्ध दोष वही तो बनेगा कि जब धर्म और धर्मी इन दोनोंमेंसे कोई असिद्ध हो। तो यहाँ दोनोंमेंसे कुछ भी असिद्ध नहीं है। धर्मी तो असिद्ध है नहीं, धर्मी प्रसिद्ध होता है, ऐसा न्यायका वचन है। सूत्र भी कहा गया है 'प्रसिद्धोधर्मी' यह कहना भी युक्त नहीं है कि धर्मत्वके प्रमाणसे भले प्रकार प्रतीति हो रही है। धर्मी प्रसिद्ध हुआ करता है। इसके सम्बन्धमें यह निर्णय है कि धर्मी कहीं तो प्रमाणसे सिद्ध होता है, कहीं विकल्पसे सिद्ध होता है और कहीं प्रमाण एवं विकल्प दोनोंसे प्रसिद्ध होता है। तो प्रकृत अनुमान प्रयोगमें जो मोक्ष मार्गको धर्मी बताया है वह मोक्षमार्गरूप धर्मी प्रमाणसे प्रसिद्ध है। तो धर्मी अप्रसिद्ध तो न रहा। तब प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्ध दोष बताना अनुचित है। यहाँ यदि कोई मनमें यह शङ्का रखे कि मोक्षमार्ग धर्मी है और मोक्ष सम्यक्त्व हेतु है इसलिए वह धर्मी नहीं हो सकता, क्योंकि वह सामान्यरूप है और सामान्यरूपका साधन धर्मके रूपसे प्रतिपादन किया है याने सामान्यसे यह हेतु बनाया गया है तो सामान्यका हेतु बनाया जाना धर्मी नहीं तो ऐसी हालतमें अब कैसे कह सकेंगे कि प्रकृत अनुमानमें मोक्षमार्ग मात्र याने मोक्षमार्ग सामान्यको धर्मी बनाया है। इस शङ्काका आशय यह है कि शङ्काकारकी दृष्टिमें यह बात है कि सामान्य तो हेतु होगया कर्ता इसलिए सामान्य को धर्मी नहीं कह सकते। लेकिन प्रकृत अनुमानमें सामान्य मोक्षमार्गको धर्मी कहा गया है। सो यह बात कैसे युक्त है? इसका समाधान यह है कि जो शङ्काकार कह रहा है वह कथन अनुकूल ही पड़ रहा है क्योंकि यदि साधन धर्म याने सामान्य धर्मीरूप नहीं है तो वह प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्ध नहीं हो सकता और इस हालतमें फिर हेतुको प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्ध नहीं कह सकते। विशेषको धर्मी बनाकर सामान्यको हेतु कहने वाले जो लोग हैं उनको कोई दोष नहीं आता, ऐसा सभी दार्शनिकोंने माना है, जैसे शब्द प्रयत्नका अविनाभावी है याने प्रयत्नके बिना शब्द उत्पन्न नहीं होता यह तो प्रतिज्ञा की और हेतु बताया है क्योंकि वह प्रयत्नका अविनाभावी है। तो इस स्थलमें भी विशेष प्रयत्नका अविनाभावी शब्दसे तो धर्म बनाया और सामान्यरूप प्रयत्नका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अविनाभावीपन हेतु कहा गया तो यहाँ ही यह बात सिद्ध हो गई कि अनुमान,प्रयोगमें सामान्यको हेतु बनाया जाता और विशेषको धर्मी बनाया जाता। यह भी एक सिद्धि की कुञ्जी है। तो शङ्काकारने जो कुछ यहाँ कहा है उस कथनसे तो प्रकृत बात ही सिद्ध होती है याने मोक्षमार्ग सामान्य विवादरहित है, प्रसिद्ध है और यहाँ प्रतिज्ञा की जा रही है मोक्षमार्ग विशेषकी। तो मोक्षमार्गसे इस प्रकार यहाँ साक्षात् मोक्षमार्ग रूप विशेषकी सिद्धि की गई है।

मोक्षमार्गविशेषमें धार्मित्व व मोक्षमार्गत्व सामान्यमें हेतुत्वका विवरण

यहाँ जिज्ञासु यह जानना चाहता है कि प्रकृत अनुमानमें किस विशेषको धर्मी बनाया गया है? उस जिज्ञासुकी जिज्ञासा पूर्ति करनेके लिए यहाँ यह कथन करना चाहिए कि मोक्षमार्गविशेषको धर्मी बनाया गया है। मोक्षमार्गत्व सामान्य जब हेतु है तो मोक्षमार्गविशेष साध्य है और वही मोक्षमार्ग विशेष धर्मी है। शङ्काकार कहता है कि इस मोक्षमार्ग विशेषको विशेष क्यों कहा जाता है? इसका समाधान यह है कि चूंकि मोक्षमार्ग विशेष आत्मनिष्ठ मार्ग है याने आत्माके सहज स्वभावसे रहनेवाला है, जिसको कि प्रकट किया गया है तो इस प्रकार आत्मनिष्ठ होनेके कारण मोक्षमार्ग विशेष धर्मी कहा गया है। मार्ग सामान्यको धर्मी न कहना चाहिए, किन्तु जिसका विशेषण मोक्ष है ऐसे मार्गविशेषको धर्मी समझना चाहिए। उपरोक्त जो अनुमान किया गया है कि सम्यग्दर्शन आदिक त्रयात्मकता मोक्षमार्ग है मोक्षमार्गत्व होनेसे। तो इस अनुमानमें मोक्षमार्गविशेषको धर्मी और मोक्षमार्गत्व सामान्यको हेतु कहा गया है और इसी कारण दोष नहीं आता। सभी जगह यह परम्परा है कि सामान्य हेतु द्वारा विशेष धर्मी सिद्ध किया जाता है। शङ्काकार कहता है कि यहाँ जब यह बताया जा रहा है कि आत्मनिष्ठ होनेके कारण यह मोक्षमार्ग विशेष है तो यह तो मान लिया जायगा, किन्तु फिर मोक्षमार्गत्व जिसको कि हेतु बनाया जा रहा है उसे सामान्य कैसे कहा जा सकता है? जब मोक्षमार्ग विशेष है तो मोक्षमार्गत्व सामान्य कैसे होगा? इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि मोक्षमार्गत्व अनेक मोक्षमार्गमें रहता है याने मोक्षमार्ग सामान्य शब्दसे जब सोचा जाता है तो उसका अर्थ है छुटकारा पानेका उपाय। अब किसीको मानसिक व्यथा हो, शारीरिक व्याधि हो तो उसका भी मोक्षमार्ग है, याने उन रोगोंसे छुटकारा होनेका कोई उपाय है। जो द्रव्य कर्म और भावकर्मसे छुटकारा बन जाए, जीव इनसे निराला हो जाय इसका भी मार्ग है तो इस कारण मोक्षमार्गत्व यह सामान्य शब्द है और यह मोक्षमार्ग विशेषमें रहता है। जैसे कि शब्दत्व सामान्य बन जाता है और शब्द विशेष कहलाता है। जैसे वहाँ यह कहा जाता है कि शब्दत्व तो जिन शब्दोंको नित्यादिक सिद्ध किया जाता हो या आकाशगुण सिद्ध किया जाता हो उनमें शब्दत्व रहता है याने विवक्षादिमें स्थित वर्ण पदवाक्यरूप शब्द विशेषोंमें शब्दत्व रहता है और जो तत वितत घनसुषिररूपसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो चार प्रकारके शब्द बताये गए हैं वाद्यविशेष उनमें भी शब्दत्व रहता है, क्योंकि कर्णेन्द्रियजन्य ज्ञानको उत्पन्न करनेमें यह सब सामर्थ्य है इसलिए शब्दत्व सामान्य सभी प्रकारके शब्दोंमें रहता है और इस कारण शब्दत्व सामान्य है और इसी बलपर शब्दविशेषको धर्मी बनाकर शब्दत्व सामान्यको हेतु कहा है दार्शनिकोंने। तो जिन दार्शनिकोंने शब्दत्व सामान्य हेतुसे शब्द विशेष धर्मीमें साध्य सिद्ध किया है ऐसा उनका प्रयत्न होता है तो वे भी कहते हैं कि ऐसा सिद्ध करनेमें कोई दोष नहीं। इसी तरह यहां मोक्षमार्ग विशेषको धर्मी बनाया और मोक्षमार्गत्व सामान्यको साधन कहा है तो ऐसा कहने वालोंके भी कोई दोष नहीं आता।

हेतुमें प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धनामक दोषके प्रभावका प्रतिपादन—अब दूसरी विधिसे भी इस प्रकरणको समझिये ! साध्यधर्म भी तो प्रतिज्ञार्थैकदेश कहलाता है याने प्रतिज्ञाके विषयभूत जो अर्थ हैं उनमेंसे एक साध्य भी कहलाता है। तो साध्यधर्म जो कि प्रतिज्ञार्थैकदेश है उसे हेतु बनाया जाय तो प्रतिज्ञार्थैकदेशरूपसे असिद्ध न कहा जा सकेगा। तो जैसे मोक्षमार्ग विशेषको धर्मी कहकर मोक्षमार्गत्व सामान्यको साधन बताया है उन्हें उपालम्भ नहीं दिया जाता, इसी तरह तो साध्य धर्म प्रतिज्ञार्थैकदेश है और उसीका हेतुरूपसे जब प्रतिपादन किया जाता है तो हेतुको प्रतिज्ञार्थैकदेशरूपसे असिद्ध नहीं कहा जा सकता। अन्यथा उसका धर्मीके साथ व्यभिचार हो जायगा। प्रतिज्ञार्थैकदेश जो कुछ भी है ऐसे धर्मीमें असिद्धताकी अनुत्पत्ति है। जब धर्मी प्रसिद्ध है और उस धर्मीके रूपसे ही हेतु कहा जाय तो उसे असिद्ध कैसे कहा जा सकेगा ? तो प्रतिज्ञार्थैकदेशरूपसे तो असिद्ध नहीं है फिर कोई यदि यह जानना चाहे कि असिद्ध फिर किस तरह होता है तो उसका उत्तर यह है कि चूंकि वह साध्य है और साध्य असिद्ध है तो साध्यरूपसे ही जो असिद्ध है उसे कहेंगे स्वरूप असिद्ध। तो शङ्काकारने जो मोक्षमार्गत्व सामान्यको प्रतिज्ञार्थैकदेश कहकर असिद्ध हेत्वाभास बतानेका प्रयत्न किया था वह उनका प्रयत्न सफल नहीं हो सकता।

सम्यग्दर्शनादि त्रयात्मक मोक्षमार्गकी सिद्धिमें मोक्षमार्गत्वहेतुकी अव्यभिचारिता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि प्रकृतमें अनुमान तो यह बनाया गया कि सम्यग्दर्शनादि त्रयात्मकता मोक्षमार्ग है, मोक्षमार्गत्व होनेसे। तो इस अनुमानप्रयोगमें जो हेतु दिया है वह साध्यको सिद्ध करनेमें यों समर्थ नहीं है कि प्रत्येक अनुमानको समीचीन सिद्ध करनेके लिए विपक्षमें बाधक प्रमाण होना चाहिए। यदि विपक्षमें बाधक प्रमाण नहीं मिलता है तो वह अनुमान प्रयोग सही नहीं बनता। तो यों विपक्षमें बाधक प्रमाण न होनेसे हेतु अविनाभावरूप व्याप्तिका निश्चय नहीं बन सकता और जब हेतुमें अविनाभावरूप व्याप्ति निश्चित् नहीं होती तो हेतु भी गमक नहीं हो सकता। [illegible] इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि शङ्काकारका यह कथन यों ठीक नहीं है कि इस अनुमान प्रयोगकी सिद्धिमें विपक्ष बाधकत्व भी सिद्ध है अर्थात् साध्यसे जो विपरीत हो उसे कहेंगे विपक्ष और विपक्षमें हेतु न पाया जाय और साध्य न पाया जाय तब तो अनुमान सही कहलायगा। तो देखिए ! यहाँ साध्य है सम्यग्दर्शन आदिकी त्रयात्मकता तो उसका विपक्ष हुआ केवल सम्यग्दर्शन, केवल सम्यग्ज्ञान व केवल सम्यक्चारित्र। तो इस केवल सम्यग्दर्शनमें अथवा ज्ञानमें अथवा चारित्रमें मोक्षमार्गत्व हेतु नहीं पाया जाता, याने अकेला सम्यक दर्शन मोक्षमार्ग नहीं है, अकेला सम्यग्ज्ञान मोक्षमार्ग नहीं है और केवल सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग नहीं है। तो यों विपक्षमें बाधक प्रमाण मिल तो गया। तो विपक्षमें बाधक प्रमाण मौजूद होनेसे इस अनुमान प्रयोगको सही मान लेना चाहिए। यहाँ साध्यमात्र सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रको नहीं कहा गया किन्तु इन तीनोंकी एकताको मोक्षमार्ग कहते हैं। जैसे शारीरिक और मानसिक व्याधिसे छूटनेका उपाय रसायनका सेवन है तो वहाँ केवल रसायनका ज्ञान मात्र व्याधियोंसे छुटकारा न करायगा या अकेला श्रद्धान या अकेला आचरण व्याधियोंसे छुटकारा न करायगा इसी प्रकार अकेला ज्ञान अथवा अकेला आचरण या अकेला श्रद्धान मोक्षमार्ग न बनेगा। अकेला दर्शन से मतलब ज्ञान न हो चारित्र न हो तो वह दर्शन मोक्षमार्ग न बनेगा। इसी तरह अकेले ज्ञानके मायने श्रद्धान न हो, आचरण न हो तो वह भी मोक्षमार्ग नहीं बनता, इसी तरह अकेला आचरण याने जहाँ श्रद्धान और ज्ञान नहीं है वह भी मोक्षमार्ग नहीं बनता। तो इस तरह साध्यके विपक्षमें बाधक प्रमाण मौजूद है इस कारण इसको व्यभिचारी नहीं कह सकते। यह अनुमान अपने लक्ष्यको सिद्ध करनेमें पूर्ण समर्थ है।

साक्षात्मोक्षमार्गका प्रतिज्ञापन होनेसे अकेले सम्यक्त्व आदिमें प्रकृत मोक्षमार्गत्वका अभाव—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि परम्परासे मोक्षमार्ग तो अकेला सम्यग्दर्शन भी है याने जिसे सम्यग्दर्शन होगा वह ही कुछ काल बाद मोक्ष प्राप्त करेगा। तो यहाँ हेतु लो अकेले सम्यग्दर्शनरूप साध्यके साथ व्यभिचारी है याने मोक्षमार्ग मिल गया अकेला सम्यग्दर्शन तब अनुमानमें जो यह सिद्ध करना चाह कि तीनोंकी एकता मोक्षमार्ग है वह तो सिद्ध न हो सका। समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारने यहाँ इसपर दृष्टि नहीं दी कि अनुमान प्रयोगमें साक्षात् विशेषण दिया गया है याने निश्चयसे साक्षात् मोक्षमार्गपनमें केवल सम्यग्दर्शनमें नहीं। मात्र ज्ञानमें नहीं मात्र आचारमें नहीं, तो साक्षात् मोक्षमार्गपना तब है जब इन तीनोंकी पूर्णता हो जाती है। जैसे क्षीणकषाय नामके १२ वें गुणस्थानके अन्तिम समयमें परम आर्हन्त्यरूप जीवन मोक्ष है तो जैसे वहाँ मोक्षमार्गपना सुप्रतीत है उसी प्रकार अयोग केवली नामक १४ वें गुणस्थानके अन्त समयमें जहाँ कि समस्त कर्मोंका नाश होता है वह हुआ मोक्ष। उस साक्षात् मोक्षमार्गमें तीनोंकी एकता ही हो रही है। जीवनमुक्त भले ही हैं अरहंत, किन्तु साक्षात् मुक्त नहीं हैं, क्योंकि परम शुक्लध्यानरूपी तप विशेष

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी सम्यग्दर्शन कहलाता है। यह परम शुक्लध्यान १३ वें गुणस्थानमें नहीं, १४ वें गुणस्थानमें भी पहिले नहीं। यह तो १४ वें गुणस्थानके अन्त समयमें होता है। तो १४ वें गुणस्थानके अन्तमें जो समस्त कर्मोंका क्षयरूप मोक्षप्रसिद्ध है उसके मार्गमें रहने वाला साक्षात् मोक्षमार्गत्व तो दर्शन आदिक तीनोंकी परिपूर्णताके साथ ही है। यही कारण है कि १३ वें गुणस्थानमें परम शुक्लध्यानरूप तप विशेष नहीं है अतएव वहाँ सम्यग्दर्शन आदिक तीनोंकी परिपूर्णता नहीं रहती। परमशुक्लध्यानरूप तप-विशेष जिसका कि अन्तर्भाव सम्यकचारित्रमें है वह १४ वें गुणस्थानके अन्तिम समय में होता है तब अन्त समयमें ही मोक्षमार्गपना कहलायगा। तो यों साक्षात् मोक्षका मार्ग तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी एकता है। इस तरह जो अनुमान प्रयोग करके यहाँ तीनोंकी परिपूर्णताको मोक्षमार्ग कहा है वह सब अबाधित कथन है। अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि इस प्रकारके मोक्षमार्गके प्रणेता सर्वज्ञ साक्षात् हैं अथवा परम्परासे ? याने मोक्षमार्गके प्रणेता साक्षात् सर्वज्ञ हैं या परम्परासे सर्वज्ञ हैं ? इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

प्रणेता मोक्षमार्गस्याबाध्यमानस्य सर्वथा।
साक्षाद्य एव स ज्ञेयो विश्वतत्त्वज्ञताऽऽश्रयः॥ ११६॥

सकलपरमात्मामें साक्षान्मोक्षमार्गप्रणेतृत्व व साक्षात् सर्वज्ञत्व—जो अबाधित मोक्षमार्गका साक्षात् प्रणेता है वही सर्वज्ञताका आश्रय है याने जो सर्व प्रकारसे बाधारहित मोक्षमार्गका साक्षात् प्रणेता है, दिव्यध्वनि द्वारा मोक्षमार्गको प्रकट करता है वही सर्वज्ञ है। यहाँ इस बातको ध्यानमें रखना चाहिए कि हम परम्परासे मोक्षमार्गके प्रणेताको विश्वतत्त्वज्ञ सिद्ध नहीं कर रहे हैं, परम्परासे मोक्ष-मार्गके प्रणेता तो वे आचार्य कहलायेंगे जिन्होंने गुरुपरम्पराका विच्छेद नहीं किया याने सही धारासे तत्त्वार्थ सार्थके अर्थको जान लिया वे परम्परासे मोक्षमार्गके प्रणेता हैं पर वे साक्षात् विश्वतत्त्वज्ञ नहीं हैं, क्योंकि उसमें प्रतीति विरोध है। इन आचार्यों में यह प्रतीत नहीं होता कि ये परम्परासे मोक्षमार्गके उपदेशक हैं सो थे साक्षात् सर्वज्ञ हैं। ये परम्परासे सब कुछ जान रहे हैं, पर मोक्षमार्गका साक्षात् प्रणेता तो यथार्थ सर्वज्ञ ही होता है। जो समस्त बाधक प्रमाणोंसे रहित मोक्षमार्गका उपदेशक है वही सर्वज्ञताका आधार है। तो सर्वज्ञ है क्योंकि साक्षात् विश्वतत्त्वज्ञ नहीं होता कोई तो साक्षात् निर्बाध मोक्षमार्गका प्रणेता भी नहीं हो सकता। भगवान समस्त पदार्थोंका साक्षात् ज्ञान रखते हैं तो वे साक्षात् मोक्षमार्गके प्रणेता हैं। यदि समस्त पदार्थोंका साक्षात् स्पष्ट ज्ञान न हो भगवानके तो वे साक्षात् मोक्षमार्गका उपदेश भी नहीं दे सकते। इस कारण यथार्थतया साक्षात् सर्वज्ञ ही मोक्षमार्गका प्रणेता हो सकता है। यह ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्रकारके मङ्गलाचरणकी पुष्टिमें बनाया गया है। मङ्गलाचरणमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहा है—मोक्षमार्गके नायक कर्मपहाड़के भेदनहार, विश्वतत्त्वके जाननहार आप्तको उन गुणोंकी प्रसिद्धिके लिए नमस्कार करता हूं। तो अब इतने अंशपर विचार कर रहे हैं जो इस मङ्गलाचरणमें कहा है—वन्देतद्गुणलब्धये इस अंतिमचरणकी व्याख्या करनेकी इच्छासे आचार्यदेव कहते हैं।

वीतनिःशेषदोषोऽतः प्रवन्द्योऽर्हन् गुणाम्बुधिः।
तद्गुणप्राप्तये सद्भिरिति संक्षेपतोऽन्वयः॥ १२०॥

अर्हन्तकी वन्द्यताके कारण व वन्दनाके प्रयोजनपर विचार—जो समस्त दोषोंसे रहित हैं, गुणोंके समुद्र हैं ऐसे अरहन्त भगवान सत्पुरुषोंके द्वारा प्रकर्षरूपसे वन्दनीय हैं और वे वन्दनीय हैं उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिए। यह है मङ्गलाचरणके चतुर्थ चरणसे सम्बन्धित अंश। इस सम्बन्धमें विचार करो। देखिये! जो दयासे रहित साक्षात् मोक्ष मार्गका प्रणेता है वही तो विश्वतत्त्वका ज्ञाता है और वही कर्म पर्वतका भेदनहार है। इस कारण अरहन्त ही मुनीन्द्रों द्वारा अथवा स्तवन करनेवाले आचार्यदेव प्रकर्षरूपसे वंद्यनीय कहे गए हैं। यहाँ अरहन्तदेव योगि सकल परमात्मा समस्त ज्ञान आदिक दोषोंसे रहित हैं और अनन्त ज्ञानादिक गुणोंके समुद्र हैं, निश्चय से ही समझिये कि जो गुणोंका समुद्र हो वह ही वन्दनीय होता और वह भी वन्द्यनीय किस प्रयोजनसे होता कि उन गुणोंकी प्राप्तिके लिए। न अन्य वन्दनीय हैं और न अन्य कोई प्रयोजन होता है आचार्योंका। इस प्रकार मोक्षमार्गके प्रमुख उपदेशक, कर्मपर्वतके भेदनहार, विश्वतत्त्वके जाननहार अरहन्त सकल परमात्माको उनके गुणों की प्राप्तिके लिए यह वन्दना की गई है। तो इन विशेषणोंको देनेकी क्या आवश्यकता हुई? यह प्रश्न मूलमें उठा था, जिसका उत्तर कारिका द्वारा यह कहा गया कि यह विशेषण अन्य योगव्यवच्छेदके लिए है याने जो मोक्षमार्गका प्रणेता है वह वंद्य है। जो मोक्षमार्गका प्रणेता नहीं है वह वन्दनीय नहीं है। जो कर्मपर्वतका भेदनहार है वह ही वन्दनीय है, उससे अतिरिक्त अन्य वन्दनीय नहीं। इस प्रकार जो समस्त तत्त्वोंका जाननहार है वह ही वन्दनीय है, उसके अतिरिक्त अन्य वन्दनीय नहीं है। तो अन्य योगका व्यवच्छेद करनेके लिए यह विशेषण कहा गया है ऐसा जो ग्रन्थके प्रारम्भमें बताया गया है वह कथन युक्तिसङ्गत सिद्ध होगा। परमेष्ठीके गुणोंका स्तवन जो यहाँ किया जा रहा है संक्षेपसे साम्परायका विच्छेद नहीं होता। इस तरह जो परमेष्ठीके गुणोंका स्तवन करके परम्पराका अनुसरण किया गया है या पूर्व परम्पराका विच्छेद न हो इस विधिसे बताया गया है सो वह सब पदोंके अर्थसे ही सिद्ध हो जाता है। अब यहाँ एक और जिज्ञासा प्रारम्भ होती है अथवा जो अभी अभी जिज्ञासा आई है कि अरहंतदेव ही क्यों वंद्यनीय हैं? इसकी जो पुष्टि अब तक की गई सो भले ही यह सिद्ध हो गई कि अरहंत वन्दनीय हैं लेकिन वन्दना करनेका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्रम क्यों किया जा रहा है ? उसका प्रयोजन क्या है ? कौनसा यहां कारण है कि जिस कारणसे श्रेष्ठ पुरुष भगवान अरहन्तकी बन्दना किया करते हैं ?

प्रभुवन्दनाका अलौकिक प्रयोजन—प्रभुमें ३ विशेषण सिद्ध हो गए। मोक्षमार्गके प्रणेता भी हैं, कर्मपर्वतके भेदनहार हैं, विश्वतत्त्वके जाननहार हैं, उनकी बन्दना की जा रही है। ठीक हैं, पवित्रात्मा हैं, पूज्य हैं, बन्दनाके योग्य हैं। किन्तु यह तो स्पष्ट बताओ कि उन बन्दनाओंका प्रयोजन है क्या ? जिज्ञासुकी इस जिज्ञासा से इतना भाव तो स्पष्ट हो जाता है कि उसकी समझमें यह पूर्णतया आ जायगा कि संसारमें श्रेष्ठ आत्मा वही कहलायगा जो कर्मरहित है, सब तत्त्वोंका जाननहार है। दुनियाके जीवोंको सङ्कटसे छुटकारा पानेका उपाय बताते हैं। ठीक है, पवित्र आत्मा हैं, पर बन्दना जैसे विशिष्ट श्रमको रखनेका क्या प्रयोजन है ? इस जिज्ञासामें यह भी ध्वनित होता है कि सकल परमात्माकी बन्दना करने वाले अनेक पुरुष हैं और सभी पुरुषोंका अपना जुदा-जुदा प्रयोजन होता है। प्रयोजनके बिना कोई भी पुरुष प्रयत्नशील नहीं होता। तो जब यहां प्रयोजन नाना देखे जा रहे हैं, कोई सुखकी अभिलाषासे बन्दना करता है तो वहाँ यह शङ्का होती कि क्या वे सुखको दे देते हैं ? या सुखकी अभिलाषासे बन्दना करनेमें कोई सफलता प्राप्त होती है ? तो लोक कामनाओंके उद्देश्यसे सकल परमात्मस्वरूपकी जो बन्दना की जाती है वह क्या प्रयोजनके तथ्यको लिए हुए है ? दूसरी बात यह है कि मङ्गलाचरणमें जो यह कहा है कि उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिए बन्दना की जाती है तो क्या यह सम्भव है कि प्रभुकी बन्दना करनेसे प्रभुके गुण प्राप्त हो जायेंगे ? जबकि वस्तुस्वरूप यह बताया गया है कि जो जिसके गुण हैं वे उस हीमें अनन्य होकर रहते हैं। उन गुणोंका विच्छेद नहीं होता। तो प्रभुके गुण कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं ? तब क्या यह अर्थ होगा कि जैसे प्रभुके गुण हैं उस ही प्रकारके जो गुण हों उन गुणोंकी प्राप्तिके लिए बन्दना की जाती है। बन्दना करनेका प्रयोजन क्या है ? इस प्रयोजनका समाधान पानेके लिए यहाँ जिज्ञासु यह जिज्ञासा रख रहा है। उस जिज्ञासाकी पूर्तिके लिए आचार्यदेव अन्तिम छन्दमें प्रभुकी बन्दनाका प्रयोजन बताते हैं।

मोहाऽऽक्रान्तान्न भवति गुरोर्मोक्षमार्गप्रणीतिर्न तें-
तस्याः सकलकलुषध्वंसजा स्वात्मलब्धिः।
तस्यै वन्द्यः परगुरुरिह क्षीणमोहस्त्वमर्हन्-
साक्षात्कुर्वन्नमलकमिवाशेषतत्त्वानि नाथ ! ॥ १२१ ॥

मोहाक्रान्त गुरुसे मोक्षमार्गप्रणीतिकी असम्भवता—इस छन्दमें यह बता रहे हैं कि अरहंत प्रभु ही क्यों बन्दनीय हैं ? और उनकी बन्दनासे लाभ क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राप्त होता है ? इस तथ्यकी शुरुवात करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि जो मोहसे आक्रान्त हो ऐसे गुरुसे मोक्षमार्गकी प्रणीति नहीं हो सकती। जो स्वयं मोहाक्रान्त है, मोह, अज्ञान, रागद्वेषसे भरा हुआ है भले ही गुरु हो, भेष बनाये रखे, लेकिन उससे मोक्षमार्गकी रचना नहीं हो सकती है। स्वयं ही मोक्षमार्गमें नहीं है, मिथ्यात्व अविरत दशामें है, ऐसे किसी भी भेषधारी गुरुसे मोक्षमार्गका प्रणयन नहीं हो सकता। अथवा देव संज्ञा भी दे दी गई हो और देवों जैसा समारोह भी जो कराता हो तिसपर भी मोहसे आक्रान्त होनेके कारण उनसे मोक्षमार्गका प्रणयन नहीं हो सकता। जब मोक्षमार्गकी रचना न हो सकी तो मोक्षमार्गकी रचना हुए बिना स्वात्माकी उपलब्धि नहीं हो सकती है। आत्माकी उपलब्धि होती है समस्त पापोंके नष्ट हो जानेसे, और समस्त पापोंका विनाश होता है सम्यग्ज्ञानकी आराधनासे, सम्यग्ज्ञानरूप बर्तावसे और सम्यग्ज्ञानरूप बर्ताव तभी हो सकेगा जब तत्त्वज्ञान और सम्यक्त्व हो। और, यह तत्त्वज्ञान भी तब सम्भव है जब यथार्थ उपदेश उसको सुने और चिन्तनमें आये। यह बात मोहाक्रान्त गुरु द्वारा नहीं हो सकती अतएव मोही गुरुसे मोक्षमार्ग नहीं चलता।

क्षीणमोह सर्वज्ञ अर्हन्तदेवसे मोक्षमार्ग प्रणीतिका उद्भव—मोक्षमार्ग न चलनेसे लोग अपने पापोंको ध्वंसका उपाय कैसे कर सकेगा ? और, पापोंके ध्वंस उपाय न बननेसे अपने आत्माकी उपलब्धि नहीं हो सकती। आत्माकी उपलब्धि न हो तो सर्वत्र, क्लेश ही क्लेश है। अपने ज्ञानमय आत्माकी ओर जिसकी दृष्टि नहीं है, जो यहाँ निर्दोष नहीं हो सकता वह बाहरमें अनेक पदार्थोपर उपयोग लगा लगाकर विषाद अनुभव करता रहता है। तो स्वात्माकी उपलब्धि इस जीवको अत्यन्त आवश्यक है। उस स्वात्माकी उपलब्धिके लिए उत्कृष्ट गुरु वन्दनीय है। और वह उत्कृष्ट गुरु कौन है ? तो हे अरहंतदेव ! तुम ही क्षीणमोह उत्कृष्ट गुरु हो। आपने तत्त्वज्ञान का अभ्यास किया था, उस अभ्यास बलसे सम्यक्त्व पाकर इंद्रियके विजयमें आप प्रयत्नशील हुए, इन्द्रियविजयके लिए आपने भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय इनसे निराला अपने आपको समझा। जैसे भावेन्द्रिय तो होती हैं खण्डज्ञानरूप, लेकिन अपने आपको देखा अखण्ड ज्ञानस्वभाव तो अखण्ड स्वभावके दर्शन द्वारा खण्डभावका विजय प्राप्त किया। द्रव्येन्द्रिय होती हैं पौद्गलिक और आत्मा है चेतन तो द्रव्येन्द्रिय से निराले चेतन आत्माकी भावना द्वारा द्रव्येन्द्रियपर विजय किया यह विषय प्रसङ्ग कहलाता है सङ्ग 'अन्य चीज' इन सङ्गोंसे रहित निसङ्ग अपने आपका अनुभव करके आप विषयका विजय प्राप्त किया। यों इंद्रिय विजय पाकर आप क्षीणमोह बने। और उस क्षीणमोहताके प्रतापसे आप विश्वतत्त्वके ज्ञाता हुए। ऐसे हे विश्वतत्त्वज्ञ क्षीणमोह जिनेन्द्रदेव आपसे ही मोक्षमार्गका प्रणयन होता है और उस मोक्षमार्गके उपदेशसे अथवा शासनसे अनेक भव्य जीव स्वात्माकी उपलब्धिका Version 1 लेते हैं,

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस प्रकार हे नाथ ! आप ही क्षीणमोह हो और आप ही समस्त तत्त्वोंको हाथपर रखे एहु आवले की तरह साक्षात्कार करने वाले हो।

मोहाक्रान्तताका विवरण—यहाँ मोह शब्दका अर्थ लेना है अज्ञान और रागद्वेषादिक दोषोंका समूह उस ज्ञान और रागादिकसे आक्रान्त जो गुरु हो उससे मोक्षमार्गका प्रणयन नहीं हो सकता। क्योंकि जो रागद्वेष अज्ञानसे पराधीन हो याने जिसका मन अज्ञान रागद्वेषके वश बन गया हो ऐसा कोई पुरुष यदि अपनेको सच्चे गुरुके रूपसे लोगोंको प्रदर्शित करे तो करे, लेकिन उससे तो यथार्थ उपदेशकी रचना तो नहीं हो सकती। उस गुरुमें यथार्थ उपदेशकता नहीं आ सकती है। इसका कारण यह है कि जब वह रागद्वेष मोहसे आक्रान्त है तो वह मिथ्या अर्थका प्रतिपादन कर सकता है, क्योंकि मिथ्या अर्थके प्रतिपादन करनेके ये तीन ही कारण होते हैं—अज्ञान, राग और द्वेष। वस्तुत्वके तथ्यका कुछ ज्ञान नहीं है तो उसका सही कैसे वह प्रदर्शन कर सकेगा ? यदि किसी जीवसे राग है तो उस जीवके प्रतिकूल कोई बात वह कैसे बोल सकेगा ? और, जब रागवश अनुकूल ही वचन बोलने की विवशता आती है तो धर्मके अंगका तथ्य कैसे कह सकेंगे ? इसी प्रकार किसी पर द्वेषभाव बना हो तो उसे भी कैसे यथार्थ उपदेश कर सकेंगे ? तो जो मोहसे आक्रान्त है उस पुरुषमें यह शङ्का निरन्तर है कि वह मिथ्या अर्थका भी कथन करदे तो पहिले तो यहाँ ही रुकावट आ गई। वह सम्यक अर्थका प्रतिपादन ही नहीं कर सकता। तो मोक्षमार्गके प्रणयनकी बात तो बहुत ही दूर रहेगी।

मोक्षमार्ग प्रणयनके लाभ—यहाँ यह निर्णय हुआ कि मोक्षमार्गकी प्रणीति मोहसे आक्रान्त गुरुसे नहीं बन सकती है। किन्तु मोक्षमार्गका प्रणयन होना जरूरी है। क्यों जरूरी है सो देखिये ! जब मोक्षमार्गकी प्रणीति न हो सके तो मोक्षमार्गकी रचनाके बिना आत्माकी उपलब्धि कैसे हो सकती है ? आत्माकी परम उपलब्धिका नाम निर्वाण है। तो यों किसीका निर्वाण ही न हो सकेगा। निर्वाण तो तब सम्भव था जब मोक्षमार्गकी भावना उत्कृष्ट रूपसे पाई गई होती और समस्त कर्मोंकी कलुषताका प्रध्वंस हो पाया होता तब ही तो आत्माकी लब्धि होती। यह स्वात्मलब्धि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द, अनन्तशक्तिस्वरूप हैं। अथवा आत्मलब्धि नाम परम निर्वाणका है सो किसीके भी निर्वाण सिद्ध न हो सकता था। अपने धर्म विशेषके अभ्युदयसे मोक्षमार्ग प्रणयन किया। आत्माकी प्राप्तिके लिए अनन्त चतुष्टयसम्पन्न अरहंत अवस्थाके लाभके लिए भव्य जीवोंकी प्रवृत्ति ऐसी होती है कि वे परमगुरु अरहंत देवकी शास्त्रकी आदिमें बन्दना करते हैं। सो हे नाथ ! तुम ही परम गुरु हो इस कारणसे शास्त्रकी आदिमें आपकी बन्दना की गई है। क्यों हैं ये परमगुरु? क्योंकि ये क्षीणमोह हो गए हैं और जब ये क्षीणमोह हो गए हैं तब हथेलीपर रखे गए स्फटिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मणिकी तरह समस्त तत्त्वार्थोंका साक्षात्कार कर लेते हैं तो ऐसे सर्वज्ञदेव वीतराग अरहंत प्रभु ही मोक्षमार्गकी प्रणीतिके लिए समर्थ हैं। यदि कोई मोक्षमार्गकी प्रणीति में समर्थ नहीं है तो उसे परमगुरु नहीं कहा जा सकता। इस तरह मोहाक्रान्त पुरुष कोई उन भव्य जीवोंके द्वारा बन्दनीय नहीं हो सकता जो परम निश्रेयसत्ताकी आकांक्षा रखता है।

मोक्षमार्ग प्रणेता प्रभुके शासनकी परम्परासे मोक्षमार्गका उपदेश करनेवाले आचार्योंके पपम्परया मोक्षमार्ग प्रणेतृत्वकी सिद्धि— अब इस प्रसङ्ग में कोई शङ्काकार फिर कहता है कि इस प्रकरणमें यह सिद्ध किया गया है कि मोक्ष से आक्रान्त गुरुवोंको मोक्षमार्गका उपदेश नहीं हो सकता। तो इस वाक्यमें व्यभिचार आता है, यह बात इसीसे परख सकते हैं कि जो सर्वज्ञ नहीं हैं। अरहंत नहीं हैं ऐसे आचार्य ऋषी संत भी बंदनीय माने गए हैं, यदि यह कानून बनाया जाय कि जो मोहसे आक्रान्त हो वह गुरु नहीं हो सकता तो जिन्होंने शास्त्र रचे हैं वे ऋषी महाराज सभी रागी द्वेषी थे। वे क्षीणमोह गुणस्थानमें तो नहीं पहुंचे थे। ६ठे ७वें गुणस्थानमें झूलते हुए संतोंके कषाय बताये ही गए हैं। तो यदि मोहाक्रान्त गुरुसे मोक्षमार्गकी रचना नहीं होती, ऐसा माना जाय तो आचार्य आदिक बन्दनीय कैसे सिद्ध हो सके? इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि इस आचार्यदेवने परम गुरुके वचनका ही अनुशरण किया है और परमगुरु वचनके अनुसारी होनेके कारण जो उनकी प्रवृत्ति हो रही है, रचना हो रही हैं, वह सत्य है, क्योंकि ऐसे आचार्य एकदेश से मोहरहित कहे गए हैं, वास्तविक पद्धतिसे जिनका मोह दूर हो चुका हो और क्रोधादिक कषायें सिलसिलेसे शान्त होती जाती हों ऐसे गुरु मोहरहित अवश्य ही होते हैं। इसी कारण परापर गुरुवोंका स्तवन शास्त्रके आदिमें किया गया है। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन ५ परमेष्ठियोंमें गुरुत्वका लक्षण उत्पन्न होता है। कुछ परमेष्ठियोंमें एकदेशरूपसे क्षीणमोहता है और अरहंत सिद्धपरमेष्ठियों में सर्वदेशसे क्षीणमोहता है। तो जब ये क्षीणमोह सिद्ध हो गए तो समस्त तत्त्वार्थोंके ज्ञाता भी हैं यह बात भी सुप्रसिद्ध हो जाती है। इस तरह जब विश्वतत्त्वज्ञ हैं, मोक्षमार्गके प्रणेता हैं, यथार्थ वर्णन करने वाले हैं तो इनके उपदेशमें यह कभी शङ्का नहीं हो सकती कि ये मिथ्या अर्थका वर्णन कर रहे हों इसी कारण क्षीणमोह सर्वज्ञ आदिक परम गुरुवोंकी गुरुता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे गुरुजनोंके प्रसादसे स्वर्ग और मोक्षकी संप्राप्ति होती है, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं। जैसे यहाँ अनेक कार्योंमें निमित्त नैमित्तिक विधिसे सिद्धि पायी गई है इसी तरह जो यथार्थ उपदेश करने वाले गुरुवचनके अनुसार अपने आपके भावोंको बनायेंगे वे अवश्य ही स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति करेंगे। इस प्रकार इस उपसंहारमें प्रतिपाद्य मङ्गलाचरणके विषयकी ही पुष्टि की गई है कि जो मोक्षमार्गके प्रणेता हैं, कर्मपर्वतके भेदनहार हैं, विश्वतत्त्वके ज्ञाता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है वे ही पुरुष, वे ही भगवान वंदनीय होते हैं और वंदना करनेका प्रयोजन भी यह है कि जैसे प्रभुने अपने आत्माकी प्राप्ति की है वैसे ही मुझे भी अपने आपके शुद्ध ज्ञानमय आत्मतत्त्वकी प्राप्ति हो। इस प्रकार आप्तके स्वरूपका निर्णय करनेके लिए यह आप्तपरीक्षा ग्रन्थ बना है। सो यह आप्त परीक्षण मूल विद्वान्के द्वारा बारबार चित्तमें विचार करने योग्य है। ऐसा विचार वह ही पुरुष कर सकता है जो हित और अहित के परीक्षणमें कुशल होता है। इस ही तत्त्वको कारिकामें बताते हैं।

न्यक्षेणाऽऽप्तपरीक्षा प्रतिपक्षं क्षपयितुं क्षमा साक्षात्।
प्रेक्षापतामभीक्ष्णं विमोक्षलक्ष्मीक्षणाय संलक्ष्या ॥ १२२ ॥

अन्ययोगव्यवच्छेद पद्धतिसे आप्तपरीक्षाकी रचना—यह आप्त परीक्षा ग्रन्थ प्रतिपक्षीका सम्पूर्णतया निराकरण करनेमें समर्थ है। आप्तपरीक्षामें वीतराग सर्वज्ञ आप्तका वर्णन किया गया है, उनकी ही परीक्षा हुई है। तो ऐसे आप्तके प्रतिपक्ष कहलाया आप्ताभास। जो आप्त तो नहीं हैं उनका निराकरण इस ग्रन्थमें भली प्रकार किया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि प्राणोंसे हटे हुए हैं समीचीन उपदेश के अनुसार ज्ञान आचरण बनानेसे और समीचीन उपदेशकी प्राप्ति होती है सच्चे गुरुजनोंसे, आप्त पुरुषोंसे। अतएव हित पानेके लिए इस समस्याका सुलझाना प्रथम आवश्यक है कि आप्त कौन है? इस ही समस्याको इस ग्रन्थमें सुलझाया गया है। तो विद्वान् पुरुषोंको मोहलक्ष्मीका दर्शन करनेके लिए अर्थात् मोक्षका उपाय बनानेके लिए इस ग्रन्थमें बताये गए तत्त्वका विचार करना चाहिए और तथ्य स्वरूपकी दृष्टि बनाना चाहिये।

श्रीमत्तत्त्वार्थशास्त्राद्भुतसलिलनिधेरिद्धरत्नोद्भवस्य,
प्रोत्थानारम्भकाले सकलमलभिदे शास्त्रकारैः कृतं यत्।
स्तोत्रं तीर्थोपमानं प्रथित-पृथु-पथं स्वामि-मीमांसितं तत्,
विद्यानन्दैः स्वशक्त्या कथमपि कथितं सत्यवाक्यार्थसिद्ध्यै १२३

सत्यवाक्यार्थसिद्धिके लिये प्रस्तुत रचनाका जयवाद—इस छन्दमें यह बात बतलाई जा रही है कि विद्यानन्द स्वामीने अपनी शक्तिके अनुसार जिस किसी भी प्रकार हुआ समीचीन वाक्यकी सिद्धिके लिए आप्तकी मीमांसाका कथन किया है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सो सर्वप्रथम तो तत्त्वार्थ शास्त्ररूपी समुद्रके उत्तम रत्नोंके उद्भवका स्थान है और रचनाके प्रारम्भके समयमें समस्त विघ्नोंका नाश करनेके लिए शास्त्रकारने जो मङ्गल स्तोत्र रचा है, जो कि तीर्थके तुल्य है, जैसे तीर्थ पूज्य और उपासनीय है उसी प्रकार यह स्तवन भी पूज्य और उपासनीय है। उमास्वामीने जो 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' आदि मङ्गल स्तोत्र बनाया है वह महान पथको प्रसिद्ध करने वाला है। महान् पथ क्या है? संसारके सकल सङ्कटोंसे छूटनेका जो उपाय है वही महान् पथ है सो वह गुणस्थानकी उच्च परम्पराको प्रथित करने वाला है। जिसे मङ्गलाचरणमें बताये गए आप्तकी मीमांसा समन्तभद्र स्वामीने की है, जिसका प्रसिद्ध नाम आप्तमीमांसा है। उस आप्त मीमांसाका व्याख्यान विद्यानन्दस्वामीने किया है। अब यहां एक स्वतन्त्र रचना द्वारा विद्यानन्दस्वामीने उस ही मङ्गलाचरणका हृदय खोला है, ऐसी यह आप्तपरीक्षानामक रचना विद्वज्जनोंको सन्मार्गका प्रदर्शन करने वाली बनेगी।

इति तत्त्वार्थशास्त्रादौ मुनीन्द्र-स्तोत्र-गोचरा।
प्रणीताप्तपरीक्षेयं विवाद-विनिवृत्तये ॥ १२४ ॥

विवादविनिवृत्तिके लिये आप्तपरीक्षाका प्रणयन—तत्त्वार्थसूत्रके आदि में जो उमास्वामीने मङ्गलाचरण किया है उस मङ्गलाचरणका हृदय बतानेके लिए आप्तपरीक्षा ग्रन्थ बनाया। इसे विवादकी निवृत्तिके लिए बनाया है। इसमें यश कीर्ति आदिककी कुछ भी भावना नहीं है। तो ऐसे शुद्ध भावसे की गई यह रचना अवश्य ही भव्य जीवोंके विवादको समाप्त करेगी और निर्विवादरूपसे सत्य आप्तके स्वरूप तक पहुंचकर अपने आत्माके स्वरूपका परिचय पाकर रत्नत्रयके पालन द्वारा मुक्तिमार्गके भव्य जीव प्राप्त करेंगे। समस्त ज्ञान, समस्त आचरण मोक्षमार्गका समस्त व्यवहार जिस एक मूल स्रोतसे उत्पन्न होता है, उसका जब तक सही परिचय न हो तब तक एक प्रकारका अपनी सब क्रियावोंमें, अनुरागतामें सन्देह बना रहेगा। अतएव उस मूल आधारके परिचयकी परम आवश्यकता है। वह मूल आधार है आप्त उस हीका वर्णन इस ग्रन्थमें किया गया है।

विद्यानन्द-हिमाचल-मुखपद्म-विनिर्गता सुगम्भीरा।
आप्तपरीक्षाटीका गङ्गावच्चिरतरं जयतु ॥ १ ॥

Version 1

आप्तपरीक्षाटीकाका जयवाद—अब इस ग्रन्थसे अलग कुछ श्लोकोंमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

ग्रन्थसे सम्बन्धित बातोंपर प्रकाश डाला गया है। यह आप्तपरीक्षा टीका कितनी गम्भीर है और प्रमाणीक है, इसके लिए कहा गया है कि विद्यानन्दरूपी हिमाञ्चलके मुख सरोवरसे निकली हुई यह आप्तपरीक्षा टीका है। जैसे हिमाञ्चलके सरोवरमेंसे गङ्गा नदी निकली है और वह गम्भीर है, पवित्र है इसी प्रकार विद्यानन्द स्वामी तो हुए हिमाञ्चलकी तरह और उनका मुख हुआ सरोवरकी तरह। उनके मुखसे जो टीका उत्पन्न हुई है वह है गङ्गानदीके समान। ऐसी गङ्गानदीके समान यह टीका चिरकाल तक जयवन्त रहो। यह आप्त परीक्षा ग्रन्थ आप्तके स्वरूपका निर्णय करने के लिए लिखा गया है। इससे यह विदित हो जाता है कि गुणग्राही सज्जन पुरुषोंको हित करनेके लिए किस आप्तका आश्रय करना चाहिए। आप्तके स्वरूपका निर्णय कर लेनेसे वह अपने हित और अहितका निर्णय कर लेनेमें समर्थ हो सकता है। ऐसी यह आप्त परीक्षा टीका जो आप्तके स्वरूपको बतानेमें पूर्णतया समर्थ है, गङ्गानदीकी तरह चिरकाल तक जयवन्त रहे।

भास्वद्भासिरदोषा कुमतमत-ध्वान्त-भेदन-पटिष्ठा।
आप्तपरीक्षा लङ्कृतिराचन्द्रार्कं चिरं जयतु॥ २॥

आप्तपरीक्षालंकृतिका आचन्द्रार्क जयवाद—यह आप्त परीक्षा नामकी संस्कृत टीका सूर्य और चन्द्रमाके समान निर्मल प्रकाश वाली है। निर्दोष है, मिथ्या मतरूपी अंधकारका नाश करनेमें समर्थ है। यह अलंकृति सूर्य और चन्द्रमा पर्यन्त है अर्थात् जब तक सूर्य और चन्द्रमा कायम रहे तब तक यह जयवन्त रहे। इस ग्रन्थमें जो मूल श्लोक हैं उनका नाम तो आप्त परीक्षा है और उसपर जो विशेष व्याख्यान किया गया है इसका नाम आप्त परीक्षा संकृति है। यद्यपि ग्रन्थकार भी विद्यानन्द स्वामी हैं और टीकाकार भी ये ही हैं तो भी मूलग्रन्थ और टीका इनका भेद पानेके लिए दो नाम दिए गए हैं। यह एक और सुयोगकी बात हुई है कि जो ग्रन्थकार हुआ वही उसपर टीका करे तो उसका विवरण बहुत ही सुन्दर होता है।

स जयतु विद्यानन्दो रत्नत्रय–भूरि–भूषणः सततम्।
तत्त्वार्थार्णवतरणे सदुपायः प्रकटितो येन॥ ३॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आप्तपरीक्षा व आप्तपरीक्षालंकृति टीकाके प्रणेता पूज्य विद्यानन्दि

स्वामीका जयवाद—वे विद्यानन्द स्वामी चिरकाल तक जयवन्त रहें जो रत्नत्रययुक्त भूषण स्वरूप हैं और जिन्होंने तत्त्वार्थरूप समुद्रकी तरङ्गोंका उत्तम उपाय प्रकट किया है। यह तत्त्वार्थ शास्त्र समुद्रके समान है। उसमें अवगाहन करे और उसका भलि भाँति पार प्राप्त करे, उसके लिए यह आप्त परीक्षा ग्रन्थ एक सम्यक् उपाय है, आलम्बन है। जो रत्नत्रयरूप बहुतसे भूषणोंसे भूषित है ऐसी टीकाके रचयिता विद्यानन्द स्वामी जयवन्त रहें। बहुत काल तक उनका प्रभाव बने और वचनोंकी मान्यता इस भूलोकपर प्रवर्तती रहे।

समाप्तोयं ग्रन्थः

Version 1